अच्छी तरह से नहीं निकलता। इसके लिये मैं क्षमा चाहता हूँ और कर ही क्या सकता ?

कई पारिभाषिक शब्द मुझे स्वयं बनाने पड़े हैं। कई शब्दों से मुझे सन्तोष नहीं होता; जैसे, खेल "*Games*" और "*Play*" दोनों के लिये व्यवहृत हुआ है, किन्तु "प्ले" और "गेम्स" में महान् अन्तर है। "प्ले" एक वृत्ति है, सहजात वृत्ति है, मानवीय कार्य में यह सञ्चालिका बनती है। व्यायाम और क्रीड़ा से इसका विकास होता है। स्थान-स्थान पर मैंने इसके भेद और विशेषण बतलाये हैं, किन्तु किसी को ऐसे पारिभाषिक शब्दों में भ्रम हो सकता है, इसलिये इसका कुछ संकेत करना आवश्यक समझा। शिक्षा-विज्ञान के आधुनिक तत्त्वज्ञों ने नई-नई बातें प्रकाशित की हैं। मैंने उनपर विशेष ध्यान नहीं दिया है। जिन शिक्षकों को इनसे विशेष अनुराग हो वे अँगरेजी में या हिन्दी में प्रकाशित एतत्सम्बन्धी पुस्तकों का अवलोकन करें। शारीरिक दण्ड की विफलता अब सिद्ध की जाती है, किन्तु स्नेह-हीन-त्याग शासन-विधान की सफलता स्वयंसिद्ध के समान अकड़कर खड़ी है। दण्ड की शारीरिक प्रभावोत्पादकता विशेष कर शारीरिक दण्ड की क्षणिक प्रभावो-त्पादकता पर अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में कई परीक्षाएँ हुई हैं। और उसकी क्षणिक प्रभावशक्ति का प्रमाण मिल गया है।

इस विषय पर ग्रन्थान्तर में कुछ भी टीका-टिप्पणी नहीं की गई है, इसलिये इसकी ओर संकेत कर देना आवश्यक समझा। यहीं पर यह भी कह देना चाहता हूँ कि शिक्षाशास्त्र के कई गूढ़ सिद्धान्त जान-बूझकर छोड़ दिये गये हैं और कई अज्ञात रूप से छूट गये हैं। मेरा विचार था कि "भाव साहचर्य में रुचि (अनुराग, *Interest.*) का महत्त्व" शीर्षक लेख अलग रहे, किन्तु स्थल-संकोच के कारण यह विषय अलग नहीं लिखा जा सका। भाव-साहचर्य में रुचि ही प्रधान है। यदि बालक को किसी वस्तु से रुचि नहीं है तो उसके लिये समीपता, सादृश्य या विपरीतता के नियम व्यर्थ हैं। शिक्षक को इसपर मनन करना चाहिये।

शासन और शिक्षा
का
तात्त्विक वर्णन

लेखक—
श्रीरासविहारी राय शर्मा,
एम्. ए. (संस्कृत और हिन्दी)
डिप्. एड. शिक्षक, राँची ट्रेनिंग स्कूल

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय और पटना

मूल्य २)

है। जब कोई एक काम बारम्बार किया जाता है, तब उस काम के करने की प्रवृत्ति प्रबल होती जाती है और इसीका नाम आदत या अभ्यास है। अभ्यास में तीन बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये। अभ्यास एकदम अपरिवर्तनशील नहीं है; किन्तु युवकों की अपेक्षा बालकों में अधिक शीघ्रता से पड़ सकता है। यह अभ्यास सार्वभौमिक होता है। तीसरी बात यह है कि यह सिखाया जा सकता है।

ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है त्यों-त्यों अभ्यासों का बदलना कठिन होता जाता है। आगे चलकर बालक अभ्यासों का गुलाम हो जाता है। लड़कों को जैसे लिखने या पढ़ने के अभ्यास कराये जाते हैं वैसे ही वे बराबर करते चले जाते हैं। एक बार बालक ने अशुद्ध या टेढ़ा लिखा और यदि बतलाया नहीं गया, तो वह बारम्बार वैसा ही लिखता जायगा। हस्तलेख का यह ढंग इतना प्रबल होता जाता है कि इसका परिवर्तन करना कठिन हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि पुराने अभ्यास के हटाने और उसके स्थान में नये अभ्यास के सिखाने की अपेक्षा किसी पुराने अभ्यास के न होने पर नये काम का सीखना सहज है।

एक लब्धप्रतिष्ठ वैयाकरण के पास एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति व्याकरण पढ़ने गया। उसने उससे पढ़ाई का दूना पुरस्कार माँगा। इसका कारण पूछने पर उसने यह बतलाया कि नये शिष्य के पढ़ाने में उतना परिश्रम नहीं है जितना पुराने के। पुराने अभ्यासों को हटाकर नये अभ्यासों का निर्माण करना कठिन काम है; इसलिये मैंने दूना पुरस्कार माँगा है। बाल्यकाल में शिक्षक

प्रकाशक—
पुस्तक-भंडार,
लहेरियासराय

प्रथम संस्करण, सन् १९२७ ई०

मुद्रक—
हनुमानप्रसाद
...ति प्रेस, लहेरिया...

नहीं है। खेल खेलने के मनबहलाव और पढ़ने-लिखने में रुचि उत्पन्न करना भिन्न-भिन्न बातें हैं। खेल में शारीरिक मनोरञ्जन होता है, किन्तु इसके सिवा इसका दूसरा उद्देश्य नहीं होता। यदि यही सम्पूर्ण शिक्षा का रूप मान लिया जाय और यही शिक्षा मनोरञ्जन का एक मुख्य साधन मान ली जाय, तो मानसिक साधन असम्भव हो जायगा।

मानसिक साधन में इससे बड़ी भारी बाधा होती है। छात्र इस प्रकार के क्षणिक सुख को सब कुछ मानने के अभ्यासी हो जाते हैं और मानसिक परिश्रम से उनका जी हटता जाता है, जो शिक्षा के लिये परमावश्यक है। इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि खेल का स्थान विद्यालयों में नहीं रहना चाहिये। यह अवश्य शिक्षा के सिलेवस में रहना चाहिये। छात्रों तथा छात्रों के अभिभावकों के हृदय में यह भाव कभी उत्पन्न न होने देना चाहिये कि विद्यालय एक ऐसा स्थान है जहाँ निरन्तर उदासीनता छाई रहती है और जहाँ लड़कों के साथ बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया जाता है। ऐसा दूसरों को समझने का अवसर देना विद्यालय के प्रति घृणा उत्पन्न कराना है। शिक्षा को ऐसा गम्भीर भी न बनने देना चाहिये कि कहीं उसके बीच में मुसकुराने का भी अवकाश न मिले।

विद्यालय को खेल के साधन द्वारा मनोरञ्जक बनाने का यत्न करो। ऐसा भी अवसर उत्पन्न करो कि बालकों को हँसने-खेलने का अवसर मिले और शिक्षक तथा छात्रों में परस्पर सहानुभूति उत्पन्न हो। खेल की सहायता से इस प्रकार का वातावरण उपस्थित किया जा सकता है, जिससे छात्र शिक्षक

समर्पण

यह शिक्षा-विधि की छोटी पुस्तक उन विद्या-प्रेमियों के कर-कमलों में सादर समर्पित है जिन्होंने शिक्षा की वलि-वेदी पर अपना सारा अमूल्य जीवन चढ़ा दिया है, जिन्होंने बालकों की शिक्षा के लिये अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर दिया है और जिन्होंने किसी-न-किसी समय थोड़ी या अधिक शिक्षा देकर मेरे अज्ञान-तिमिर को दूर भगाने की चेष्टा की है।

—लेखक

संक्षिप्त विवेचन हमने इस अध्याय में एक जगह कर दिया है।

कौतूहल, जिज्ञासा, अनुराग और रोचकता

कौतूहल

लड़कों की सहजात वृत्तियों में मुख्य कुतूहल, चञ्चलता तथा अनुकरण हैं, जिनसे शिक्षक अनेक लाभ उठा सकता है। इन्हीं का वर्णन आगे किया गया है। शिक्षा में अनुराग उत्पन्न करने का साधन खेल भी है, किन्तु खेल को इतना कभी महत्व नहीं देना चाहिये कि खेलने में ही लड़के लगे रहें और पढ़ने-लिखने से मुख मोड़ लें।

शिक्षा देने में शिक्षक को इन कई प्रवृत्तियों से सावधान भी रहना चाहिये। ईर्ष्या का भाव न उत्पन्न होने देना बहुत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त लड़का बहुत चञ्चल रहता है। वह तरंग में आकर अनाप-शनाप कर बैठता है। शिक्षक का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह बालक को बुद्धिमत्ता से कार्य करने का अभ्यास डाले। यह भी देखा गया है कि लड़के का विचार प्रायः स्पष्ट रहता है। उसका कार्य-कारण का सम्बन्ध नहीं मालूम रहता। प्रायः किसी वस्तु को देखकर वह क्यों-क्यों और क्या-क्या की झड़ी लगा देता है। यह क्या है, वह क्या है, इसमें और उसमें क्या सम्बन्ध है, वह नहीं जानता।

एक उत्तर सुनकर दूसरा प्रश्न कर बैठता है। फिर उसका उत्तर पाने पर तीसरा प्रश्न पूछ डालता है। वह

जिज्ञासा

कौतूहल के अनन्त सागर में गिरकर डूबता-उतराता-सा रहता है। कौतूहल भी एक वेगवती प्रवृत्ति है जिसको कुचल देना छात्र के प्रति अन्याय कर बैठना है।

करना सब करने का अभ्यास कराना दक्षता की शिक्षा है। व्याकरण के नियम के अनुसार बोलना, हस्तलेख में कुशलता प्राप्त करना, भूगोल में ठीक तरह से मानचित्र खींचना या उसका ढाँचा बनाना कार्यदक्षता की ही शिक्षा है। किसी कार्य को सुचारु रूप से ठीक-ठीक सम्पादन करने की योग्यता प्राप्त को कार्य-दक्षता की शिक्षा कहेंगे। यह कार्य-दक्षता की शिक्षा जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त करने का सहायक है।

दक्षता और सावधानता—समझाकर पढ़ाना

दक्षता और सावधानता

दक्षता प्राप्त करने के लिये निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। किसी कार्य को बारम्बार करने का नाम 'अभ्यास' कहलाता है, किन्तु अभ्यास मात्र से ही निपुणता या दक्षता प्राप्त नहीं हो सकती। इसके लिये 'सावधानता' की आवश्यकता है। असावधान व्यक्ति अशुद्धियों की बारम्बार आवृत्ति कर अपने जीवन पर कुसंस्कार जमा डालते हैं। यहाँ शिक्षक की आवश्यकता पड़ती है। शिक्षक का यह कर्तव्य है कि अपने छात्र को ठीक तरह से साव-धान होकर शुद्ध रीति से कामों के सम्पादन करने का अभ्यास डलवावे। यदि नये काम करने के समय शिक्षक छात्रों को ठीक-ठीक रास्ता न बतावे तो छात्र नित्य अशुद्धियाँ करते रहेंगे और पीछे चलकर वे किसी काम के योग्य न रहेंगे।

हस्तलेख या श्रुतिलेख में कितने ही छात्र 'ड' के नीचे बिन्दु देते तथा 'हैं' के ऊपर बिन्दु नहीं देने के अभ्यासी हो जाते हैं, जो दोष पीछे छुड़ाये नहीं छूटता। लेखक होने पर भी

सूचीपत्र

करना इसी का स्वरूप है। बालक का यह अभ्यास बहुत उप-योगी और अनेक दिनों तक उसका साथ देनेवाला है। किसी काम में एकाग्रचित्त होकर मन को लगाये रखना अध्ययन का एक शुद्ध लक्षण है। किसी कार्य में लीन होकर कार्य करते रहना इस एकाग्र चिन्तन के अभ्यास का परिणाम और कसौटी भी है। मन की वृत्ति को किसी एक विषय पर लगा देने का नाम अवधान है। चेतना निष्क्रिय होती है और अवधान प्रयत्न-शील होता है। मन की शक्ति ईश्वरदत्त है कि वह स्ववृत्ति को अन्य विषयों से हटाकर एक विषय पर लगा सकता है। किसी विषय पर अवधान लगाने के लिये दो बातें आवश्यक हैं—एक स्वास्थ्य और दूसरा उत्तेजक। यदि किसी मनुष्य का स्वास्थ्य खराब हो, तो वह किसी विषय पर अपना मन नहीं लगा सकता। यह बात प्रायः मान्य हो गई है कि जिसका शरीर निर्बल और दुर्बल है, उसका मस्तिष्क भी निर्बल है। स्वस्थ शरीर ही में स्वस्थ मन रह सकता है। शिक्षक इसकी जाँच कर इसका पता लगा सकता है कि शारीरिक दशा का प्रभाव मानसिक स्वास्थ्य पर कितना पड़ता है। वह मनुष्य शिक्षक होने के योग्य नहीं है, जो छात्रों की शारीरिक अवस्था पर ध्यान न देकर मानसिक कार्य का चर्खा चलाता रहता है। दूसरी वस्तु इसमें उत्तेजक है। यदि विद्यालय में पढ़ाई हो रही है और पास ही सड़क पर बाजा बजता हुआ चला जा रहा है, तो छात्र का ध्यान उस बाजे की ओर चला जाता है। इस उत्तेजक पदार्थ का उपयोग छात्रों के लिये शिक्षक आसानी से कर सकता है।

अवधान के दो भेद हैं। एक तो स्वतः अवधान

पाठ

दक्षता और सावधानता

शिक्षा-विधि

प्रश्न और उत्तर

ही "आग लगी है" की तुमुल ध्वनि सुन पड़े, तो पढ़नेवालों का मन उधर चला जायगा। यह उत्तेजक के प्राबल्य का प्रभाव है। ऐसी परिस्थिति में पड़कर अपने काम की ओर मन लगाये रखना प्रतिभावानों और मनस्वियों के लिये ही सम्भव है, किन्तु ऐसे व्यक्ति बहुत कम होते हैं।

दूसरा नियम अद्भुतता (Curiosity) का है। मदारी के खेल-तमाशों को देखने के लिये बालक उतावले बने रहते हैं। जो बूढ़े कभी बाहर निकलना पसन्द नहीं करते थे, वे सन् १९१० ई० में वायुयान देखने के लिये दिन-भर बिना खाये प्रतीक्षा करते रहते थे।

तीसरा विषय आकार (Size) का है, जो लोगों को अपनी ओर विशेष कर आकर्षित करता है। लम्बे मनुष्यों की ओर लोगों की टकटकी बँध जाती है। ऊँचे-ऊँचे महलों का दृश्य लोगों को जल्दी से अपनी ओर आकर्षित करता है। हाथी को देखकर लड़के भीड़ लगा देते हैं। शिक्षक को यथासाध्य इसका प्रयोग करना चाहिये।

चौथा नियम अनुकूलता (Adaptability) का है। जो विषय जिसके जीवन के अनुकूल होता है उस ओर ध्यान अधिक और सरलतापूर्वक अड़ जाता है। एक खेलाड़ी का ध्यान खेल की ओर सरलतापूर्वक चला जाता है, लेकिन एक वेदान्ती का ध्यान उस ओर दौड़ता ही नहीं। यदि दौड़ेगा भी तो टिकेगा नहीं। बालकों का मन खिलौने की ओर और स्त्रियों का मन गहनों की ओर शीघ्रता से दौड़ जाता है।

सबसे आवश्यक और प्रधान नियम प्रयोजन (Motive) का

पाठ

व्याख्या

पाठ और पाठटीका

श्रेणी-शिक्षा और शासन

नारे लगाते हैं कि सुननेवालों का ध्यान उनकी बातों की ओर लग जाता है और वे शीघ्र इसके पढ़ने को तैयार हो जाते हैं। भूकम्प के जमाने में भूकम्प की बात सुनकर लोग ध्यानावस्थित हो जाते थे।

अवधान किन नियमों पर अवलम्बित है, संक्षेप में इसका वर्णन हो चुका। अब यह दिखलाने का प्रयत्न किया जायगा कि अवधान होने में क्या-क्या बाधाएँ होती हैं। ये बाधाएँ चार प्रकार से अवधान में रुकावट उपस्थित करती हैं। ये शरीर, मन, शिक्षा और शिक्षक से सम्बन्ध रखती हैं। शारीरिक बाधाओं का आरम्भ में ही संक्षिप्त संकेत कर दिया गया है। शारीरिक निर्बलता, अस्वस्थता और कुल-क्रमागत दोष से भी बालक का अवधान एक विषय पर ठीक नहीं जमता है। अस्वास्थ्यकर स्थान, अल्प प्रकाश, बैठने की कम जगह, दुर्गन्धि आदि भी अवधान को स्थिर रखने में बाधा पहुँचाते हैं। यह अनुभव से देखा गया है कि ठंडी हवा में पढ़ने में विशेष मन लगता है। गन्दी कोठरी में सूक्ष्म विचार शिथिल पड़ जाते हैं। खुले वातावरण में प्रतिभा चमकने लगती है। कमरे की स्थिति ऐसे स्थान में होनी चाहिये कि ध्यान बँटानेवाली वस्तुएँ न हों। लड़कों की प्रकृति बराबर काम में लगी रहने की है। अतः एक ही स्थिति में उन्हें अधिक समय तक रोके रखना अच्छा नहीं है। उनके अंग-संचालन का पर्याप्त प्रबंध रहना चाहिये। शिक्षक को कार्यक्रम तैयार करने के समय इसका विचार करना चाहिये। प्रकृति-पर्य्यवेक्षण, मानसिक अंकगणित, व्यायाम, लिखना, ये सब बारी-बारी से कराने से लड़के पढ़ने में ध्यान देते हैं और उनका मन भी प्रसन्न रहता है।

शासन और संगठन

पाठ

मुख्याध्यापक तथा अन्य शिक्षक

परीक्षा

कार्य्य तालिका या निर्वएट पत्र

संघबद्ध या सामाजिक जीवन

शासन और दण्ड

पुस्तकालय

औरंगजेब के शासनकाल में अकबर का स्मरण हो आता है। विभीषण के चरित्र से भरत के चरित्र का स्मरण हो आता है। इस तीसरे नियम को विपरीतता का नियम (Law of contrast) कहते हैं।

इन नियमों के अतिरिक्त स्मरण और धारणा के कई ऐसे सहायक नियम भी हैं, जो बालकों के कार्य में अत्यन्त सहायता पहुँचाते हैं। सहायक नियमों में आवृत्ति का नियम (Law of repetition) सबसे बढ़कर है। जो बात बारम्बार दुहराई जाती है उसका स्मरण सरलतापूर्वक होता है और धारणा भी पक्की हो जाती है। गाड़ियों के चलने से रास्ते में लीक पड़ जाती है वैसे ही एक बात के बारम्बार दुहराने से मस्तिष्क में एक प्रकार के चिह्न बन जाते हैं; इसलिये उस रास्ते से विचार का आना-जाना सहज हो जाता है। विद्यार्थियों के लिये आवृत्ति के नियम बड़े काम के हैं।

दूसरा नियम संस्कारों की स्पष्टता (Vividness of Impression) का है। जिस वस्तु का संस्कार जितना ही स्पष्ट पड़ता है, उतना ही शीघ्र उस संस्कार का स्मरण हो आता है। हमारे एक मित्र की मृत्यु काशी-विद्यालय के छात्रावास में हुई थी। विश्वविद्यालय का नाम स्मरण होते ही उस मृत्यु की घटना हमारी आँखों के सामने नाचने लगती है और विश्व-विद्यालय से जो-जो सहायताएँ उनको या उनके मरने पर उनकी माता को मिली थीं, सब-के-सब का स्मरण हो उठता है।

तीसरा नियम मनुष्य की दशाओं से सम्बन्ध रखता है। शोकात्मक घटनाओं और आनन्दप्रद बातों का स्मरण मनुष्य को

पाठ दैनिक सम्मेलन

वादविवादिनी सभा

विद्यालय के सामान

परिशिष्ट (१)

परिशिष्ट (२)

को दुहराने से मन पर गहरा असर पड़ता है और वह अधिक समय तक मन में स्थिर रह सकता है।

स्मरण करने की शक्ति सब लोगों में एक-सी नहीं होती, किन्तु जितनी शक्ति होती है, उसी का उपयोग करना शिक्षक का कर्तव्य है। प्रायः देखा जाता है कि लड़के किसी बात को बिना समझे रट लेते हैं। किसी बात को समझे बिना रटना स्मृति-शक्ति को खराब करना है। यह स्मृति का निकृष्ट साधन है। किसी विषय को याद रखने की यह अस्वाभाविक पद्धति है। रटने की शक्ति भी उपयोगी है, किन्तु समझकर याद करना अच्छा है। इस शक्ति का बाल्यकाल में प्रयोग करना चाहिये। यह रटने की शक्ति अवस्था पर भी निर्भर करती है। ज्यों-ज्यों आयु क्षीण होती जाती है त्यों-त्यों यह स्मृति भी क्षीण होती जाती है। इस स्मृति का यह उत्तम साधन है कि जिस बात को स्मरण करना हो उसका अनुभव सावधानता-पूर्वक होना चाहिये। जिनको विद्यार्थियों की मेधाशक्ति बढ़ानी है या जिन छात्रों को अपनी स्मृति बढ़ाने की इच्छा है, वे अध्ययन में इस सावधानता का अवश्य अवलम्बन करें। इस प्रकार अध्ययन करने से अवधान भी स्वतः प्रवृत्त होता है। विषय से अनुराग और प्रेम बढ़ जाता है। स्मृतिशक्ति को पुष्ट बनाने का दूसरा साधन

मनन-चिन्तन और अनुशीलन

विषय का मनन, चिन्तन और अनुशीलन है। अनुशीलन से बात पक्की हो जाती है और विषय पच जाता है। तीसरा साधन यह है कि नवीन और प्राचीन का सम्बन्ध हो जाय। दोनों मिलकर एक हो जायँ। दोनों अपना अस्तित्व छोड़कर एकत्व में परिवर्तित

पढ़ाने के कुछ साधारण नियम

यह है कि मूर्त से अमूर्त की ओर बढ़ना चाहिये। बालक की रुचि मूर्त पदार्थों की ओर विशेष पाई जाती है। जिन वस्तुओं को वह देख सकता है, छू सकता है और देखकर समझ सकता है कि वे क्या हैं, उन्हीं वस्तुओं से पढ़ाना आरम्भ करना कल्याणकारी है। जैसे गणित में संकलन या व्यवकलन सिखाने में पहले गोलियों, कमाचियों, कलमों, पेंसिलों, मिट्टी के टुकड़ों, सिक्कों आदि का प्रयोग करना चाहिये। किसी भी गूढ़ सिद्धान्त को समझाने के लिये मूर्त पदार्थों का अवलम्बन करना चाहिये।

(२) जहाँ यह सिद्धान्त लागू न हो वहाँ विदित से अविदित की ओर बढ़ना ठीक है। नई बात बतलाने, हिसाब सिखलाने या पढ़ना लिखलाने में इसका प्रयोग किया जा सकता है। पढ़ना सिखाने में जो शब्द पढ़े गये हों उन्हींके द्वारा नये शब्दों को सिखलाना रोचक होगा। भूगोल पढ़ाने के समय झील का ज्ञान देने में एक बड़े सरोवर का ज्ञान देकर आगे बढ़ाना चाहिये। जोड़ना पढ़ाने के बाद गुणा और घटाना पढ़ाने के बाद भाग पढ़ाना मनोविज्ञानिक सिद्धान्त के अनुकूल है। इसका प्रयोग प्रत्येक विषय के अध्यापन में किया जा सकता है। इसी सिद्धान्त का दूसरा नाम परिचित से अपरिचित की ओर या ज्ञात से अज्ञात की ओर है।

(३) इसके बाद अमिश्र से मिश्र की ओर बढ़ना चाहिये। पहले ऐसी सरल और साधारण बातों का ज्ञान देना चाहिये जिनको बालक आसानी से समझ जायँ। फिर पेचीली बातें बतलानी चाहिये। भूगोल की शिक्षा देने के पहले स्कूल के

प्रस्तावना

आधुनिक शिक्षकों का यह ध्येय होना चाहिये कि वे अपने शिष्यों को वहीं तक सहायता दें जहाँ तक निहायत जरूरी है और जहाँ तक सम्भव हो उन्हें अपने शिष्यों को स्वयं कार्य करने तथा समझने के लिये छोड़ देना चाहिये। खेद की बात है कि आजकल के बहुत-से शिक्षकों में इस बात की खास कमी है। वे बेमतलब खुद बहुत ज्यादा बकते हैं और प्रश्न पूछते हैं। शायद इन बातों का पता उन्हें नहीं है कि उन्हें कब समझाना और प्रश्न पूछना चाहिये तथा किन-किन हालतों में बच्चों को स्वयं समझने के लिये तथा सार बातों को खोज निकालने के लिये छोड़ देना चाहिये।

आजकल जो लोग शिक्षक बनना चाहते हैं उन्हें ऐसे स्कूल अथवा कॉलेज में दाखिल होना पड़ता है जहाँ शिक्षा-तत्त्व सिखाया जाता है और जहाँ उन्हें इस विषय का कुछ ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है; पर इनमें भी बाज लोग ऐसे हैं जो उत्तम व्यक्तित्व तथा स्वाभाविक लगन की वजह से अपने काम में सफल होकर यह सोचने लग जाते हैं कि शिक्षा-तत्त्व का ज्ञान व्यर्थ है। इस बात को वे ध्यान में नहीं लाते हैं कि इसका स्पष्ट ज्ञान उन्हें अपने कार्य्य में और भी अधिक सफल बना सकता है। मतलब यह है कि उन्हें अपने काम के सब पहलुओं का ज्ञान होना निहायत जरूरी है। यह और बात है कि उनके निरीक्षक तथा प्रधानाध्यापक महोदय समय-समय पर आकर उन्हें उचित मार्ग पर कर दें, परन्तु जबतक वे स्वयं उस दर्जे तक अपने को न पहुँचायँगे तबतक उनके अप्रगतिशील तथा लकीर के फकीर बन जाने का भय बना रहेगा। शिक्षा-कार्य के प्रत्येक स्थल में सुधार की आवश्यकता है।

इन विषयों पर कुछ प्रकाश डालना इस पुस्तक का उद्देश्य है। शिक्षा-तत्त्व की सब समस्याओं को हल करने की न तो इसने चेष्टा ही की है और न इस बात का यह दावा करती है कि इसमें भिन्न-भिन्न विषयों के पढ़ाने के नियम दिये हैं। शिक्षण के कुछ उदाहरण इसलिये दे दिये

ऐसे प्रश्न में विचार करने की शक्ति मन्द पड़ जाती है और अनुमान से उत्तर देने का अभ्यास प्रबल हो जाता है।

(५) प्रश्न बहुत सरल और बहुत कठिन भी नहीं होना चाहिये। ऐसा प्रश्न न होना चाहिये कि श्रेणी के सभी लड़के इसका उत्तर दे दें और ऐसा भी नहीं होना चाहिये कि कोई लड़का भी इसका उत्तर न दे सके।

(६) प्रश्न सुन्दर और मधुर होना चाहिये। प्रश्न कर्ण-कटु या दुःश्रव होने से लड़कों की रुचि भी बिगड़ जाती है और इससे घृणा, भय तथा उदासीनता होने लगती है।

(७) प्रश्न भिन्न-भिन्न प्रकार के होने चाहिये। ये ऐसे होने चाहिये कि सब लड़कों के लिये उपयुक्त हों। कभी सहल, कभी कठिन, और कभी शब्दों को बदल-बदलकर पूछना चाहिये जिससे अभीष्ट उत्तर निकालने में कठिनाई न हो।

(८) प्रश्न श्रेणी को सम्बोधित कर पूछना चाहिये। किसी एक बालक को निर्दिष्ट कर प्रश्न पूछने से श्रेणी-शिक्षा का कार्य शिथिल हो जाता है। ऐसा करने से जिस लड़के से प्रश्न पूछा जाता है वही ध्यान देता है और अन्य लड़के निश्चेष्ट और आलसी बन जाते हैं और ध्यान नहीं देते।

(९) प्रश्न क्रमबद्ध रखना चाहिये। प्रश्नों में पारस्परिक तारतम्य और सम्बन्ध बना रहना चाहिये। ऐसे प्रश्नों से लड़कों की मानसिक शक्ति विकसित होती है।

(१०) प्रश्नों को लगातार नहीं पूछना चाहिये। श्रेणी में जहाँ-तहाँ पूछ लेना चाहिये। चञ्चल प्रकृति और असावधान लड़कों से ऐसे प्रश्न पूछना चाहिये। असावधान बालकों को

गये हैं जिनसे चन्द ऐसी बातों के, जिनकी जरूरत खास तौर पर समझी गई है, समझने में दिक़त न हो। शिक्षा-तत्त्व सम्बन्धी आधुनिक विचार तथा व्यवहार पर विशेष ध्यान रखा गया है।

फिर भी इस पुस्तक में वर्णित बहुत-सी छोटी-छोटी बातें ऐसी हैं जो अब भी विवादपूर्ण हैं, क्योंकि अबतक मनोविज्ञान की चन्द बातों में विद्वानों के विचार एक नहीं हो सके हैं। ये विचार-विभिन्नताएँ तबतक बनी रहेंगी जबतक मनोविज्ञान के तमाम उसूल निश्चित तथा निर्धारित न हो जायँ। लेकिन इन विचार-विभिन्नताओं से शिक्षण के व्यावहारिक कार्य में कोई खास बाधा नहीं उपस्थित होती है और पुस्तक के लेखक महाशय ने इस बात पर अपना ध्यान विशेष रूप से रखा है कि किस प्रकार मनोविज्ञान के नियम दैनिक शिक्षा-कार्य में उचित रूप से काम में लाये जा सकते हैं।

अभ्यास-निर्माण, चित्त की एकाग्रता—अवधान, स्मृति, शिक्षण में खेल की विधि तथा प्रश्नविधिवाले परिच्छेदों में काम की अनेक बातें व्यावहारिक तौर पर बताई गई हैं जिनका अनुकरण उचित रूप से करने से शिक्षा का कार्य उत्तम हो सकता है।

ट्रेनिंग स्कूल के एक शिक्षक ने यह पुस्तक लिखी है जिन्हें इन बातों का खूब पता है कि शिक्षकों को अपने कार्य में कौन-कौन-सी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। वे एक अव्यावहारिक व्यक्ति की तरह नहीं हैं प्रत्युत लगातार कई वर्षों से पढ़ाते रहे हैं और हमारे विद्यालयों के वातावरण से पूर्णतया परिचित हैं। अतः यह आशा की जाती है कि जिनके लिये यह पुस्तक लिखी गई है वे इन पृष्ठों में अनेक काम की बातें पायेंगे, क्योंकि गूढ़ विचार तथा व्यवहार दोनों की झलक इस पुस्तक में पाई जाती है।

पटना (ट्रेनिंग कॉलेज)
१४-११-२६

ठाकुरप्रसाद
प्रोफेसर

किया जाता है। शिक्षक को अपनी पढ़ाई की जाँच करने का भी अवसर मिलता है। वह स्वयं यह जान सकता है कि उसका पढ़ाना कहाँ तक सफल हुआ है।

(घ) सिद्धान्त निकालने में भी ये उपयोगी होते हैं। पाठ के अन्त में इनका प्रयोग करने से बालकों को प्रधान बातों की जानकारी हो जाती है। उन्हें इस बात का ध्यान भी रहता है कि उनसे अन्त में प्रश्न पूछे जायँगे। इसलिये वे पढ़ाने के समय निरन्तर सचेष्ट, क्रियाशील, ध्यानावस्थित और शान्त बने रहते हैं।

(१) शिक्षात्मक प्रश्न—नई बातों का ज्ञान देने के लिये इनका प्रयोग किया जाता है। इतिहास, भूगोल आदि पढ़ाने में प्रश्नों से बहुत-सी बातें सिखलाई जाती हैं। इसके कई भेद हैं—

(क) विषय प्रदर्शक प्रश्न—इनका उद्देश्य विषय का ज्ञान-प्रदान है। किसी विशेष बात को बतलाने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। जैसे—ग्रहण कैसे लगता है ?

(ख) विचारात्मक प्रश्न—इनसे कारण निकलवाने का यत्न किया जाता है। जैसे—वर्षा का पानी कैसे और क्यों सूखता है ?

(ग) व्यावहारिक प्रश्न—ये उपयोग बतलाने के काम में लाये जाते हैं। जैसे—तरकारी से क्या फायदा है ?

(घ) दक्षात्मक प्रश्न—ये किसी सिद्धान्त पर पहुँचने के लिये पूछे जाते हैं। प्रश्नों की क्रमबद्धता से इसमें बड़ा लाभ होता है। लड़कों को दक्ष बनाने के लिये इनका खूब प्रयोग करना चाहिये।

(ङ) प्रत्यक्ष प्रश्न—ये उत्तर की ओर संकेत करते हैं। जैसे—क्या आलसी होना बुरा है ?

प्राक्कथन

यद्यपि अँगरेजी में शिक्षाशास्त्र की अनेक पुस्तकें हैं, तथापि अँगरेजी भाषा से अनभिज्ञ रहनेवाले विद्यार्थियों और शिक्षकों को इनसे बहुत कम लाभ होता है। बिहार के शिक्षण-विद्यालयों में जब से मातृभाषा माध्यम रखी गई है तब से हिन्दी की अनिवार्यता और भी बढ़ गई है। हिन्दी में शिष्य-शिक्षकों को उत्तर लिखने पड़ते हैं। विषय का ज्ञान और मनन मातृभाषा ही में करना पड़ता है। एलिमेंट्री ट्रेनिंग स्कूलों के हेडमास्टरों को शिक्षा-सम्बन्धी प्रणालियों और पद्धतियों का ज्ञान होना आवश्यक है। वे अँगरेजी जानते नहीं, इसलिये वे इनसे अनभिज्ञ ही रह जाते हैं।

हिन्दी में शिक्षाशास्त्र का विवेचन बहुत कम हुआ है। जो हुआ है वह केवल सिद्धान्तों की मीमांसा है। सिद्धान्तों का व्यावहारिक उपयोग क्या है? यह बहुत कम बतलाया गया है। सहजात वृत्तियों और अन्तःक्षोभों आदि का निम्नकक्षा की पढ़ाई में कैसे उपयोग हो सकता है, यही इस पुस्तक के पूर्व भाग में बतलाया गया है। इन सहजात वृत्तियों की उपयोगिता मनुष्य जीवन में अपार है। जीवन में लाभ पहुँचानेवाली मनुष्य की अन्तर्वृत्तियाँ ही हैं। इन्हीं अन्तर्वृत्तियों के विकास और उपचय से चरित्र-निर्माण होता है। इन प्रवृत्तियों के समुचित रूप से वैज्ञानिक सञ्चालन से बालक का मानसिक विकास होता है।

जबतक शिक्षक इन मानवी वृत्तियों और बालक की प्रवृत्तियों के गुण दोष का परिचय नहीं रखेंगे, तबतक वे शिक्षक होने का दावा नहीं कर सकते। लड़कों और विशेष कर छोटे बालकों को पढ़ाना छुरी की तेज धार पर चलने के समान है। बाहर से यह जितना सरल ज्ञात होता है उतना सरल नहीं है। यदि कोई बिना डाक्टरी पढ़े डाक्टर नहीं हो सकता, वकालत की कला का बिना ज्ञान रखे वकील नहीं हो सकता, शिल्पकला की विद्या

वास्तव में अनुपयुक्त हैं। समझने या न समझने का पता प्रश्नों के द्वारा ही लगा लेना उचित है। उत्तर से ज्ञात हो जाता है कि लड़कों ने विषय को हृदयङ्गम किया है अथवा नहीं। जैसे प्रश्नों के द्वारा यह जाना जाता है कि विद्यार्थी मननशील, अध्येता और परिश्रमी है, वैसे ही उत्तरों के द्वारा अनेक बातों का पता चलता है।

शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिये कि उत्तर पूरे वाक्यों में हो। उत्तर के शब्द स्पष्ट और व्याकरण-शुद्ध हो, इसपर अवश्य ध्यान देना चाहिये। प्रासंगिक उत्तर के लिये विशेष जोर लगाना चाहिये। यदि किसी प्रश्न का उत्तर ठीक हो तो अवश्य स्वीकार करना चाहिये। कभी-कभी देखा जाता है कि शिक्षक के मन में दूसरा उत्तर है और छात्र ने जो उत्तर दिया है वह भी लागू है, तो शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि उस उत्तर को ग्रहण कर ले। सदोष प्रश्नों के कारण ऐसे उत्तर सम्भव हैं। ऐसे दोषों को दूर कर देना चाहिये। उत्तर प्रायः दो प्रकार के होते हैं। एक तो वह है कि एक लड़का ही उसका उत्तर समाप्त कर दे। जैसे—किस सन् में पानीपत की पहली लड़ाई हुई थी? सन् १५२६ ई० में। दूसरा प्रश्न ऐसा होता है कि उसका उत्तर कई लड़कों में समाप्त होता है। जैसे—किसी स्थान की उपज किन-किन बातों पर निर्भर करती है? एक-एक बात को लेकर कई लड़के उत्तर देते हैं, तब उत्तर पूर्ण होता है। दूसरे प्रकार के उत्तरों में शिक्षक को इस बात पर सावधान रहना चाहिये कि श्रेणी में शांति भंग न हो और लड़के क्रियाशील बनें।

उत्तर देने में लड़कों को निरन्तर उत्तेजित करते रहना

गये हैं जिनसे चन्द ऐसी बातों के, जिनकी ज़रूरत खास तौर पर समझी गई है, समझने में दिक़्क़त न हो। शिक्षा-तत्त्व सम्बन्धी आधुनिक विचार तथा व्यवहार पर विशेष ध्यान रखा गया है।

फिर भी इस पुस्तक में वर्णित बहुत-सी छोटी-छोटी बातें ऐसी हैं जो अब भी विवादपूर्ण हैं, क्योंकि अबतक मनोविज्ञान की चन्द बातों में विद्वानों के विचार एक नहीं हो सके हैं। ये विचार-विभिन्नताएँ तबतक बनी रहेंगी जबतक मनोविज्ञान के तमाम उसूल निश्चित तथा निर्धारित न हो जायँ। लेकिन इन विचार-विभिन्नताओं से शिक्षण के व्यावहारिक कार्य में कोई खास बाधा नहीं उपस्थित होती है और पुस्तक के लेखक महाशय ने इस बात पर अपना ध्यान विशेष रूप से रखा है कि किस प्रकार मनोविज्ञान के नियम दैनिक शिक्षा-कार्य में उचित रूप से काम में लाये जा सकते हैं।

अभ्यास-निर्माण, चित्त की एकाग्रता—अवधान, स्मृति, शिक्षण में खेल की विधि तथा प्रश्नविधिवाले परिच्छेदों में काम की अनेक बातें व्यावहारिक तौर पर बताई गई हैं जिनका अनुकरण उचित रूप से करने से शिक्षा का कार्य उत्तम हो सकता है।

ट्रेनिंग स्कूल के एक शिक्षक ने यह पुस्तक लिखी है जिन्हें इन बातों का खूब पता है कि शिक्षकों को अपने कार्य में कौन-कौन-सी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। वे एक अव्यावहारिक व्यक्ति की तरह नहीं हैं प्रत्युत लगातार कई वर्षों से पढ़ाते रहे हैं और हमारे विद्यालयों के वातावरण से पूर्णतया परिचित हैं। अतः यह आशा की जाती है कि जिनके लिये यह पुस्तक लिखी गई है वे इन पृष्ठों में अनेक काम की बातें पावेंगे, क्योंकि गूढ़ विचार तथा व्यवहार दोनों की झलक इस पुस्तक में पाई जाती है।

ठाकुरप्रसाद
प्रोफेसर

दबाये रखना आवश्यक है । यदि शिक्षक चाहता है कि सभी लड़के एक साथ बोलकर उत्तर दें, तो ऐसा होना ठीक है, लेकिन श्रेणी का यह नियम होना चाहिये कि सभी लड़के एक साथ या 'हाँ सर-हाँ सर' कहकर न बोलें या सब लड़के हाथ उठाकर तलवार के समान चमकाने न लगें या हाथ उठाकर हिलाते न रहें। इन बातों पर विचार करना श्रेणी-शासन के लिये अत्यन्त आवश्यक है ।

उत्तर कहलाने के समय इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिये कि अशुद्ध उत्तरों को सुनकर दूसरे लड़के बीच में न टोक दें। अशुद्ध उत्तर सुनकर शुद्ध उत्तर सोचने या शुद्ध उत्तर होने पर भी अशुद्ध भाषा को शुद्ध करने के लिये थोड़ा समय देना चाहिये। यदि उत्तर की भाषा भयंकर भूलों से ओत-प्रोत हो तो उसे छात्रों से शुद्ध कराकर कृष्णपट्ट (Black-board) पर लिख देना चाहिये। शुद्ध उत्तरों को कृष्णपट्ट पर लिखने का कार्य शिक्षक को ही सम्पादित करना चाहिये। सारांश या मौन पाठ के अनन्तर सामान्य प्रश्नों के उत्तर निकलवाकर उन्हें कृष्णपट्ट पर लिखने में शिक्षक को ही अग्रसर होना चाहिये।

व्याख्या

व्याख्या

किसी विषय को पढ़ाने के लिये उक्त प्रश्न-विधि बहुत उपयोगी है, किन्तु आगे चलकर शिक्षक को इसके अतिरिक्त 'व्याख्या' की भी आवश्यकता होती है। बिना व्याख्या के बहुत-सी बातें स्पष्ट नहीं हो सकतीं। ऊपर की श्रेणियों में किसी बात को समझाने के लिये व्याख्या को

प्राक्कथन

यद्यपि अँगरेजी में शिक्षाशास्त्र की अनेक पुस्तकें हैं, तथापि अँगरेजी भाषा से अनभिज्ञ रहनेवाले विद्यार्थियों और शिक्षकों को इनसे बहुत कम लाभ होता है। बिहार के शिक्षण-विद्यालयों में जब से मातृभाषा माध्यम रखी गई है तब से हिन्दी की अनिवार्यता और भी बढ़ गई है। हिन्दी में शिष्य-शिक्षकों को उत्तर लिखने पड़ते हैं। विषय का ज्ञान और मनन मातृभाषा ही में करना पड़ता है। एलिमेंट्री ट्रेनिंग स्कूलों के हेडमास्टरों को शिक्षा-सम्बन्धी प्रणालियों और पद्धतियों का ज्ञान होना आवश्यक है। वे अँगरेजी जानते नहीं, इसलिये वे इनसे अनभिज्ञ ही रह जाते हैं।

हिन्दी में शिक्षाशास्त्र का विवेचन बहुत कम हुआ है। जो हुआ है वह केवल सिद्धान्तों की मीमांसा है। सिद्धान्तों का व्यावहारिक उपयोग क्या है? यह बहुत कम बतलाया गया है। सहजात वृत्तियों और अन्तःक्षोभों आदि का निम्नकक्षा की पढ़ाई में कैसे उपयोग हो सकता है, यही इस पुस्तक के पूर्व भाग में बतलाया गया है। इन सहजात वृत्तियों की उपयोगिता मनुष्य जीवन में अपार है। जीवन में लाभ पहुँचानेवाली मनुष्य की अन्तर्वृत्तियाँ ही हैं। इन्हीं अन्तर्वृत्तियों के विकास और उपचय से चरित्र-निर्माण होता है। इन प्रवृत्तियों के समुचित रूप से वैज्ञानिक सञ्चालन से बालक का मानसिक विकास होता है।

जबतक शिक्षक इन मानवी वृत्तियों और बालक की प्रवृत्तियों के गुण दोष का परिचय नहीं रखेंगे, तबतक वे शिक्षक होने का दावा नहीं कर सकते। लड़कों और विशेष कर छोटे बालकों को पढ़ाना छुरी की तेज धार पर चलने के समान है। बाहर से यह जितना सरल ज्ञात होता है उतना सरल नहीं है। यदि कोई बिना डाक्टरी पढ़े डाक्टर नहीं हो सकता, वकालत की कला का बिना ज्ञान रखे वकील नहीं हो सकता, शिल्पकला की विद्या

चित्र के अतिरिक्त किसी भी विषय के वर्णन में निम्नांकित तीन बातों का समावेश अवश्य रहना चाहिये—कारण, घटना और परिणाम। इन तीनों का क्रमवद्ध वर्णन कृष्णपट्ट पर होना चाहिये। व्याख्या, दृष्टान्त आदि स्पष्ट करने के लिये जो शिक्षक कृष्णपट्ट का प्रयोग नहीं करता वह शिक्षक कहलाने का अधिकारी नहीं है। वह या तो कॉलेज का अध्यापक है अथवा वह ऐसा शिक्षक है जिसका शिक्षा में कोई स्थान ही नहीं है। इसलिये पढ़ाने के समय घटनाओं के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध शब्दों को कृष्णपट्ट पर अवश्य अंकित करना चाहिये। पढ़ाने में किन बातों को लिखना चाहिये और किन बातों को छोड़ देना चाहिये, इसका विचार शिक्षक को अनुभव से प्राप्त हो सकता है। तथापि इसका अवश्य ध्यान रहना चाहिये कि ज्ञातव्य, अपरिचित एवं मार्मिक बातों के स्पष्टीकरण के लिये उनका कृष्णपट्ट पर अवश्य उल्लेख होना चाहिये। कृष्णपट्ट के सम्बन्ध में निम्न लिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

कारण, घटना, परिणाम

कृष्णपट्ट

(क) कृष्णपट्ट की लिखावट शुद्ध, स्पष्ट और सुपाठ्य होनी चाहिये।

(ख) कृष्णपट्ट को खूब साफ-सुथरा रखना चाहिये।

(ग) श्रेणी के अगुओं का यह आवश्यक कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे कृष्णपट्ट को निरन्तर साफ रक्खें।

(घ) कृष्णपट्ट पर असावधानतापूर्वक लिखा हुआ लेख कभी नहीं रहना चाहिये।

विना जाने शिल्पकारी का आचार्य नहीं माना जा सकता, विना इंजिनियरिंग परीक्षा पास किये इंजिनियर नहीं हो सकता, फिर शिक्षणकला के सिद्धान्तों को जाने विना कोई कैसे शिक्षक कहलाने का दावा कर सकता है ?

अन्य व्यवसायवालों को तो विशेष कर प्रौढ़ बुद्धिवालों से सम्पर्क रहता है और नवजवानों से काम पड़ता है, परन्तु शिक्षकों को विशेषकर प्रारम्भिक शिक्षा के अध्यापकों को कोमल और सुकुमार प्रवृत्तिवाले बच्चों से काम पड़ता है। इन्हीं वातों के विचार से मैंने यह पुस्तक लिखी है। सहजात वृत्तियों और अन्तःक्षोभों के ठीक रीति से सञ्चालित करने के क्या-क्या लाभ हैं और उनका व्यावहारिक उपयोग बच्चों की शिक्षा में कैसे किया जा सकता है, मनुष्य-जीवन में उनका कितना महत्त्व है, शिक्षकों को उनपर क्यों विशेष ध्यान देना चाहिये, इत्यादि बातों का सम्यक् विवेचन करने तथा सरल रूप से संक्षिप्त परिचय देने का यहाँ यत्न किया गया है। इसके बाद रुचि, अवधान और अध्ययन तथा स्मरण करने की विधि पर संक्षिप्त विवेचना की गई है। प्रत्येक शिक्षक को यह जानना चाहिये कि शिक्षा-प्रदान में उसका व्यक्तित्व बड़ा महत्व रखता है।

शिक्षक का व्यक्तित्व छात्रों के जीवन में परिवर्त्तन उपस्थित कर डालता है, किन्तु शिक्षक को इस बात का भी बराबर स्मरण रखना चाहिये कि बालक के व्यक्तित्व का विकास किसी प्रकार उसके प्रभाव से बाधित न हो। पढ़ाई के आरम्भ में किसी विषय की शिक्षा देने के पहले पाठ्य विषय को रोचक बनाना चाहिये कि लड़के उस विषय से प्रेम करने लगें।

पाठ्य विषय से प्रेम करना विद्याध्ययन की रुचि को जाग्रत करना है। पाठ्य विषय का प्रेम रुचि उत्पन्न करता है। प्रेम और रुचि से पढ़ने में रस और आनन्द मिलता है। प्रेम, रुचि और आनन्द के साथ किसी विषय के अध्ययन में स्वतः अवधान होता है। रुचि और आनन्द के संयोग से पाठ्य विषय सुगम, सरल और अपना मालूम होने लगता है। स्मरण-शक्ति की वृद्धि होती है और पढ़ा हुआ विषय पक्का होता है, भूलता नहीं। इनसे

उनके शिक्षक देखते हैं, शुद्ध करते हैं और मीमांसा करते हैं, तब वह अभ्यास-पाठ कहलाता है। अभ्यास-पाठ के द्वारा शिक्षकों को पाठ पढ़ाने में प्रवीणता प्राप्त होती है। नये शिष्य-शिक्षकों को अपने सहपाठियों और शिक्षक के सामने कुछ ऐसे पाठ भी देने पड़ते हैं जिनकी समालोचना सब मिलकर करते हैं और उन पाठों के गुण-दोषों द्वारा कुशलता बढ़ाते हैं। ये अभ्यास-पाठ से कम उपयोगी नहीं हैं। इन्हें समालोचना-पाठ कहते हैं।

कोई भी पाठ हो या किसी विषय का पाठ हो, हरएक पाठ के लिये तैयारी की आवश्यकता होती है। पाठ की तैयारी के पूर्व शिक्षक को यह अवश्य जान लेना चाहिये कि श्रेणी के लड़कों के विषय का ज्ञान देने के साथ उनकी कल्पना-शक्ति को जाग्रत करना है। शिक्षक को लड़कों की मानसिक शक्ति के अनुकूल व्यवहार करना है। लड़कों को शिक्षक की योग्यता तथा विषय की गम्भीरता के अनुकूल बनाना नहीं है। लड़कों की मानसिक शक्तियों के अनुसार विषय को सरल, सुगम तथा सुबोध बनाना है। इसलिये पाठ के आरम्भ में शिक्षक का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह जानने का अवश्य यत्न करे कि लड़के कहाँ तक पढ़ चुके हैं और क्या जानते हैं, क्या नहीं जानते हैं और क्या-क्या जानने की मानसिक शक्ति है। इन बातों के विचार के साथ पाठ के विषय, लड़कों की अवस्था, समय, और पढ़ाने की सामग्री का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।

पाठटीका

अतः शिक्षक के लिये आजकल पाठ पढ़ाने के पहले तैयारी की आवश्यकता होती है। आजकल यह एक साधारण बात हो गई है कि शिक्षक को कोई पाठ पढ़ाने के पूर्व अपने

प्रेम-पूर्वक कार्य-सम्पादन की क्षमता और दक्षता प्राप्त होती है। भावग्रन्थि के उपचय और अभ्यास में रुचि का महत्त्व बहुत बड़ा है। रुचि, स्मरण अवधान एवं अनुराग उत्पन्न करती है।

शिक्षक को चाहिये कि वह अपने विषय को इतना रुचिकर बनावें कि लड़के स्वयं पाठ की ओर आकर्षित हों। इस विषय की विवेचना के पश्चात् 'पाठ' के विषय में थोड़ा लिखा गया है। पाठ के अनेक भेद-प्रभेदों के वर्णन के बाद शासन का विषय उठाकर विद्यालय के संचालक शिक्षक, सहायक शिक्षक, परीक्षा, परीक्षाफल, अभिभावक, (संघबद्ध) जीवन (*corporate-life*), खेल (*Games*), छात्रालय, दण्ड, पुरस्कार, स्कूल के सामान आदि विषयों की संक्षिप्त मनोविज्ञानिक मीमांसा की गई है। पुस्तक के अन्त में कई परिशिष्ट जोड़ दिये गये हैं।

भूमिका समाप्त करने के पूर्व मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि कई गूढ़ बातों पर पूर्ण मीमांसा नहीं की गई है। यह छोटी पुस्तक शिक्षा-तत्त्व और शिक्षण-सिद्धान्तों की केवल भूमिका है। यह शिक्षाशास्त्र या बालाध्ययन या शिक्षा-मनोविज्ञान पर स्वतंत्र पुस्तक नहीं है। विद्यालय के शासन और सामग्री तथा शिक्षा-तत्त्वों की बहुत मोटी-मोटी बातों का यह सम्मिश्रण है। माध्यमिक शिक्षण-विद्यालयों (*Secondary Training Schools*) के शिष्य शिक्षकों और प्रारम्भिक शिक्षण विद्यालयों (*Elementary Training Schools*) के हेड पण्डितों के दृष्टिकोण से यह प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक को उपयोगी और मौलिक बनाने का भी यत्न किया गया है, किन्तु यह शुद्ध मौलिकता से कोसों दूर है। इसमें अँगरेजीपन की स्पष्ट छाप दीख पड़ेगी और कहीं-कहीं अनुवाद का रूप भी दृष्टिगोचर होगा।

मुझे हिन्दी माध्यम में यह विषय पढ़ाते समय बंगाली, मुसलमान और सभी लड़कों को समझाने के लिये बीच-बीच में अँगरेजी बोलने के लिये बाध्य होना पड़ता है और मुझे यह विषय अँगरेजी में पढ़ते-पढ़ाते अँगरेजी-पन मेरी भाषा में इस प्रकार घुस गया है कि निकालने की चेष्टा करने पर भी

समर्थन किया और खूब प्रचार किया। इसकी एकरूपता का लोहा सारा शिक्षित संसार आज मान रहा है।

पाठटीका का सिद्धांत

ज्ञान और अनुराग की अभिवृद्धि के लिये हरवार्ट ने इन पाँच अवयवों की आवश्यकता बतलाई। लड़कों का मानस निर्बल रहता है। वहाँ ज्ञान का अभाव रहता है। बालक गाय के बारे में कैसे ज्ञान प्राप्त करता है, इसको विचारना चाहिये। उसको पहले गाय शब्द सुनाई पड़ता है। वह अपने पितामह को पिता, चाचा या भाई से गाय की ओर निर्देश करते हुए देखता है। 'गाय' शब्द सुनता है और फिर बार-बार देखता है। ऐसा करते रहने से वह 'गाय' नामक चार पैर वाले पशु को पहचानता है। पहचानने के बाद उसको गाय के विषय में विशेष जानकारी करने की इच्छा उत्पन्न होती है। वह इसके गुण और अवगुण जानने के लिये उत्सुक और उद्यत होता है। फिर जब गाय का रूप दिखलाया जाता है, तो वह बे-रोक-टोक पहचानने लगता है और उसका ज्ञान दृढ़ होता जाता है। इससे मालूम होता है कि वस्तु के बारे में सुनना, देखना, पहचानना, गुण समझना, तुलना, प्रयोग आदि क्रियाएँ मानस में एक निश्चित क्रम के अनुसार उठती हैं। इस प्रकार की क्रमबद्ध मानसिक क्रियाओं के अनुसार हरवार्ट ने पाठ की पाँच सीढ़ियाँ प्रकट कीं, जिनके नाम प्रस्तुतीकरण, प्रदान, सम्मेलन, साधारणीकरण और प्रयोग हैं। इनमें सम्मेलन और संयोजन के ऊपर उन्होंने बहुत जोर दिया है। हरवार्ट के अनुसार नये और पुराने ज्ञान का संयोजन और उपलब्धि (Apperception) ही शिक्षा का मुख्य

होना चाहिये। प्रदान और सम्मेलन साथ में होना चाहिये। यथासाध्य प्रत्येक वस्तु की शिक्षा उदाहरण के साथ होनी चाहिये। सम्मेलन का व्यवहार शिक्षा-प्रदान के साथ ही साथ होना चाहिये। पाठटीका में प्रदान के साथ ही साथ किस अवसर पर किस वस्तु में सम्मेलन किया जायगा, इसका उल्लेख रहना चाहिये। इस प्रकार के पाठ-प्रदान से शिक्षा हृदयग्राही होती है।

जब किसी विषय का प्रत्येक भाग पढ़ा लिया गया है और अलग-अलग बातें समझ में आ गई हैं, तब उन्हें क्रमबद्ध बनाकर बालकों को लिखा देना चाहिये। बालकों से खण्ड-खण्ड पूछ कर संक्षिप्त कृष्णपट्ट-सारांश निकलवा लेना चाहिये और उसे कृष्णपट्ट पर से उतार लेने का आदेश करना चाहिये। इस प्रकार के पाठ-सारांश लिखाने से लड़कों की भाषा उन्नत होती है और मानस में क्रमबद्धता की परिपाटी स्थिर होती है। इस सारांश का वर्णन और उल्लेख पाठटीका में भी रहना चाहिये।

विषय का सम्यक् ज्ञान लड़कों को हुआ या नहीं, इसकी जाँच करने के लिये पाठटीका में कुछ ऐसे प्रश्नों का उल्लेख रहना उचित है जिनका उत्तर बालक ज्ञात विषय की सहायता से दे सकें। ऐसे ज्ञान से कुछ भी लाभ नहीं है जिनका उपयोग हमलोग कुछ भी नहीं कर सकते हैं। गणित और व्याकरण, भाषा और प्रकृतिपाठ में इस प्रयोग का अवश्य व्यवहार और उल्लेख करना चाहिये।

पाठटीका लिखने में निम्नलिखित बातों पर विचार करना चाहिये। प्रत्येक पाठटीका में इनका उपयोग किया जाता है,

यह कथन समाप्त करने के पहले जिन पुस्तकों से सहायता ली गई है और जिन विद्वान् सुहृदों ने इस पुस्तक के निर्म्माण में मुझे किसी-न-किसी प्रकार से सहायता दी है उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना चाहता हूँ। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मैंने टीचिङ्ग, पंजाव एजुकेशनल जर्नल, शिक्षा-शास्त्र और मनोविज्ञान, मैकनी, रेन, वेलटन, ग्रे आदि पुस्तकों से सहायता ली है। उन पुस्तकों के और उनके लेखकों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ।

राँची ट्रेनिंग स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री यदुवीर प्रसाद एम० ए० वी० टी० और वावू नवरङ्ग सहाय का भी मैं वहुत उपकृत हूँ। इन दोनों सज्जनों ने शासन खण्ड के वहुत वड़े भाग को पढ़कर अपनी सम्मति दी है। पहले मेरा विचार था कि यह पुस्तक केवल चार वड़े भागों (अध्यायों) में विभक्त की जाय, किन्तु हमारे स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री यदुवीर वावू ने इसको कई छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त कर देने का परामर्श दिया। ऐसा करने से विद्यार्थियों और शिक्षकों को पढ़ने में सुविधा होगी। इस हिसाव से पुस्तक कई छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त कर दी गई है। उपान्त में जहाँ-तहाँ आवश्यकतानुकूल मोटे-मोटे शीर्षक भी दे दिये गये हैं।

इन महाशयों के अतिरिक्त छोटानागपुर के प्रारम्भिक ट्रेनिंग स्कूल के हेड पण्डितों को भी धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता। उन्होंने सम्पूर्ण पुस्तक पढ़कर कई उपयोगी आवश्यक परामर्श दिये थे। उनमें वुण्डू स्कूल (राँची) के हेड पण्डित अनुभवी विद्वान् पं० देववंश पाण्डेय ने इस पुस्तक को मुद्रित रूप में देखने की वड़ी उत्कण्ठा दिखाई। ट्रेनिंग कालेज के प्रो० ठाकुर प्रसाद एम० ए० एल० सी० पी० (लंडन) ने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर अच्छी भूमिका लिख दी है और मुझे इस क्षेत्र में सदा डटे रहने के लिये भी उत्तेजित किया है। उनके लिये आन्तरिक कृतज्ञता प्रकाशन है।

कई अनुभवी शिक्षकों का प्रभाव मेरे जीवन में और इस पुस्तक के लिखने में सहायक रहा है। उनमें कटक ट्रेनिंग कालेज के प्रिन्सपल श्रद्धेय श्रीमान्

के रूप में न होकर कई खण्डों में विभक्त रहना चाहिये। विषय-विभाग वैज्ञानिक विधि से करना चाहिये। स्पष्ट और सांकेतिक वाक्यों का प्रयोग करना लाभदायक है।

(१०) शिक्षा-विधि और कृष्णपट्ट-सारांश—शिक्षा-विधि में विषय के पढ़ाने की विधि के अन्तर्गत ज्ञात बातों की जाँच के लिये प्रश्न, भूमिका के प्रश्न, उत्तेजना और कौतूहल उत्पन्न करने के प्रश्न रहने चाहिये। चित्र, चित्रों के प्रयोग, मानचित्र का उपयोग, उत्तर के प्रश्नों के स्वरूप, व्याख्या के लिये अन्य उपायों का प्रयोग अवश्य उल्लिखित रहना चाहिये।

विधि

विषय और विधि की बातें जब दो स्तम्भों में रक्खी जायँ तो दोनों समानान्तर स्थानों में निर्दिष्ट रहनी चाहिये। किसी विशेष स्थलों के प्रति ध्यान दिलाने के लिये चन्द्राङ्कित प्रणाली का प्रयोग करना चाहिये। जो कुछ कृष्णपट्ट पर लिखा जाना उचित है उसको कृष्णपट्ट पर लिख देना चाहिये और उसका संकेत शिक्षा-विधि में करना चाहिये। गणित, रेखागणित और भूगोल में कृष्णपट्ट का निरन्तर प्रयोग करते रहना चाहिये। इसके बिना इन विषयों की पढ़ाई असम्भव है। साहित्य में शब्दार्थ, मौन-पाठ के पश्चात् भावार्थ, कठिन शब्दों की व्याख्या, पाठ का सारांश, प्रतिलोम या विलोम शब्दों का उल्लेख, ऐतिहासिक और भौगोलिक प्रसंगों का दिग्दर्शन, व्याख्या के लिये चित्रों और मानचित्रों का निर्देश कृष्णपट्ट पर अवश्य रहना चाहिये। कृष्णपट्ट पर लिखी हुई

विषय, विधि, स्तम्भ

कृष्णपट्ट

एफ० बी० ह्विटमोर (*Mr. F. B. Whitmore*) प्रधान हैं जिन्होंने ही मुझे बालाध्ययन में प्रवेश कराया था। अतएव उनके लिये भी कृतज्ञता की यह प्रेम-पुष्पाञ्जलि सादर समर्पित है। मेरे दो विद्वान् छात्रों ने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि करने में मुझे बड़ी सहायता दी है। यदि वे रात-दिन परिश्रम करके इस कार्य्य को पूरा न करते तो यह पुस्तक इतनी शीघ्रता से प्रकाशित न होती। इनके परिचय क्रमशः श्री यदुनन्दन पाठक आइ० ए० सी० टी० और श्री सीताराम पाण्डेय मैट्रिक सी० टी० हैं। परिशिष्ट अंशों को तैयार करने में श्रीयदुनन्दन पाठक ने बड़ा परिश्रम किया है। इनके लिये हार्दिक सहानुभूति, शतशः धन्यवाद और प्रेम-पूर्ण शुभकामना है।

इस पुस्तक में बहुत सी अशुद्धियाँ हो सकती हैं। पाठकों से, शिक्षकों से और शिष्य-शिक्षकों से मेरा अनुरोध है कि मेरी, इस कमजोरी की उपेक्षा कर इस छोटे से तालाब से अमृतमय बूँद निकालने का यत्न करें। सूचना मिलने पर अगले संस्करण में भाव और भाषा दोनों में पर्य्याप्त परिवर्त्तन कर दिये जायँगे।

रांची ट्रेनिङ्ग स्कूल
छात्रावास रांची।
रथयात्रा,
२१-६-१६३६

विनीत,
रासविहारी

साहित्य-अभ्यास पाठ २

विषय—हिन्दी साहित्य ।

पाठ—श्रीराम-विलाप ।

श्रेणी—छठी ।

औसत आयु—१२ वर्ष ।

समय—३५ मिनट ।

स्थान – राँची जिला स्कूल ।

उद्देश्य—'श्रीराम-विलाप' पाठ के द्वारा लड़कों के हृदय में साहित्य के प्रति अनुराग उत्पन्न करना और भ्रातृ-प्रेम की महिमा दिखलाना ।

उपादान—स्व-हस्त निर्मित श्रीराम और लक्ष्मण के पाठानुकूल चित्र, गोस्वामी जी का चित्र और पाठ्य-पुस्तक ।

सोपान	विषय	विधि	कृष्ण-पट्ट-सारांश
प्रस्तुतीकरण	भूमिका 'लड़के रामायण की कथा जानते हैं और लक्ष्मण की शक्ति लगने की वार्त्ता भी जानते हैं ।)	मनोयोग स्थापित करने एवं पूर्व्व पाठ की जाँच के लिये भूमिका के निम्न-लिखित प्रश्न पूछेंगे—	
	"मेघनाद"	(१) लक्ष्मण को किसने शक्ति-बाण से मारा ?	मेघनाद ने
	' हनुमान"	(२) शक्ति लगने के बाद लक्ष्मण को कौन युद्ध-क्षेत्र से लाया ?	हनुमान
	लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये थे ।	(३) लक्ष्मण की क्या दशा हुई थी ?	मूर्च्छित हो गये थे ।
	राम का दुःखित होकर रोने लगना ।	(४) लक्ष्मणजी को मूर्च्छित देखकर श्रीराम-जी की क्या दशा हुई ?	विह्वल होकर रोने लगे ।

शिक्षा-तत्त्व

बालक का नैसर्गिक संस्कार

मनोविज्ञान के मर्मज्ञों ने शिक्षा-शास्त्र के विवेचन में तीन बातों का उल्लेख किया है—बालक, विषय और पद्धति। इनमें सबसे प्रधान बालक है। शिक्षा का केन्द्र, लक्ष्य और पद्धति बालक में ही निहित है।

बालक

बालक को समझकर उसके अनुकूल विषय का निर्वाचन करना एवं उस विषय को सुन्दर रीति से पढ़ाना वैज्ञानिक शिक्षा-शास्त्र का सिद्धान्त है। बालक प्रकृति का रूप है। वह प्रकृति और परिस्थिति का अद्भुत सम्मिश्रण है। अपने समाज का प्रतीक है, बाल्यकाल में न वह पापात्मा है न पुण्यात्मा। उसमें ज्ञान-बीज है, ज्योति है, किन्तु वासना का कालुष्य नहीं। वह उद्देश्य-हीन होने पर भी सचेष्ट और क्रियाशील है। उसकी अवरुद्ध प्रकृति दूपित रूप धारण कर समाज की नाशकारिणी शक्ति हो सकती है। उसकी इच्छाओं को दबाना अमानुषिक है। उसकी चेष्टाओं को सुन्दर मार्ग से ले चलना शिक्षक का कर्त्तव्य है।

जब बालक शिक्षालय में प्रवेश करते हैं तब उनमें विभिन्नता रहती है। वे जन्म से ही भिन्न-भिन्न शक्तियाँ लेकर उत्पन्न होते हैं। जन्म से ही उनमें ऐसे-ऐसे संस्कार रहते हैं जो बढ़ाये जा सकते हैं। इसका एक और भी कारण है। जन्म-जात संस्कार

न	विषय	विधि	कृष्णपट्ट-सारांश
		एकत्र और शृंखला-बद्ध करेंगे ।	
	लक्ष्मणजी की मृत्यु से श्रीरामजी को अपयश और दुःख बढ़ाने की आशंका हो रही थी।	(१) लक्ष्मण के अचेत होने से रामजी क्यों दुःखी हुए ? इसका उत्तर लड़कों से निकलवाकर कृष्ण-पट्ट पर लिख देंगे और लड़कों की पुस्तक में उतरवा देंगे । अंत में सम्पूर्ण पाठ को शिक्षक स्वयं पढ़कर सुना देंगे और श्रेणी छोड़ देंगे । —शिक्षक	लक्ष्मण के समान आज्ञाकारी बन्धु के वियोग से श्रीरामजी विहुल हो उठे और उनके गुणों का स्मरण कर विलाप करने लगे । उनकी मृत्यु से श्रीरामजी को निन्दा और अपयश बढ़ने का भय हुआ। लक्ष्मण के निधन से रावण का मारा जाना और सीता का उद्धार असंभव दीख पड़ता था।

के साथ-ही-साथ परिस्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। पौधों की तरह मानस का विकास भी अपनी खाद्य सामग्रियों पर निर्भर करता है। उद्यान-रक्षक किसी पौधे में एक फूल भी नहीं बढ़ा सकता; किन्तु वह उसको उचित वृद्धि के लिये पर्याप्त जल, उर्वर स्थान एवं यथेष्ट प्रकाश का प्रबन्ध कर सकता है। इसी भाँति शिक्षक भी बच्चों के लिये सुन्दर वातावरण उपस्थित कर सकता है; और उनकी नैसर्गिक शक्ति का विकास करने में सहायक हो सकता है। आरोग्यवर्द्धक सामाजिक स्थिति में रखकर बालक के मानस के उपचय में सहायता दी जा सकती है।

बालक के सम्मुख वही कार्य दिया जा सकता है जिसका संस्कार बालक में दृढ़ रूप से पाया जाता है। संस्कार के विपरीत विषयों का ज्ञान देना पत्थर पर दूब जमाने के समान है। जिस विषय की शक्ति उसमें प्रबल हो उसी की ओर उसकी प्रवृत्ति दौड़ानी चाहिये। यदि लड़का साहित्य में उत्तम मालूम होता है, तो उसको साहित्य की ओर लगाना उत्तम है। यदि गणित की ओर झुकता हुआ है, तो उसी ओर झुकाना ठीक है यदि बालक झगड़ालू है, तो उसे सैनिक शिक्षा देनी चाहिये और यदि संग्रही है, तो व्यापार की ओर झुकाना ठीक है।

बालक के जन्म से ही उसमें ऐसी संस्कृति रहती है जो बाहरी अनुकूल साधन पाकर चमक उठती है।

संस्कृति बालक का विकास उसकी सामाजिक और धार्मिक शिक्षा के प्रभाव तथा जन्मजात पैतृक संस्कार का अद्भुत मिलन है। यथार्थ में यदि साहित्यिक भाषा में कहा

विषय	विधि
चौहद्दी उत्तर—एशिया माइनर। पूर्व—फारस और फारस की खाड़ी। दक्षिण—अरब समुद्र और अरब की खाड़ी। पश्चिम—लाल समुद्र।	शिक्षक पहले लड़कों को अपने हस्त मानचित्र की ओर संकेत करके उनसे चौहद्दी निकलवाने का यत्न करेंगे। तत्पश्चात् बड़े मानचित्र में उन स्थानों का संकेत कर स्वयं श्यामपट्ट पर मानचित्र बनाते जायँगे और लड़कों से भी अपनी बहियों पर बनवाते जायँगे।
प्राकृतिक रचना विस्तृत अफ्रिका पूर्व की ओर ढली हुई है। पूर्व और पश्चिम किनारों पर की भूमि सँकरी और मरुस्थल है। पश्चिम के किनारे पहाड़ियों की समानान्तर माला फैली हुई है।	आवृत्ति के प्रश्न पूछकर चौहद्दी को स्पष्ट कर देना। रिलीफ मैप की सहायता से बाईं ओर की बातों को निकलवाना। अरब से और दक्षिण भारत की भूमि से तुलना करके अरब की प्राकृतिक बनावट का स्पष्ट ज्ञान देना। दीवाल पर लटके हुए मानचित्र का संकेत कर उनका ज्ञान देना।
जलवायु— बहुत गर्म वर्षा का अभाव। दक्षिण-पूर्व में थोड़ी वर्षा होती है।	मरुभूमि का स्मरण कराकर जलवायु का ज्ञान देना। भारत-समुद्र से सामयिक वायु के कारण दक्षिण-पूर्व में थोड़ी वर्षा। आवृत्ति के प्रश्न पूछकर इनका ज्ञान स्पष्ट करा देना। पूर्वावृत्ति के प्रश्नों द्वारा श्यामपट्ट-सारांश निकलवा कर लड़कों की बहियों में अंकित करा देना।

जाय तो यही कहना होगा कि वालक माता-पिता के स्थायी संस्कारों का परिणाम है। उनका सारांश लेकर वह पृथ्वी-तल पर अवतीर्ण होता है। उसका संस्कार माता-पिता के विशेष व्यक्तित्व के सूत्र में वँधा रहता है। उसके माता-पिता का व्यक्तित्व उनके पूर्वजों के संस्कार की शृंखला में वँधा हुआ है। अतः प्राचीन काल को अर्वाचीन काल से वाँधनेवाला वालक ही है।

वालक की उन्नति के लिये सामाजिक आधार (socio-logical basis) पर ही शिक्षा का उद्देश्य अवलम्बित होना चाहिये। मानसिक विकास के लिये मनोविज्ञानिक (Psychological) आधार पर पद्धति की नींव पड़नी चाहिये; और विषय के निमित्त वैज्ञानिक (scientific) आधार का अवलम्ब ग्रहण करना चाहिये। वालक की जो कुछ मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ हैं वे स्वभाव (Nature) और साधन (Nurture) के मिश्रित फल हैं। अतः सवसे पहले इस वात के जानने की आवश्यकता है कि वालक की स्वाभाविक शक्ति कैसी है, और क्या-क्या है, और इनका उपयोग कैसे किया जा सकता है।

संस्कार की जाँच

वालक का मस्तिष्क एक शुद्ध कृष्णपट्ट के समान है। यह सिद्धान्त अव मान्य नहीं है। वालक कुछ विशेष संस्कारों को लेकर उत्पन्न होता है और उसका उसकी शिक्षा में कितना उपयोग किया जा सकता है—यही शिक्षक का विषय है। अनुसंधान से पता लगा है कि माता-पिता के समान ही संतान होती है। लम्वे मा-वाप के लम्वे और नाटे के नाटे लड़के होते हैं। भूरे, काले और गोरे के लड़के भूरे, काले और गोरे होते हैं। यह

विषय	विधि	कृष्णपट्ट-सारांश
		जीतकर उसने अपना अधिकार जमा लिया। गंगा नदी के किनारे मिलते समय उसने गुप्त घातकों के द्वारा अपने चचा को मरवा डाला। सन् १२९५ ई० में दिल्ली का बादशाह बन बैठा। कुछ को उच्च पदवियाँ देकर, कुछ को धन देकर और कुछ को पराजित कर अधीन कर लिया।

इसी क्रम से पाठटीका लिखने का अभ्यास करना चाहिये। आदर्श पाठ देते समय शिक्षक को पाठटीका शिष्य-शिक्षकों को दे देनी चाहिये। इससे शिष्य-शिक्षक पाठटीका के क्रम से शिक्षक की पढ़ाई की तुलना करते हैं और अपने अभ्यास तथा समालोचना-पाठ में उसी अनुभव का उपयोग करते हैं। शिक्षण-विद्यालयों में प्रत्येक शिष्य-शिक्षक को कम-से-कम दो समालोचना-पाठ और ३० अभ्यास पाठ देने पड़ते हैं। इन्हीं की सहायता से वे पढ़ाने की कुशलता प्राप्त करते हैं। कोई भी पाठ हो, ऐसा ही क्रम रहना चाहिये।

भी पता लगा है कि संतान उत्पन्न करनेवाले प्राणविन्दु (Cells) में ऐसे शक्तिशाली अंश रहते हैं जो संतान उत्पन्न होने के समय वंशानुक्रम से बराबर चलते रहते हैं। इसमें जो कहीं-कहीं भेद देखे जाते हैं, वे प्रायः विज्ञान के अनुसार सिद्ध किये गये मिलते हैं। यह भी कहा जाता है कि बालक माता-पिता के गुण का ½ अंश, पितामही और पितामह की शक्ति का ¼, वृद्ध पितामह और वृद्ध पितामही के संचित संस्कार का ⅛ अंश लेकर उत्पन्न होता है। किसी के पितृपक्ष एवं मातृपक्ष की कई पीढ़ियों को देखने से यह बात स्वयंसिद्ध के समान मालूम होती है कि बालक अवश्यमेव परम्परा का सारांश है। कौन-सा अन्तर किस कारण आया, इसका पता लगाने के लिये पूर्व की सारी वंशावलियों का ज्ञान होना चाहिये।

ऊपर की बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि बालक अपने माता-पिता का दूसरा रूप ही है। जन्म के समय ही यह निश्चय हो जाता है कि वह कैसा है और भविष्य में कैसा होगा। "माय गुने बछरू, पिता गुने घोर, नाहीं तो कुछ थोरो थोर" वाली कहावत वैज्ञानिक सिद्धान्त-सम्मत मालूम पड़ती है। अब हमलोगों को यह देखना है कि परिस्थिति परम्परा में क्या परिवर्त्तन कर सकती है और शिक्षक परम्परागत शक्तियों का क्या उपयोग कर सकता है।

एक बंगाली महाशय, जिनका जन्म ढाके में हुआ था, जन्म के कुछ दिन बाद संयुक्तप्रान्त में लाये गये और एक संयुक्त-प्रान्तीय सज्जन आसाम जाने के समय अपने नवजात शिशु को आसाम लेते गये। दोनों बच्चों का लालन-पालन अपने प्रान्त

हुआ है या नहीं। पढ़ाने के क्रिया साधनों में प्रश्न-विवरण, व्याख्या, उदाहरण, परीक्षा और श्यामपट्ट मुख्य हैं। यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रश्नों का क्रम व्योरेवार हो—पाठ्य विषय से बाहर न जाय. उनके और पूर्व ज्ञात उत्तरों से पूरा-पूरा सम्बन्ध रहे। प्रश्न ऐसे हों कि लड़कों को उत्तेजना बढ़े और अपने मुख्य विषय पर पहुँचने में कुछ सहायता भी प्राप्त होती रहे। समालोचना के समय प्रश्नों की स्पष्टता, उपयोगिता और भाषा की शुद्धता पर अवश्य वाद-विवाद होना चाहिये। विवरण स्पष्ट, चित्ताकर्षक, रोचक, हृदयग्राही और उपादेय होना चाहिये। व्याख्या सरल, आवश्यक, प्रसंगानुकूल सुगठित और संक्षिप्त होनी चाहिये। व्याख्या की भाषा सरल और अवस्थानुकूल होनी चाहिये। दृष्टान्त और उदाहरण उपयुक्त चित्ताकर्षक, सादृश्य में यथार्थ और संख्या में पर्याप्त होना चाहिये। अनुमान निकालने के समय लड़कों की बुद्धि को संचालित करना चाहिये। स्वच्छन्द विचारों से उनको निकलवाना चाहिये कि चित्र, ढाँचा आदि के प्रदर्शन में इनका पूरा-पूरा प्रयोग किया गया है या नहीं। श्यामपट्ट का सारांश आवश्यक, स्पष्ट, संक्षिप्त, सारगर्भित रूप में दिया गया है या नहीं। शिक्षक की लिखावट शुद्ध पठनीय, स्पष्ट तथा सुन्दर हुई है या नहीं। शिक्षक के श्यामपट्ट पर लिखते समय लड़के ध्यान में लगे थे या नहीं।

शिक्षक और श्रेणी की समालोचना करने में शिक्षक की स्थिति, आचरण, व्यवहार, भाषा, सहानुभूति और ज्ञान का अवश्य विचार करना चाहिये। शिक्षक की भाषा स्पष्ट, निर्दिष्ट,

में न होकर दूसरे प्रान्त में हुआ। उनकी भाषा में भिन्नता हुई। रहन-सहन बदल गई। आचार-विचार में काया-पलट हुआ, किन्तु उनका रंग और बनावट ज्यों-की-त्यों रह गई। रिपन कॉलेज के भूतपूर्व अध्यक्ष (Principal) पं० रमेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी के पूर्वज संयुक्तप्रान्त छोड़कर कलकत्ते चले आये और उनकी कई पीढ़ियाँ वहाँ बीतीं तो क्या परिवर्त्तन हुआ ? आज उनके पौत्र हिन्दी बोलना तो दूर रहे, हिन्दी समझ भी नहीं सकते। वे पूरे बंगाली हो गये हैं; किन्तु दैहिक शक्तियाँ या मानसिक शक्तियाँ जो माता-पिता से मिली हैं, उनमें कुछ भी परिवर्त्तन नहीं हुआ। उनकी भाषा, आचार-विचार और रहन-सहन पर प्रभाव पड़ा है। इस अपरिवर्त्तनीय शक्ति को विकास-परम्परा (biological heredity) और दूसरी को समाज-परम्परा (social heredity) कहते हैं। शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये कि सामाजिक परम्परा से लाभ उठाया जाय।

वालक में विशेषता है, भिन्नता है और भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं। उनका पता लगाने के लिये अनेक उपाय निकाले गये हैं। भिन्न-भिन्न वालकों में वुद्धि भिन्न-भिन्न मात्रा में पाई जाती है। किसी में साहित्यिक मनीषा अधिक होती है और किसी में कम। शिक्षा से इसी वुद्धि का विकास होता है, इसकी वृद्धि नहीं होती है। वालकों की इस वुद्धि की जाँच के लिये अनेक प्रकार के प्रश्न निकाले गये हैं जिनसे यह भी पता लगाया जाता है कि वालक साधारण है, मेधावी है अथवा अल्पवुद्धि है।

भिन्न-भिन्न वालकों के निर्वाचन के लिये अवस्था के मानसिक भाजन-फल के अनुकूल वुद्धि की परीक्षा के परीक्षात्मक

श्रेणी-शिक्षा और शासन

श्रेणी-शिक्षा की मुख्य बातें

किसी प्रकार का पाठ हो, परन्तु श्रेणी-शासन पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। शासन के विना पाठप्रदान असम्भव है। सुन्दर रीति से पाठप्रदान से शासन स्वतः अच्छा हो जाता है, किन्तु नवीन शिक्षकों को इसपर विचार करना चाहिये। किसी शिक्षा-मर्मज्ञ ने कहा है कि शिक्षक गढ़े नहीं जाते हैं—वे उत्पन्न होते हैं। शिक्षक का गुण स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। शिक्षण-विद्यालयों में कुछ ऐसी युक्तियाँ बतलाई जाती हैं जिनसे शिक्षक की शासन और शिक्षा-शक्ति विकसित होती है। श्रेणी-शासन बहुत अंशों में व्यक्तित्व के ऊपर निर्भर करता है। शिक्षक का कौशल (चातुरी) और विद्या का ऐसा गम्भीर प्रभाव होना चाहिये कि पढ़ाई में किसी प्रकार को बाधा न पड़ने पावे। शासन करने में शिक्षक का चरित्र और स्वभाव बहुत उपयोगी होता है। श्रेणी में प्रवेश करते ही ऐसा भान होना चाहिये कि यहाँ सब लोगों को कोई पवित्र कर्म आरम्भ करना है। श्रेणी-शासन के समय शिक्षक को शान्त और दृढ़ होना चाहिये। पढ़ाने के समय के उपद्रव का शमन करने के लिये शिक्षक की गम्भीर दृढ़ता और शान्तचित्तता बहुत लाभ की होती है। इनके होते हुए भी कुछ ऐसे नियम है कि जिनके ऊपर प्रत्येक शिक्षक को ध्यान देना चाहिये। ये नियम सब प्रकार के पाठों में इनके उपयोग वर्णनातीत है। श्रेणी-शासन के ये नियम बहुत महत्व के हैं।

प्रश्न चुने गये हैं। इसीके परिणाम को मानसिक भाजन-फल कहते हैं। इसके लिये मानसिक आयु निकालनी पड़ती है। तीन वर्ष के लिये मापक प्रश्न निर्वाचित हैं। यदि किसी विद्यार्थी की वार्षिक आयु ५ वर्ष है और वह ४ वर्ष के प्रश्नों को ही हल कर सकता है, तो उसकी मानसिक आयु ४ वर्ष की हुई। मानसिक भाजन-फल निकालने का यह नियम है—

मानसिक भाजन-फल

$$\frac{\text{मानसिक आयु} \times १००}{\text{वार्षिक आयु}} = \text{मानसिक भाजन-फल ।}$$

यह भी विचार से निश्चित किया गया है कि जिस व्यक्ति का मानसिक भाजन-फल १४० या इससे अधिक हो, वह अत्यन्त बुद्धिमान समझा जायगा। १२० से १४० तक महान बुद्धिमान, ११० से १२० तक उत्तम बुद्धिमान, ९० से १०० तक साधारण बुद्धिवाला, ८० से ९० तक साधारण से नीचे, ७० से ८० तक मन्द बुद्धिवाला और ७० से नीचे एकदम मन्दबुद्धि समझा जायगा।

जिसका भाजन-फल २५ या ३० के लगभग हो, वह निरा पशु के समान समझा जाना चाहिये। २५ से ५० तक की आयु १० वर्ष के बालक से भी नीचे की है। ऐसे लोग अपनी जीविका का भी उपार्जन नहीं कर सकते। इस मापक-प्रणाली के आविष्कार करने का श्रेय फ्रांस-निवासी 'बिने' (Benet) साहब को है। इसका प्रचार साइमन साहब ने किया। इन बुद्धिमापक प्रश्नों का प्रचार डा० टर्मन (Terman) ने अमेरिका में और बर्ट (Burt) ने इंगलिस्तान में किया है। इन प्रश्नों में ३, ४, ५, ६, ८, ९,

आपके इस व्यवहार से श्रेणी के शिष्टाचार में वाधा पड़ती है। इस प्रकार के व्यवहार से शासन में वाधा पड़ती है।

(१०) पढ़ाने के समय लड़कों को ठीक से वैठने के ऊपर जोर देना चाहिये। झुककर या शरीर को ढीला कर वैठने देने से लड़कों के वैठने के अभ्यास वुरे होते हैं। सीधे प्रकार से न वैठकर काम करने से काम भी ठीक नहीं होता।

(११) लिखने के समय दोनों पैरों को जमीन पर गिरा देना चाहिये। शरीर को ऐंठना और झुकाना ठीक नहीं। जंघों और जानुओं पर लेख-पुस्तक रखकर कुछ लिखना वुरा अभ्यास है। कलम को सीधा रखना चाहिये। नीव के दोनों छोरों पर वरावर दवाव देकर लिखना चाहिये। लिखने के समय ठीक-ठीक वैठकर लिखना वहुत आवश्यक है।

(१२) प्रश्नोत्तर के समय लड़कों को ठीक से खड़े रहने का अभ्यास कराना चाहिये। खड़ा होकर ठीक से उत्तर देने और ठीक से तनकर वैठ जाने का अभ्यास कराना चाहिये। किसी से कुछ कहते समय ठीक से खड़ा होना शिष्टाचार के अनुकूल है। शिक्षक को स्वयं खड़ा होकर पढ़ाना, प्रश्न पूछना, व्याख्या आदि करने का अभ्यास करना चाहिये।

(१३) पढ़ाने के समय पानी पीना, मलमूत्र त्याग करने जाना आदि के लिये लड़के छुट्टी माँगते हैं। इनको यथाशक्ति रोकना चाहिये। प्यास लगने पर पानी पीने की छुट्टी देना ठीक है, लेकिन प्रत्येक घंटे में ऐसा करना ठीक नहीं है। टिफिन के एक घंटे वाद और स्कूल वैठने के दो घंटे तक इन शौच-क्रियाओं के लिये छुट्टी देना अनावश्यक है। आकस्मिक घटनाओं के लिये

१० और ११ वर्ष के लिये प्रश्न निर्वाचित हैं। ११ से १४ वर्ष तक भी प्रश्न निकलते हैं; वे प्रायः फिजूल बातों को पकड़ने की योग्यता जाँचने में प्रयुक्त किये जाते हैं। इनसे अब समूहों की बुद्धि-परीक्षा भी होने लगी है। इसका प्रयोग पाठशालाओं में भी किया जा सकता है।

इन नवीन प्रश्नों के उद्घाटन से शिक्षक को अनेक सहायताएँ मिली हैं। शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह देखे कि बालक की बुद्धि किस प्रकार समुचित रूप से बढ़ाई जा सकती है। बालक के योग्य शिक्षा देना उसका कर्त्तव्य है। किसी विशेष व्यवसाय के लिये बुद्धि के अनुसार बालक को तैयार करना शिक्षक का ही काम है। जिस प्रकार बालक का चरित्र-निर्माण हो और वह समाज में रहने योग्य हो सके, ऐसा बनाना शिक्षक का कार्य है।

ऊपर की बातों से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हुआ है कि बालकों की मानसिक शक्तियों में अन्तर है। इस अन्तर को समझकर श्रेणी का कार्य्य करना उत्तम है। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट बुद्धिवाले बालकों के लिये अलग-अलग वर्ग नियत कर शिक्षा देना लाभदायक है। इनके लिये अलग-अलग पाठशालाएँ रहनी चाहिये।

पाश्चात्य देशों में बुद्धिहीन तथा मन्दबुद्धि बालकों के लिये अलग-अलग विद्यालय हैं। एक श्रेणी में पढ़ाते रहने पर भी युक्तियों के द्वारा संबद्ध जीवन के विकास के साथ-ही-साथ व्यक्तित्व का विकास करना चाहिये। सब प्रकार के बालकों को एक साथ एक अँधेरे कमरे में ठूँसकर 'टुआ दू' वाली धारा का अवलम्बन कर 'सुग्गा-रटन्त-पद्धति' से पढ़ाना नितान्त भूल

जीवन पर सदा दृष्टि रखना प्रधानाध्यापक का प्रधान व्यवसाय होना चाहिये।

स्कूल की भलाई के लिये प्रधान शिक्षक एवं सहायक प्रधानाध्यापक का पारस्परिक सम्बन्ध बराबर रुचिकर होना चाहिये। प्रधानाध्यापक को अपने प्रधान सहायक का कार्य स्पष्ट रूप से निर्धारित कर देना चाहिये। स्कूल का बहुत काम कभी-कभी नष्टप्राय हो जाता है और यही भ्रम कि यह काम प्रधान शिक्षक का है और वह प्रधान सहायक का है, इसी खींचातानी में पढ़ाई में बाधा होती है, पाठशाला का वायुमण्डल दूषित हो जाता है और अनेक प्रकार की ऊधमें मचने लगती हैं। गैर-सरकारी स्कूलों में इस बात पर खूब गौर करने की जरूरत है। यहाँ प्रधानाध्यापक का कार्य बहुत स्पष्ट रूप से होना चाहिये।

हेडमास्टर को सब शिक्षकों पर बराबर दृष्टि रखनी चाहिये। कभी किसी से किसी प्रकार का पक्षपात करना विद्यालय में द्वेष का बीज बोना है। शिक्षकों का पारस्परिक सम्बन्ध, शिक्षकों और छात्रों का पारस्परिक भाव, सहायक प्रधान शिक्षक के प्रति शिक्षकों का भाव और शिक्षकों का हेडमास्टर के प्रति कैसा भाव है, उनकी छानबीन शान्त रूप से करते रहना चाहिये। प्रान्तीय मनोमालिन्य, जातिगत वैमनस्य और धार्म्मिक द्वेष को जहाँ तक शीघ्र हो सके (तहाँ तक शीघ्र) हेडमास्टर अपने स्कूल से दूर भगाने का यत्न करे। शिक्षकों और छात्रों की पारस्परिक द्वेष-भावना को मार भगाने में हेडमास्टर की चातुरी प्रकट होती है। उसको मननशील होकर इस काम में दृढ़ होना चाहिये।

है। इससें व्यक्तित्व का विकास रुक जाता है और लड़के का भावी जीवन दूषित हो जाता है।

सहजात वृत्तियों का महत्त्व

बालक जो कुछ करता है उनके प्रेरक उसकी सहजात वृत्तियाँ (Instincts) हैं। बालक को ये ही वृत्तियाँ कार्य-सम्पादन में संचालित करती हैं। इन स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अतिरिक्त कुछ आवश्यक अन्य काम होते हैं, जैसे यदि कोई वस्तु आँख के सामने फेंकी जाय, तो लड़के पलकों को बन्द कर लेते हैं।

सहजात वृत्तियाँ या प्रवृत्तियाँ

इसी प्रकार खाँसना, निगलना आदि क्रियाएँ क्रियात्मक कार्य (Reflex) के नाम से पुकारी जाती हैं। भगवान ने शरीर की ऐसी रचना की है कि शरीर के अवयवों की रक्षा के लिये ये प्रेरक और अनैच्छिक कार्य मस्तिष्क के एक भाग से सम्पादित किये जाते हैं।

इन कार्यों पर बालक का कुछ भी अधिकार नहीं है। ये अंगरक्षा की रचनात्मक क्रियाएँ हैं; किन्तु सहजात वृत्तियों से मनुष्य का आत्मरक्षण, आत्मोन्नति, स्वाभाविक बुद्धि का विकास, चरित्र-गठन आदि सभी कार्य सम्पादित, मर्यादित, उत्तेजित एवं निष्पन्न किये जाते हैं। ये प्रवृत्तियाँ मनुष्य के लिये मार्ग-दर्शक का काम करती हैं। शरीर और मन रूपी गाड़ी के लिये ये अश्व के समान हैं। ये प्रवृत्तियाँ प्रायः विकासात्मक, परम्परागत कार्यों का विकास हैं। इनमें से कुछ आगे चलकर जाग्रत की जाती हैं।

चाहिये कि स्कूल का उद्देश्य चरित्र-निर्माण करना है, केवल परीक्षोत्तीर्ण कराना ही नहीं।

(३) प्रधानाध्यापक को बराबर गम्भीर, शिष्ट और दयालु होना चाहिये।

(४) प्रधानाध्यापक को सदा अपने कर्म्मचारियों को प्रायः कार्य्य करने का संकेत करना चाहिये। कभी-कभी अनुज्ञा से काम कराना चाहिये।

(५) सच्चे शिक्षकों की सहायता करनी चाहिये।

(६) विद्यालय के काम में अड़चन उपस्थित करनेवाले शिक्षकों को हटा देना चाहिये।

(७) परिदर्शक (Inspector) को अपना शुभचिन्तक समझना चाहिये।

(८) छात्रों के संरक्षकों की सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिये।

(९) छात्रों के सामने किसी शिक्षक पर दोषारोपण नहीं करना चाहिये।

(१०) लड़कों को खेल में उत्साहित करना चाहिये।

प्रधानाध्यापक को केवल उत्तम शिक्षक ही नहीं होना चाहिये वरन उन्हें कुशल व्यवस्थापक, प्रवीण कार्यकर्त्ता, निष्पक्ष शासक एवं मनोहर प्रबन्ध कर्त्ता होना चाहिये। उनको प्रत्युत्पन्नमति होना चाहिये कि वे अधीनस्थ शिक्षकों, छात्रों और छात्रों के अभिभावकों के साथ दृढ़ता और कुशलता के साथ वर्ताव कर सकें उन्हें सदा स्कूल के अभ्युदय में दत्तचित्त रहना चाहिये। उन्हें सदा आचारवान्, सुशील, विद्वान् और बलवान् बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। एक बालक की

मनुष्य, गाय आदि के बच्चे जन्म से ही माता के स्तनों से दूध पीने लगते हैं। दूध चूसने की क्रिया उन्हें किसी ने बताई नहीं है, लेकिन जन्मते ही वे यह करने लगते हैं। घोर गर्जन सुनकर लड़के सिमट जाते हैं। इसका कारण क्या है? उनके मन में किसी ने ऐसा कहा नहीं। केवल नैसर्गिक वृत्तियों के कारण वे डरते हैं। वे डरकर भागने की चेष्टा करते हैं।

जब लड़का कुछ-कुछ समझने लगता है, तब वह अपने माता-पिता की नकल करने लगता है। उसके पिता जिस प्रकार कपड़े पहनते हैं, मुँह धोते हैं, बातें करते हैं, भोजन करते हैं उसी प्रकार के व्यवहार करने की वह चेष्टा करता है। यह अनुकरण करने की प्रवृत्ति भी उसकी सहजात वृत्ति ही है। ऐसी ही अनेक स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं जिनका उपयोग प्रत्येक अनुभवी शिक्षक को करना चाहिये। चरित्र-गठन का सारा श्रेय इन्हीं प्रवृत्तियों के सुन्दर ढंग से संचालन करने में है।

इस अध्याय के आरम्भ ही में हमने स्पष्ट रूप से बतलाया है कि शिक्षक का मुख्य कार्य बालक के व्यक्तित्व का विकास करना है। उस बालक में सहजात वृत्तियाँ रहती हैं जो उस कार्य को संचालित करती हैं। हरएक व्यक्ति भिन्न होते हुए भी सामाजिक व्यक्ति है, और उसका विकास सामाजिक सहवास के ऊपर अवलम्बित है। यह भी बतलाया गया है कि शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह बच्चे को इस वातावरण में रखे और उसका साधन (Nurture) इतना स्वस्थ और लाभप्रद हो कि उसकी स्वाभाविक बुद्धि और शक्ति को पूर्णरूप से विकसित होने में सहायता मिले। इसलिये बालक की स्वाभाविक बुद्धि

है। वे हेडमास्टर से तुमुल संग्राम मचाये रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में रहकर काम करनेवालों को भी कठिनाई होती है। शासन बिगड़ जाता है। ऐसे शिक्षक उद्धत, उच्छृंखल, अव्यवस्थित, अपरिपक्व बुद्धिवाले लड़के उत्पन्न करते हैं, जो समाज और देश के लिये किसी काम के नहीं होते। जिन लोगों को पढ़ने और पढ़ाने में अनुराग है, वे शिक्षक का काम कर सकते हैं। ये शिक्षक उन्नति भी करते हैं और हेडमास्टर की सहायता भी करते हैं। यदि शासन भ्रष्ट करनेवाले, झगड़ा करनेवाले, क्लासों में बैठकर गप्पें लड़ानेवाले, पढ़ाने में मन नहीं लगानेवाले और शिक्षक का काम नीच समझनेवाले स्कूल से निकाल ही दिये जायँ, तो भलाई है, अन्यथा देश का रुपया बेकार खर्च होता है।

पढ़ाना एक कला है जिसमें अभ्यास करते-करते प्रवीणता प्राप्त होती है। कालेज में पढ़कर या बी०ए०, एम्० ए० पास कर पढ़ा लेना सम्भव नहीं है। कालेजों में व्याख्यान होते हैं। व्याख्यान और पढ़ाने में महान् अन्तर है। स्थायी स्थान खाली होने पर किसी पद पर काम करना, प्राइवेट ट्यूशन से रुपये जमा करना और पुलिस में जमादारी के लिये भी दरख्वास्त देते रहनेवाले शिक्षकों से पढ़ाई के काम में न उन्नति हो सकती है और न शासन ही ठीक से रक्खा जा सकता है।

पढ़ाई की कला में कुशलता और प्रवीणता प्राप्त करने के लिये या तो ट्रेनिङ्ग कालेज या ट्रेनिङ्ग स्कूल—वह स्कूल जहाँ शिक्षक की नियुक्ति हुई है। ट्रेनिङ्ग विद्यालयों में पढ़ाने की कला का ज्ञान दिया जाता है। मन और चेतना के क्रमिक विकास का

और वातावरण का अध्ययन आवश्यक है। बालक की बुद्धि कैसी है, क्या है, उसका उपयोग कब और कैसे किया जा सकता है, और इसके क्या-क्या उपाय शिक्षा मर्मज्ञों ने निकाले हैं; इनका संक्षेप रूप से विवेचन ऊपर कर दिया गया है। अब यह विचारना है कि बालक की प्रेरक वृत्तियों और उनके सहगामी अन्तःक्षोभों का उपयोग शिक्षा में किस प्रकार किया जा सकता है।

शिक्षक का सबसे पहला काम यह है कि वह लड़कों की चेष्टाओं का अध्ययन करे। बालकों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को दबाना ठीक नहीं है। उद्दाम प्रवृत्तियों की धारा सत्कार्य की ओर पलट देने से अपार लाभ हो सकता है। यही कारण है कि शिक्षा-विज्ञान के मर्मज्ञों ने प्रवृत्ति-स्तम्भन (Inhibition of instinct) को हानिकारक बतलाया है। स्वस्थ विकास के निमित्त उद्दाम और उपद्रवी प्रवृत्तियाँ यदि अनुकूल व्यापार की ओर लगाई जायँ तो अच्छा फल मिल सकता है। लड़कों को खेल-कूद में लगाकर कई स्वाभाविक प्रवृत्तियों का मनोहर उपयोग किया जा सकता है। यह प्रवृत्ति-संयम (sublimation of instinct) कहा गया है। आत्म-संयम और चरित्र-संगठन का यह मूल आधार है। यह प्रवृत्ति-निरोध से भिन्न और उससे अधिक कार्य-साधक है। इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से भरे पड़े हैं। वृटिश-राज्य के संस्थापक बालक क्लाइव की प्रवृत्ति किस प्रकार उद्दाम और प्रबल थी, जिसका प्रयोग लॉर्ड क्लाइव के द्वारा किस प्रकार हुआ। यह अनुभव से देखा गया है कि उच्छृंखल और उद्धत बालक कालान्तर में प्रतिभाशाली और यशस्वी नेता बन जाते हैं। बल-पूर्वक बालक के ऊपर कार्यभार का नियन्त्रण

मास्टर को नाम लिखने के समय उनकी जाँच ठीक रीति से करनी चाहिये और उनको ठीक तरह से ठोंकपीट कर उचित श्रेणी में प्रवेश कराना चाहिये। इसमें हेडमास्टर की सतर्कता ही लाभदायक है। तरक्की और नाम लिखाने के समय यदि हेड मास्टर सतर्क रहें तो बड़ा लाभ होता है।

परीक्षा

परीक्षा आधुनिक शिक्षा की जाँच की कसौटी है। परीक्षा से ही शिक्षक और विद्यार्थी दोनों का कार्य्य आँका जा सकता है। आधुनिक परीक्षा से मानसिक विकास एवं बुद्धि का पता ठीक ठीक भले ही न लगे, किन्तु कितना पढ़ा है, कैसा पढ़ा है, डूब कर विषय का अध्ययन किया है, अध्ययन करने के बाद धारण करने की शक्ति उसमें है या नहीं, समझकर भाव प्रकाशित करने की शक्ति कैसी है, इत्यादि बातों का पता इस परीक्षा से लग जाता है। आधुनिक परीक्षा-प्रणाली को सदोष समझकर कितने लोगों ने दूसरे-दूसरे ढंगों का आविष्कार किया है जिनसे मानसिक जाँच तो हो जाती है, लेकिन लेखशक्ति का पता लगाना कठिन हो जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से गौर करने पर यह बात आवश्यक मालूम होती है कि भला, बुरा, उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, मेधावी, मन्द, प्रत्युत्पन्नमति आदि में भेद जताने के लिये किसी परीक्षा-प्रणाली की जरूरत है। उसका रूप चाहे जैसा भी हो। परीक्षा है तो कष्टदायी, किन्तु अनिवार्य है।

आधुनिक जगत में परीक्षा के तीन मुख्य ढंग हैं, जो काम में लाये जा सकते हैं। (१) साप्ताहिक परीक्षा, (२) वार्षिक

एवं आत्म-संयम के कड़े नियम लादना उसके संस्कार को बिगाड़ देना है।

मनोविश्लेषण के पंडितों ने इसका बड़ा भयंकर परिणाम बतलाया है। सहजात वृत्तियों एवं उनके सहगामी अन्तःक्षोभों के कृत्रिम नियन्त्रण से अनेक घातक परिणाम होते हैं,जो मानसिक रोगों के रूप में प्रकट होते हैं, जिनका दूरीकरण प्रख्यात चिकित्सकों के लिये भी असम्भव हो जाता है; किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि बालक यदि उच्छ्रृंखल वृत्तिवाला है तो वह वैसा ही रहने दिया जाय। यदि उद्धत बालकों के व्यापारों का अवरोध न किया जाय तो वह नष्टप्राय हो जायगा। अनाचारी उच्छ्रृंखल वृत्तिवाले लड़कों का विनाश अवश्यम्भावी है। इससे व्यक्तित्व का विनाश होता है। मानापमान करके और स्वेच्छाचारी होकर कोई बालक पनप नहीं सकता। बालकों के लिये डाँट-डपट और प्रेम दोनों की आवश्यकता है। बालकों को स्वतन्त्रता प्रदान करना तभी ठीक है, जब वे इसका सदुपयोग कर सकें।

व्यक्तित्व का विकास विचार-स्वातंत्र्य पर अवलम्बित है; किन्तु इसका ठीक अर्थ समझकर कार्य किया जाना चाहिये। शिक्षक का यह परम कर्त्तव्य है कि वह बालकों को अपने कर्त्तव्य से प्रेम करावे। इसके लिये बालक का अवधान पराधीन (Non-voluntary) से स्वाधीन (Voluntary) एवं स्वाधीन से स्वतःप्रवृत्त (Spontaneous) की ओर ले जाना चाहिये।

अभ्यास या आदत

बालकों की शिक्षा में अभ्यास एक विशेष महत्त्व की वस्तु

साल के शुरू ही में ऐसा करना हेडमास्टर के लिये ठीक है। इस विषय में उसे कार्य्यक्रम और कार्य्यसन्धि का पूरा ज्ञान रहना चाहिये। यदि इन दोनों के ज्ञान रहे विना समय-विभाग वनाया जायगा, तो वह और भी बुरा होगा। ऊपर के नियमों के अनुसार शिक्षकों की संख्या, छात्रों की संख्या और खास विषयों की संख्या पर ध्यान रखकर ही इन्हें इसका अभ्यास कराया जा सकता है।

गृह का कार्य्य

गृह-कार्य्य

शिक्षा-विज्ञान की दृष्टि से देखा जाय, तो यही कहना पड़ेगा कि घर पर पढ़ने-लिखने का काम करने के लिये लड़कों को भार देना ठीक नहीं है। दिन भर दस वजे से लेकर चार बजे तक स्कूल में बैठकर जिस लड़के ने पढ़ा है, उसके लिये अधिक वोझ लादना व्यर्थ है। मन्द बुद्धिवाले या मेधावी बालकों को किसी प्रकार गृह-कार्य्य से लाभ की संभावना नहीं होती है। छोटे-छोटे बच्चों को तो घर पर काम करने की कुछ भी जरूरत नहीं होती है। लेकिन शिक्षा का वायुमंडल खराव होने से लड़के स्कूल में ठीक से पढ़ाये नहीं जाते हैं। वहाँ उन्हें रटाने, याद कराने, शब्दों को रट जाने एवं विना समझे पढ़ने पर ही जोर दिया जाता है। इसलिये कभी-कभी अभिभावकों को अपने बच्चों की बुद्धि-विषयक शिक्षा पर भी ध्यान देना पड़ता है। मिडूल स्कूल के छात्रों के लिये एक या डेढ़ घंटे तक काम करना पर्य्याप्त है। इसमें उनलोगों को हस्तलिपि या अभ्यास-स्वरूप हिसाव के कुछ प्रश्न वनाने को दिये जा सकते हैं। हाईस्कूल के नीचे के दो वर्गों के लिये दो घंटे तथा उच्च

(२) नीचे के वर्गों में दो विषयों और ऊपर के वर्गों में चार विषयों से अधिक विषय में गृह-कार्य्य नहीं देना चाहिये ।

(३) घर पर ऐसा काम देना चाहिये कि बिना किसी शिक्षक की सहायता के ही वह काम कर सके ।

(४) नीरस कार्य्य नहीं होना चाहिये; जैसे, किसी नोट की नकल करना ।

(५) बच्चों को दुहराने के पाठ और सयाने विद्यार्थियों को ऐसे विषय देने चाहिये जिनमें कई बातों के सोचने का अवसर मिले ।

(६) गृह-पाठ जब एक बार दे दिया गया है; तो उसको अवश्य देखना चाहिये ।

(७) ऐसा काम नहीं देना चाहिये कि लड़के नकल कर आसानी से शिक्षक को दिखला सकें ।

(८) लिखने का काम जहाँ तक हो सके, कम ही देना चाहिये ।

(९) बच्चों को हस्तलेख (Hand-writing) पर अवश्य अभ्यास कराना चाहिये । प्रत्येक दिन भाषा-शिक्षक को एक पेज प्रतिलिपि या हस्तलिपि देखने का अभ्यास डालना चाहिये ।

(१०) व्याकरण या हिसाब में गृह-कार्य्य बराबर देना चाहिये ।

इसका एक कार्य-क्रम श्रेणी में टँगा रहना चाहिये कि निर्धारित विषय में निश्चित दिन गृह-पाठ अवश्य दिया जाय और वह अपने सहपाठियों से तकाजा करे तथा माँगे ।

लड़कों के माँ-बाप के यहाँ गृह-पाठ का कार्य-क्रम कभी-कभी भेजते रहना चाहिये कि वे भी गृह-पाठ की ओर ध्यान देकर काम में लगे रहें ।

को नई आदतें डालने का यत्न कराना चाहिये। स्कूल में ठीक समय पर आना, अपनी चीजों को ठीक तरह से रखना, शुद्ध-शुद्ध उच्चारण कर पढ़ना और ठीक ढंग से बैठने आदि का अभ्यास, इसी बाल्यकाल में डालना चाहिये। इनके विपरीत जो अभ्यास हों उनको दूर भगाने का यत्न शिक्षक को यथाशक्ति करते रहना चाहिये। अभ्यासों के निर्माण-कार्य के लिये बाल्यकाल ही स्वर्णयुग है।

सारा मनुष्य-जीवन अभ्यासों का पुंज है। प्रातःकाल से लेकर रात्रि में सोने के समय तक या निद्रावस्था में भी जितने काम होते हैं, वे अभ्यास के अधीन हैं। सोना, चलना, बोलना, कपड़ा पहनना, बातें करना आदि अभ्यास ही के अधीन हैं। ये काम पीछे ऐसे हो जाते हैं कि इनपर ध्यान देने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। स्टेशनों में काम करनेवाले कर्मचारियों के लिये गाड़ी का आना-जाना उतना बाधक नहीं है, जितना एक नये यात्री के लिये।

इसके सम्बन्ध में तीसरी बात जो याद करने योग्य है वह यह है कि अभ्यास सिखाये जा सकते हैं। सोच-विचारकर लक्ष्य सामने रखे जाते हैं, और उन्हें सिखाने के लिये उनका साधन तैयार कर लेते हैं। फिर आवृत्ति के द्वारा उनका निर्माण दृढ़ हो जाता है। नई भाषा, नया खेल आदि सीखे जाते हैं। इनको सीखने के लिये उद्देश्य सीखते हैं, फिर विविध क्रियाओं और गतियों पर, जो उद्देश्य को पूरा करने के लिये आवश्यक हैं, उन क्रियाओं का अभ्यास करते हैं। किन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि प्रयोजन के बिना भी कई अभ्यास पड़ जाते हैं, जो पीछे छुड़ाने से भी नहीं छूटते।

भाव नहीं होता। इनके सहयोग के बिना पारस्परिक सहयोग तथा प्रेम का होना असम्भव है और प्रेम तथा सहानुभूति हुए बिना संबन्ध पक्का नहीं हो सकता।

शिक्षक और संरक्षक का सहयोग भ्रम को दूर करनेवाला होता है। अनेक विषयों की उपयोगिता अबतक माता-पिता नहीं समझते हैं। नवीन रीति के विषय में भी उनका विचार अनुकूल नहीं रहता है। शिक्षक को बातें करते ही पता चल जायगा कि लड़कों के अभिभावक क्या चाहते हैं।

स्कूल के विषयों को पढ़ाने में स्कूल के आसपास की चीजों से किस प्रकार सहायता ली जा सकती है, ज्ञान कैसे विस्तृत किया जा सकता है, बागान और परिस्थिति से क्या पढ़ाया जा सकता है, भूगोल की शिक्षा पास के तालाब से या प्रकृति-पाठ की शिक्षा बाग के पौधों से किस प्रकार दी जा सकती है! इत्यादि बातों को बतलाने से अभिभावक शिक्षक के कथनानुसार लड़के को पढ़ाने में सहमत हो जायेंगे। लड़कों की पढ़ाई शिक्षक और अभिभावक के परस्पर भाव और विश्वास पर ही निर्भर करती है।

पढ़े-लिखे शिक्षक और अभिभावक इसका ठीक विचार कर सकते हैं कि उनका परस्पर का प्रेम और सहयोग कैसे बढ़ेगा। तथापि शिक्षाविदों ने निम्नलिखित उपाय निकाले हैं।

(१) प्रधान शिक्षक किसी का नाम तब तक न लिखे जब तक उसका अभिभावक नाम लिखाने के समय स्कूल में न आवे। उस समय प्रधान शिक्षक अभिभावक से यह कह दे कि 'जब तक आपका बालक मेरे स्कूल में रहेगा, तब तक मैं इसका पिता के

बालक अनुकरणशील हैं। उनका चलना और बोलना भी इसी अनुकरणशीलता के द्वारा आता है। जो अन्य लोगों को करते देखते हैं, वे स्वयं करने में प्रवृत्त हो जाते हैं। यह प्रवृत्ति विशेष कर उनलोगों के अनुकरण करने में प्रबल होती है जिनको बालक मान्य, पूज्य या आदर्श-चरित समझते हैं। अतः प्रत्येक शिक्षक को यह उचित है कि वे जो कुछ करें, सावधान होकर करें। बालकों के चरित्र, स्वभाव और शील के उत्तरदायित्व का भार बहुत-कुछ शिक्षकों पर निर्भर करता है। हमने ऊपर यह बतलाया है कि अभ्यास-निर्माण जान-बूझकर किया जाता है और बिना जाने-बूझे अनुकरण के द्वारा भी इसका शिलान्यास होता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षक जो कुछ सिखाना चाहता है वह कार्य करके दिखावे और उचित ज्ञान की प्राप्ति सिखलावे। पहला यह है कि जो शिक्षक कराना चाहता है वह स्वयं आदर्श बनकर करे और दिखलावे तथा अच्छे कामों के लिये साधन एवं उपदेश का अवलम्बन करे।

अभ्यासों के सम्बन्ध में 'जेम्स' ने कुछ उपयोगी सिद्धान्त बतलाये हैं, उन्हें जानना शिक्षक के लिये अत्यन्त आवश्यक है—

(क) अपने अभ्यास को खूब दृढ़ता से आरम्भ करो। सारी मानसिक चेष्टाओं को उसी ओर लगा दो जिससे तुम्हारे अभ्यास पक्के हो जायँ। विरोधी भावों को पास न फटकने दो। ठीक समय आने पर न चूको। उत्तेजना और अनुकूल परिस्थिति से अवश्य लाभ उठाओ।

(ख) जब तक नये काम का शिलान्यास पक्का न हो जाय तब तक विघ्नों को या ऐसे-ऐसे अवसरों को न आने दो

इस प्रकार जब प्रधान शिक्षक सहायक और बालकों के संरक्षक का काम उत्साहपूर्ण होगा, तो शिक्षा की उन्नति दिन-दूनी रात-चौगुनी होगी। अभिभावकों को मिलाने के गुण शिक्षक में होना चाहिये। यदि वह न्यायी, निष्पक्ष, उदार, दयालु, विचारशील, उत्साही, सत्यवादी, स्पष्टवादी और परोपकारी है, तो हरएक अभिभावक उसका सम्मान करेगा। यदि वह अभिभावक को कुछ कहना चाहेगा, तो बड़ी कुशलता से कह सुनावेगा।

वह अपने पद की मर्यादा भी अक्षुण्ण रख सकता है, शासन उसका आदर्श होगा और अभिभावकों पर अपनी न्याय-प्रियता का प्रभाव जमाये बिना न रहेगा। यदि कोई शिक्षा-मर्मज्ञ अभिभावक प्रधानाध्यापक की भूल दिखलायेगा, तो वह सहर्ष उसको स्वीकार करेगा और अपना सिद्धान्त अटल रक्खेगा।

शिक्षक को यह भी समझना चाहिये कि छात्रों के प्रति उसका कर्त्तव्य केवल स्कूल में ही समाप्त नहीं होता। उसका कर्त्तव्य जीवन-व्यापी है। शिक्षक को अपने छात्रों का बराबर ख़याल रखना चाहिये और उत्सव-शोक-खेल में, सभी जगहों में उसका हित-चिन्तन करते रहना चाहिये। लड़कों के दूर रहने से शिक्षक भय उत्पन्न कर सकता है, लेकिन भय दिखलाकर शासन करना अच्छा शासन नहीं कहलाता।

शिक्षकों को सदा शिष्यों के साथ मिलने से उनका भय जाता रहता है, किन्तु सहानुभूति उत्पन्न होती है और यही सहानुभूति जीवन के उदात्त गुणों की एक वृत्ति है और प्रेम की जननी है जिससे यह संसार असार होकर भी सार माना जाता है।

जिनसे नये अभ्यास में वाधा पड़ने की सम्भावना हो। प्रायः ऐसा होता है कि बालक बीड़ी न पीने की प्रतिज्ञा करता है, १० या १५ दिनों तक वह छोड़ देता है, लेकिन संगति में पड़कर फिर पीने लगता है। इस प्रकार आदर्श से गिरना मनुष्य को निर्बल बना देता है। दस उपयोगी अभ्यास बनने से कहीं एक बार गिरना हानिकारक है। शराबी, नशाखोर और आलसी मनुष्यों का चरित्र-भ्रंश इसी प्रकार होता है।

(ग) जिस अभ्यास के निर्माण या बुरे स्वभाव के त्यागने की प्रतिज्ञा की है, उसके लिये जो व्यवहार करने की आवश्यकता हो उसे ज्यों ही अवसर सामने आवे, ग्रहण करो और काम करने में प्रवृत्त हो जाओ। विचार करने से विशेष लाभ नहीं है। लोग केवल मनसूबा बाँधते रह जाते हैं और समय हाथ से निकल जाता है। ज्योंही अन्तःक्षोभ की प्रेरणा हो, त्योंही व्यवहार में तत्पर हो जाओ। समय आने पर 'आज नहीं कल वाला' स्वभाव स्वभाव-निर्माण का घातक है। इस प्रकार आलस्य करने से लड़के सुस्त हो जाते हैं और समझते रहने पर भी हानि-कारिणी आदतों के दूर भगाने में समर्थ नहीं होते। पुनः-पुनः कार्य करते रहने पर व्यवसाय की आवश्यकता नहीं पड़ती; परन्तु आरम्भ में बार-बार व्यवसाय का प्रयोग करना आवश्यक है।

स्वभाव-निर्माण में केवल उपदेश ही से संतुष्ट न होओ। बालकों को सुयोग पाने पर काम में लगाना चाहिये। केवल उपदेश ही से काम नहीं चलता। स्वयं आदर्श-चरित्र होकर कार्य की ओर उन्हें झुकाना चाहिये।

अभ्यास थोड़ा-थोड़ा प्रति दिन करना चाहिये। यदि किसी

स्पर्द्धा का भाव जो प्रत्येक व्यक्ति में पाया जाता है, वह स्कूल में आकर सामूहिक भाव का रूप धारण करता है। एक श्रेणी को दूसरी श्रेणी के साथ खेल खेलाकर यह भाव जागृत किया जाता है। एक स्कूल को दूसरे स्कूल के साथ, छात्रावासी छात्रों को अन्य छात्रों के साथ खेल की व्यवस्था कर उनकी स्पर्द्धा जागृत करनी चाहिये। होड़ का भाव रहने से आगे निकल जाने का उत्साह पैदा होता है। स्वार्थ परमार्थ का रूप धारण करता है और इससे सामूहिक जीवन का विकास होता है। इससे जीवन में युद्ध करके सफलता प्राप्त करने की कला मालूम होती है और बालक धीरे-धीरे यह सीखता है कि कैसे लोगों के साथ मिलकर काम किया जाता है।

विद्यालय भी एक छोटा संसार है, जहाँ जीवन की शिक्षा सूक्ष्म रूप से दी जाती है। संघबद्ध जीवन में ही इसका आशय समझा जा सकता है।

छात्रावास

छात्रावास का प्रयोजन

सामाजिक जीवन की उन्नति का प्रधान साधन छात्रालय है। जिस छात्र को रहने के लिये इच्छानुसार घर नहीं है, खाने के लिये शुद्ध भोजन नहीं है और नहीं आदतों के निर्माण के लिये अच्छी संगति नहीं है, उसके लिये छात्रावास में रहना आवश्यक है। इन्हीं सुविधाओं के लिये छात्रावास में छात्रों को रहने की व्यवस्था करना जरूरी है। छात्रावास में भी कुरीतियाँ असावधानी के कारण घुस सकती हैं।

अभ्यास को अपना स्थायी सहचर और अनुचर बनाना चाहते हो, तो उसके अनुसार प्रतिदिन थोड़ा कार्य करो। कार्य में प्रवीणता-प्राप्ति के लिये अभ्यास बहुत आवश्यक है। छोटी-छोटी बातों में उचित परिश्रम करने का अभ्यास बाल्यकाल ही में डालना चाहिये। इन प्रयासों से बालक बड़े-बड़े कामों में प्रयास कर सकता है और अपने को सदाचारी भी बना सकता है।

ऊपर हमने यह लिखा है कि अभ्यास-निर्माण में अनुकरण का गम्भीर प्रभाव पड़ता है। अनुकरण अभ्यास का उत्पादक है। यह अभ्यास को पुष्ट करता है। यह अनुकरण बालक की सहजात वृत्तियों में एक है। ये वृत्तियाँ मनुष्य को कार्य करने के लिये दो कारणों से प्रेरित करती हैं—आत्मरक्षा के लिये और अपनी जाति की वृद्धि के लिये। ये वृत्तियाँ पशुओं में और मनुष्यों में समान ।रूप से पाई जाती हैं; किन्तु मनुष्यों की वृत्तियों में विशेषता है।

मनुष्य की वृत्तियों के साथ-साथ उसका ज्ञान भी बढ़ता है और मनुष्य इनका सदुपयोग भी कर सकता है। शिक्षक इन वृत्तियों का उपयोग कर बालक के जीवन को समाज के लिये उपयोगी बना सकता है। इन प्रवृत्तियों के विकास के लिये उत्तेजना, आन्तरिक प्रेरणा और व्यवहार आवश्यक हैं। उत्तेजना और व्यवहार के लिये प्रेरणा की आवश्यकता होती है। सैकड़ों आदमी एक घोड़े को तालाब पर ले जा सकते हैं; किन्तु कोई भी उसे पानी नहीं पिला सकता। जब तक उसमें पानी पीने की इच्छा न होगी तब तक वह पानी नहीं पी सकता। बालक

गन्दी संगति का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। एक सड़ा हुआ आम हजारों अच्छे आमों को भी सड़ा डालता है। दुर्व्यसनी, दुराचारी, आलसी और नशाखोर छात्रों को, जहाँ तक हो, छात्रावास से दूर रखना चाहिये। निरीक्षक को इस बात का भार समझना चाहिये कि यदि एक भी विद्यार्थी उसके छात्रावास में रहकर दुर्व्यसन में फँस गया, तो उसके पाप का फल उसे भी भोगना पड़ेगा।

नैतिक उन्नति जीवन को पाशविक उन्नति से बढ़कर है। इसे आगे बढ़ाना मनुष्य का कर्त्तव्य है। सत्यप्रियता, स्पष्ट-वादिता, सच्चरित्रता, समयानुवर्तिता, आज्ञावर्तिता इत्यादि गुण छात्रावास में सहज ही सीखे जा सकते हैं और अवगुण भी सहज ही आ सकते हैं। छात्रावास के छात्रों की नैतिक उन्नति पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

छात्रावास के छात्रों का चरित्र बाहर के लोगों को छात्रालय में ठहराने से भी बिगड़ सकता है। छात्रावास में किसी को ठहरने देना छात्रों की पढ़ाई में बाधा उपस्थित करना है। यदि शिक्षा-विभाग का कोई व्यक्ति या छात्र का अभिभावक छात्रा-वास में ठहरना चाहे, तो उससे 'अतिथि शुल्क' लेकर अतिथि-भवन में ठहरना चाहिये। जहाँ अतिथि-भवन नहीं है, वहाँ किसी के ठहरने की आज्ञा नहीं होनी चाहिये। यदि अतिथि-भवन हो, तो उस अतिथि-पुस्तक में छः बातें रहनी चाहिये, जैसे—अतिथि का नाम, गाँव का पता, किसका अतिथि, कबतक और किस दिन ठहरा, अतिथि-शुल्क कब दिया और छात्रावास के नायक या निरीक्षक का हस्ताक्षर।

की आन्तरिक रुचि को समझकर इन प्राकृतिक प्रवृत्तियों और सहकारी अन्तःक्षोभों का प्रयोग करना चाहिये।

भय, घृणा, हठ, क्रोध, जिज्ञासा, विधायकता, ममता

अब हम कुछ प्रसिद्ध वृत्तियों का वर्णन करते हैं, जिनके प्रयोग से शिक्षक, बालक के व्यक्तित्व का विकास सफलता-पूर्वक सम्पन्न कर सकता है।

भय का भाव प्रत्येक बालक में पाया जाता है। कठोर शब्द सुनकर बालक डर जाते हैं। आत्म-रक्षा के लिये यह ईश्वर-दत्त परम्परागत वृत्ति बालक में पाई जाती है। सहचार के कारण यह वृत्ति पुष्ट होती है। बिजली चमकने तथा मेघ-गर्जन को सुनकर डरनेवाली माता के साथ रहनेवाला बालक बिजली से बहुत डरता है। बनावटी साँप दिखलाकर लड़कों को डराना हानिकारक है। भूत-प्रेतों का नाम लेकर एवं 'भकौआ' कहकर डराने से लड़कों के हृदय में भय स्थिर हो जाता है जो आगे के लिये हानिकारक हो जाता है।

भय

भगवान् ने भय के साथ-ही-साथ निर्भयता का भाव भी बालकों में रख दिया है। इस भाव को जाग्रत कर लड़के को दृढ़ बनाना और उसमें आत्मविश्वास उत्तेजित कर भय का निवारण करना चाहिये। यदि किसी लड़के ने खिड़की के शीशे तोड़े हैं और दंडभय के कारण वह ऐसा कहने से मुँह मोड़ता है, तो सच्ची बात कहने को उत्तेजित करना चाहिये, और सत्य बोलने के लिये उसकी प्रशंसा करनी चाहिये, शिक्षा देने में भय की प्रवृत्ति बहुत-कुछ सहायता दे सकती है। भय की सहायता से बालकों को बुरे

से लड़के आपस में झगड़ नहीं सकते, अन्याय से खेल जीतने की कोशिश नहीं कर सकते और व्यर्थ में समय नहीं गँवा सकते।

ईमानदारी के साथ खेल खेलना जितना अच्छा है; बेईमानी से खेल खेलना और खेल जीतना उतना ही बुरा भी है। लड़कों की टोलियों या आपस में झगड़े हो जाते हैं। उन्हें शिक्षक को रोकना चाहिये। हार-जीतवाले खेलों में एक-एक न्यायी का रहना बहुत जरूरी है और उसको खेलों के सब नियम जानने चाहिये और वही मध्यस्थ उपयोगी है; जो पहले खिलाड़ी रह चुका है। प्रत्येक प्रधान शिक्षक को खेल के नियमों का ज्ञाता होना चाहिये जिसमें झगड़े होने पर उचित न्याय कर सके।

खेल को अनिवार्य करना ठीक नहीं है। ऐसा करने से इससे जो विनोद और शारीरिक लाभ होता है वह चला जाता है, किन्तु इसको इतना रोचक बनाना चाहिये कि लड़के स्वयं खेल में आवें। कालेजों में या ट्रेनिङ्ग विद्यालयों में यह अनिवार्य बनाया जा सकता है, लेकिन नियन्त्रण से उतना लाभ नहीं है। कुछ शिक्षाविदों का कहना है कि भारतवर्ष में खेल अवश्य अनिवार्य होना चाहिये। यहाँ के लोग इसके महत्त्व को अभी नहीं समझते हैं।

यह आवश्यक है कि खेल नियमानुकूल, एवं अवस्था, जलवायु तथा अनेक विचारों की दृष्टि से रहना चाहिये। छात्रावास के छात्रों के लिये यह आवश्यक और अनिवार्य रहना चाहिये। कभी-कभी मनोविनोद के लिये अन्तर्विद्यालयिक खेलों के स्थान में अन्तर्वर्गीय खेलों की व्यवस्था रहनी चाहिये।

खेलों के लिये एक साफ मैदान होना चाहिये जिसमें लड़के

कामों से रोक सकते हैं। जिसका परिणाम बुरा है, उस काम से भय की प्रवृत्ति जाग्रत की जा सकती है। चोरी करने के भयंकर परिणाम से बचने के लिये उससे भय करने का भाव जाग्रत किया जा सकता है।

इसके समान ही घृणा की प्रवृत्ति है। जिन वस्तुओं में स्वाद खराब होता है, दुर्गन्धि, होती है, उनसे हटने का प्रयत्न मनुष्य करता है। बाल्यकाल में जिस प्रकार के भोजन से घृणा हो जाती है, उससे फिर प्रेम करना कठिन हो जाता है। सभी जानते हैं कि चने की दाल स्वादिष्ठ और हल्की होती है, किन्तु बहुत दिनों तक हमारे मन में इसके प्रति घृणा हो गई थी। एक बार किसी प्रीति-भोज में मैं अपने दायाद (सम्बन्धी, कुटुम्ब) के यहाँ अपने पितृव्य के साथ भोजन करने गया। दाल में मक्खी थीं, लेकिन अनजान से मैंने खा ली। मुझे 'कै' हुई और मेरा मन बिगड़ गया। तब से बहुत दिनों तक इससे चित्त हटा हुआ था। पीछे जब इससे फायदे हुए तब रुचि बढ़ी। लड़कपन में स्कूल से घृणा होने का कारण शिक्षकों की मार-पीट है।

घृणा

मोटे आदमी से ठगा जाकर मनुष्य मोटे से घृणा करने लगता है। विद्यालय या शिक्षक से घृणा का भाव दूर करना चाहिये। इतिहास पढ़ाने के समय छोटे बालकों से ऐसी बातें नहीं करनी चाहिये, जिनसे चरित-नायकों से उनका मन हट जाय। चोरी और झूठ के परिणामों से इनके प्रति घृणा उत्पन्न की जा सकती है, किन्तु इसमें बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

को सभी शिक्षक बराबर तैयार रहें। शिक्षकों में पारस्परिक द्वेष फैलकर स्कूल के कार्य्य में बाधा न पड़े।

शिक्षकों के प्रति विद्यार्थियों का भाव शिष्ट रहे और हेड-मास्टर तथा अन्य शिक्षकों के प्रति शिष्य का भाव उत्तम रहे, शिक्षकों की आज्ञा का पालन विद्यालय के भृत्य सहर्ष करें और लड़कों तथा भृत्यों में किसी प्रकार का द्वेषभाव न रहे, तो समझना चाहिये कि स्कूल रूपी यन्त्र का काम ठीक तरह से चल रहा है। इसी यन्त्र को ठीक तरह से संचालित करने के लिये शासन की आवश्यकता होती है। जिन लड़कों के लिये विद्यालय बना है, उन्हें कभी व्यर्थ का अवकाश नहीं देना चाहिये। बराबर वे काम में लीन रहें। कभी उन्हें क्लान्ति नहीं मालूम पड़े। पुस्तकों से प्रेम, खेल में अनुराग और शिक्षा में आसक्ति बनी रहे।

इन विषयों में बाधा पड़ने पर शासन की बागडोर कस देनी चाहिये। बालकों के उचित मार्ग से तनिक भी विचलित होने से शासन की मर्यादा ढीली पड़ जाती है। आग के छोटे-छोटे स्फुलिंग की तरह वह बीमारी सारे विद्यालय में बिजली की भाँति फैल जाती है और वह सम्पूर्णरूप से स्कूल को नष्ट करनेपर उद्यत हो जाती है।

हठ, उच्छृंखलता, व्यभिचार, औद्धत्य, असावधानता, आदि प्लेग की भाँति सारे विद्यालय में फैल जाते हैं। इन बातों से हेडमास्टर को सदा सतर्क रहना चाहिये और तनिक भी कार्य्य-च्युति होने पर उसका संशोधन होना चाहिये। जो प्रधानाध्यापक दुराचारी, आलसी, मिथ्यावादी, अत्यन्त दुष्ट एवं हठी बालक को दण्ड देकर शासन नहीं करता है, वह स्वयं अपने को धोखा

तीसरी प्रवृत्ति जो बालकों में अत्यधिक मात्रा में पाई जाती है, वह है झगड़ालूपन या हठ। बच्चों का यह स्वभाव है कि जब उनकी इच्छा के अनुकूल वस्तु नहीं मिलती है, तब वे बिगड़ उठते हैं, लड़ाई करने लग जाते हैं और अपनी अभिलषित वस्तु पाने के लिये अड़ जाते हैं। इसको बुरा नहीं मानना चाहिये। कहा जाता है कि स्वर्गीय गोखले लड़कपन में बड़े हठी थे, और हठ आने पर उससे टस-से-मस होना नहीं चाहते थे। कोई कठिन काम कराने के लिये शिक्षक को इसके लिये उत्तेजित करना चाहिये। इस प्रवृत्ति के जाग्रत कर देने से लड़के साहस के साथ कठिन कामों का सम्पादन कर देने के लिये सहसा उठ खड़े हो जाते हैं। शिक्षक इस प्रवृत्ति को कई प्रकार से काम में ला सकता है।

हठ

क्रोध भी एक हानिकारक अन्तःक्षोभ है, किन्तु इसका भी ठीक प्रकार से प्रयोग करने पर लाभ हो सकता है। क्रोध के साथ कोई कार्य करने की चेष्टा करने के पहले शिक्षक को उचित है कि इसे शान्त होने दे। कहा गया है कि औषध की अपेक्षा निषेध श्रेयस्कर है। अतः शिक्षक को सब क्रोध-जनक कारणों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। दृढ़, निष्पक्षपात, शान्त और विचारपूर्ण भाषा से कोप का कारण अत्यन्त अल्प हो जाता है, पर अत्याचार के प्रति थोड़ा क्रोध उत्तेजित करना अनुचित नहीं है।

क्रोध

इन अन्तःक्षोभों के अतिरिक्त ऐसी कुछ सहजात वृत्तियाँ हैं, जो बालकों में प्रबल रूप से विद्यमान रहती हैं और

निःशंक, निर्लज्ज और ढीठ हो जाते हैं। इससे दण्ड का जो उद्देश्य है, वह सिद्ध नहीं होता। दण्ड देने के पहले लड़के को अपराध का स्पष्ट ज्ञान करा देना चाहिये। जब तक लड़के को अपराध का ज्ञान न कराया जाय, तब तक दण्ड देना अनुचित है। बिना अपराध के दण्ड देना अन्याय ही नहीं, वरन् एक प्रकार का प्रतिकार है।

दण्ड देने के पहले दोष की गम्भीरता पर विचार कर लेना चाहिये। लड़के ने वास्तव में दोष किया है या नहीं; अथवा दोष किस कोटि का है। इस दोष के लिये दण्ड देने से लड़के का कुछ लाभ होगा या नहीं, या इसके दण्ड से अन्य छात्रों की भलाई होगी या नहीं, इन बातों पर विचार कर दण्ड प्रदान के लिये शिक्षक या प्रधान शिक्षक को तैयार होना चाहिये।

दण्ड देनेके पहले दोष करने में लड़के की प्रवृत्ति की जाँच होनी चाहिये। यह देख लेना चाहिये कि लड़के ने जान बूझकर दोष किया है या अनजान से यह दोष हो गया है। यदि अपराध अनजान से हो गया है; तो दण्ड देने की आवश्यकता नहीं है। समझाने-बुझाने से भी लाभ हो सकता है। दण्ड-प्रदान के समय लड़कों की पात्रता का पूरा विचार करना चाहिये। उसके पूर्व व्यवहार का भी विचार करना उपयुक्त होगा। उदाहरण के लिये एक सच्ची घटना उपस्थित की जाती है।

एक छात्रावास में तीन लड़कों ने मिलकर मेस के रुपये खा लिये थे। जाँच से तीनों दोषी ठहराये गये। प्रधान शिक्षक ने एक को बुलाकर एकान्त में कहा—"मैं तुम्हारे इस व्यवहार से बहुत ही अप्रसन्न हूँ।" दूसरे को दो रुपये जुर्माने किये और

जिनका उपयोग बराबर किया जा सकता है। एक वृत्ति उनमें से जिज्ञासा की है, जो बाल्यकाल में प्रत्येक बालक में प्रबल रहती है। किसी वस्तु को देखकर बालक उसके बारे में पूछते हैं कि यह क्या है और इसका क्या प्रयोजन है। उस नई वस्तु को देखकर कौतूहल भी होता है। आश्चर्य के साथ प्रशंसा भी करने लगते हैं। बालक क्या, किशोरों में, जवानों में, वृद्धों में, सभी में यह कुतूहल और आश्चर्य की जिज्ञासा पाई जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रवृत्ति बाल्यकाल में बहुत तीव्र रहती है। नई बातों के सिखाने में इस प्रवृत्ति का प्रयोग करना चाहिये।

जिज्ञासा

नई वस्तु को दिखलाकर शिक्षक बालकों का ध्यान पाठ की ओर आकर्षित कर सकता है। जिज्ञासा के सहारे बड़े-बड़े आविष्कार और अनुसन्धान होते हैं। अमूर्त और सूक्ष्म बातों में लड़कों का उतना मन नहीं लगता, जितना जीवित, जाग्रत, रंगदार और मूर्त्त पदार्थों में। ये पदार्थ इन्द्रियों को अधिक आकर्षित करते हैं। बालक उन्हें देखते हैं, छूते हैं, उलटते हैं और भली भाँति उनका निरीक्षण करते हैं। इस प्रकार वे कितनी ही बातों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जिज्ञासा से अनेक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। जिज्ञासा से ही पढ़ाई का आरम्भ होना चाहिये। जिसमें यह वृत्ति निर्बल पड़ गई है, उसको यह समझना चाहिये कि उसकी मानसिक उत्तेजनाओं का ह्रास हो रहा है।

चौथी वृत्ति क्रियाशीलता या विधायकता की है। बालक कभी शांत नहीं रह सकता। कभी खिलौना उठाता है, तो कभी कागज

स्कूल से निकाल देने के पहले स्कूल के मन्त्री को भी सूचना दे देनी चाहिये। शिक्षा-विभाग के कानून की किताबों की आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। प्रधान शिक्षक को बालक के संरक्षक के यहाँ निम्न प्रकार का पत्र लिखना चाहिये—

पाटलिपुत्र हाई स्कूल
पटना

तिथि..............

श्रीमान् लक्ष्मीशंकर त्रिपाठी,
सुरियापुर, पटना।

महाशय!

मुझे आपके यहाँ यह लिखते कष्ट होता है कि आपका लड़का, जो आठवीं श्रेणी में पढ़ता है, मारपीट करने का दोषी ठहराया गया है और उसे दस बेंत मारने की सजा दी गई है। शीघ्र ही हस्ताक्षर कर इस कार्ड को लौटा दीजिये।

लालबिहारीप्रसाद
शिक्षक

महेन्द्रप्रसाद शर्मा
प्रधान शिक्षक

यदि वह दूसरे दोष का भागी हो या उसका सुधार नहीं हो सकता हो तो प्रधान शिक्षक इस प्रकार लिखकर भेजे—

"आपका लड़का अनेक प्रकार का उपद्रव मचाता है। अच्छा होगा यदि आप इसे स्कूल से हटा लेवें।"

यदि प्रधान शिक्षक हर शनिवार को विद्यालय के उपस्थि

फाड़ता है। कभी दूकान सज रहा है, तो कभी
विधायकता मकान की नींव दे रहा है। चीजों को उठाता है और
फेंकता है। इन क्रियाओं का पारस्परिक तारतम्य
लड़कों को मालूम नहीं होता। धीरे-धीरे इन बातों का सिल-
सिला जमने लगता है। इसी प्रवृत्ति को जाग्रत करने के लिये बच्चों
को बराबर काम में लगाये रहना चाहिये। बालक की शक्तियों के
विकास के लिये उचित मार्ग नहीं बतलाया जायगा तो वे अनुचित
मार्ग पर जाकर अतुष्टिकर परिणाम उत्पन्न करेंगी और
लाभदायक होने के बदले लड़कों के लिये हानिकारक हो जायँगी।

मानसिक विकास के लिये निश्चित पाठ्यावली में बालकों
के लिये सभी उपर्युक्त विषय रखे गये हैं। उन्हें व्यायाम,
वस्तुपाठ, चित्राङ्कन, पढ़ना आदि कार्यों में निरन्तर लगाये रहना
चाहिये। कार्यों में परिवर्त्तन करते रहने से उनका मन भी नहीं
उचटता और मनोयोग, परिश्रम तथा कालानुवर्त्तन का शिक्षण
भी होता जाता है। छोटे-छोटे बच्चों को गणना (Counting),
पढ़ना (Reading) और लिखना (Writing) सिखाने
के लिये किंडर गार्टन स्कूलों में उपहार (Gifts) के प्रयोग
किये जाते हैं। आधुनिक पाठशालाओं में कमाची, गोली और
कार्डों का प्रयोग किया जाता है। शिक्षा में इसका बहुत महत्त्व
है और इस बात का अनुभव प्रत्येक शिक्षक को करते
रहना चाहिये।

लड़कों की एक प्राकृतिक प्रवृत्ति-ममता (Ownership) भी
है। यह पीछे आती है, किन्तु ज्ञान होते ही इसका
ममता प्रयोग बालक करने लगता है। बड़े होने पर रुपया

व्याख्यान का प्रभाव चिरस्थायी होता है और उसकी आत्मा का एक अंग बन जाता है।

पढ़ाई में उन्नति दिखलाने के लिये भी पारितोषिक देने की व्यवस्था करनी चाहिये। यह पुरस्कार का मुख्य विषय होना चाहिये। मेधावी—किन्तु—आलसी बालक को पुरस्कार देना उतना अच्छा नहीं है जितना परिश्रमी और उद्योगी विद्यार्थी को। कार्य्य करने तथा उत्तेजना प्रदान के लिये ही इसकी आयोजना की जाती है। यदि पुरस्कार से कुछ लाभ नहीं होता हो तो पुरस्कार क्यों दिया जायगा? पुरस्कार के उपहार में यदि कोई वस्तु न देकर कोई उपयोगी पुस्तक या प्रशंसा-पत्र दिया जाय तो अच्छा है!

खेल में कुशलता दिखलाने के लिये भी पुरस्कार देना चाहिये। इसके लिये यदि पदक या बैज दिये जायँ, तो अच्छा होगा। पदक में विद्यालय का और पानेवाले का नाम लिखा रहे, तो सबसे अच्छा है। खेलों में विजय प्राप्त करने से या आगे बढ़ जाने से जो पदक प्राप्त होते हैं उससे विद्यालय का नाम होता है और विजयी बालक भी गौरवान्वित होता है।

बुरे कामों से हटाने के लिये दण्ड दिया जाता है और अच्छे कामों में सन्नद्ध होने के लिये पुरस्कार द्वारा बालक उत्तेजित किया जाता है। पारितोषिक उत्तेजक और उत्साह-वर्द्धक है तथा दण्ड संशोधक। पारितोषिक में पदक, वृत्ति और श्रेणीनायक का काम दिया जा सकता है। पारितोषिक से सम्मान और आनन्द प्राप्त होता है। बालकों के लिये यह एक

रखने या अपनी चीजों को प्यार करने की प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है। इस प्रवृत्ति का दुरुपयोग भी हो सकता है। बालक ख़राब-ख़राब वस्तुओं के संग्रह करने में या उपयोगी वस्तुओं के संग्रह करने में समय व्यतीत कर सकता है। इस प्रवृत्ति का शिक्षक, इतिहास, भूगोल, साहित्यपाठ आदि में प्रयोग कर सकता है। देशों के टिकट, पोस्टकार्ड, चित्र आदि का प्रयोग इतिहास, भूगोल तथा साहित्य में किया जा सकता है।

इस प्रवृत्ति से अधिक ममता बढ़ जाती है और स्वार्थ-परता की मात्रा भी बढ़ जाती है; अतः शिक्षक को उचित है कि वह इनसे बालक की रक्षा करे। ललित प्रवृत्तियों के अन्तर्गत सहानुभूति, प्रेम और आत्मनिवेदन के भाव भी बालकों में पाये जाते हैं। शिक्षक का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि बालकों में इन गुणों को विकसित करे। दूसरों के कष्ट को देखकर द्रवीभूत होना, सहायता करने के लिये उद्यत होना और इसमें प्रवृत्त करना जहाँ तक हो सके, सिखाना चाहिये। पाठशाला या किसी विशेष श्रेणी के सुन्दर व्यवहार-निर्माण करने में सहानुभूति को सहायता ली जा सकती है। सहानुभूति से शिक्षक लड़कों के हृदय में परार्थ का भाव सुगमता से जाग्रत कर सकता है।

प्रेम और परार्थ का भाव

बालचरों में यह भाव स्वाभाविक होता है और यह जाग्रत किया जा सकता है। प्रेम और परार्थ का भाव भी इसी प्रकार विकसित किया जाता है। विद्यालय की उन्नति के लिये, इसकी मर्यादा कायम रखने के लिये, प्रायः बालक अपना जीवन समर्पण करने को तैयार हो जाते हैं। प्रतियोगितावाले खेलों में यह भाव

वहाँ श्रेणी-शिक्षक के उपस्थिति बना लेने के बाद घंटी बजेगी जिससे पढ़ाई आरम्भ होगी। इस प्रकार के सम्मेलन से शासन और शिक्षा दोनों की उन्नति होती है। विद्यालय का कार्य्य ठीक समय से आरम्भ होता है। सम्मेलन में प्रधान शिक्षक धार्म्मिक, नैतिक और शिक्षा-सम्बन्धी बातों पर बोले। वहाँ किसी व्यक्तिगत दोष का उद्घाटन करना लाभदायक नहीं है। समान्य दोषों का वर्णन और उनके सुधार पर भी बोलना अच्छा है। संयुक्त प्रान्त के बड़े-बड़े स्कूलों में भी इसका प्रयोग देखा जाता है। इसका प्रयोग करके प्रधान शिक्षक देख सकता है कि यह कितना उपयोगी है।

वाद-विवादिनी सभा

प्रत्येक उच्च या मध्य विद्यालय में एक वाद-विवादिनी सभा रहनी चाहिये। इससे छात्रों की वाचाशक्ति बढ़ती है। उन्हें सभाओं में बोलने का मौका मिलता है। वाद-विवाद करने के साधारण नियम मालूम होते हैं। जब एक आदमी बोल रहा है, तो दूसरे को नहीं बोलना चाहिये।

सभापति की आज्ञा से किसी सदस्य को बोलना उपयुक्त है। सभापति यदि छात्रों में से ही कोई निर्वाचित हो तो अच्छा है। सभा का स्थायी सभापति तो प्रधान शिक्षक है, किन्तु अन्य उत्साही शिक्षक भी उपसभापति या सहायक सभापति बनाये जा सकते हैं। लड़कों में से एक मंत्री, एक उपमंत्री तथा कोषाध्यक्ष रहना चाहिये। शिक्षक या प्रधान शिक्षक साधारण सदस्य की तरह जाकर इसमें भाग ले सकते हैं। सभा यदि प्रत्येक सप्ताह में

प्रचंड रूप से प्रकट होता है। इसका यथाविधि संचालन अनेक प्रकार के लाभ प्रदान कर सकता है। पारस्परिक प्रेम तथा विद्यालय की वस्तुओं से प्रेम करने का भाव शिक्षक को अवश्य जाग्रत करना चाहिये। ललित कला के सौन्दर्य को हृदयंगम करने तथा देश-प्रेमी, समाज-प्रेमी बनाने में सहानुभूति, प्रेम, आत्मनिवेदन आदि के भाव बहुत उपयोगी होते हैं।

अनुकरण, स्पर्द्धा, ईर्ष्या और खेद

सबसे प्रबल प्रवृत्ति जो बालकों में पाई जाती है, वह अनुकरण है। मनुष्य के सारे जीवन की दीवार इसी की नींव पर बनती-बिगड़ती है। जो कुछ बालक प्रारम्भिक अवस्था में करता है, कपड़ा पहनता है, खाता है, चलता है, बोलता है, वह सब किसी-न-किसी मनुष्य का अनुकरण ही है।

अनुकरण

अनुकरण भी दो प्रकार से किये जाते हैं, एक जान-बूझकर और एक अनजान से। बालक पढ़ने के समय अशुद्ध उच्चारण करता है। शिक्षक इस अशुद्धि को शुद्ध करना चाहता है। शिक्षक आदर्श रूप से इसका उच्चारण करता है और बालक उसकी नकल करता है। यह जान-बूझकर किया हुआ प्रयत्न है। इसका प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त जो व्यवहार बालक शिक्षक को देखकर अनजाने करता है, वह जान-बूझकर नहीं किया जाता। शारीरिक व्यायाम में कभी-कभी चेष्टा की जाती है और कभी-कभी अचेष्ट कार्य भी होता है। शिक्षक के रहन-सहन, व्यवहार, बोली और विद्यालय का प्रभाव लड़कों के ऊपर चुपचाप पड़ता है।

स्कूल-परिदर्शन करने के समय जब पूछा जाता है कि इस बस्ती में पाठशाला कहाँ है, तब गाँव के लोग अंगुली का आदेश करके गाँव के भीतर गन्दगियों से घिरे हुए किसी मकान का संकेत करते हैं। छात्रों को बुरे मकान में बैठाना या किसी ओसारे (बरामदे) पर अध्यापन करते रहना स्कूल के मकान के न होने से भी खराब है। ऐसा करना लड़कों के जीवन को रोगी बनाना है।

पाठशाला की जगह गाँव के बाहर, आबादी से दूर और बस्ती की गन्दगी से काफी दूर होनी चाहिये। यह आम सड़क की धूल से बचने के लिये, आम लोगों के रास्ते से भी काफी दूर होनी चाहिये। यह जमीन इतनी ऊँची होनी चाहिये कि मौसमी बाढ़ आने पर भी सूखी रहे। इसके लिये कम-से-कम १२ कट्ठे जमीन की जरूरत होती है। इससे कम होने से लड़कों की मानसिक, शारीरिक एवं नैतिक शक्ति के विकास का पूरा अवसर नहीं मिल सकता है। यह स्थान—स्कूल का मकान डाकखाने की सामग्रियों के लिये बहुत दूर भी नहीं रहना चाहिये। ऐसा स्थान होना चाहिये कि लड़कों और गुरुओं को जहाँ आने में सुभीता हो।

ऐसा इंतजाम भी रहना चाहिये कि लड़कों को शुद्ध पानी आसानी से मिल सके, गन्दे पानी के समीप, मरघट या कब्रिस्तान के पास स्कूल बनाना बहुत बुरा है। स्कूल के मकान के चारों ओर कम-से-कम ७ या ८ कट्ठे जमीन खुली रहनी चाहिये, जिसमें खेल का मैदान और एक छोटा उद्यान भी हो सके। पाठशाला के मैदान में यदि पेड़ कम हों तो शिक्षक और छात्र

इसकी संज्ञा रखकर वे सब काम नहीं करते। यदि प्रत्यक्ष रूप से ऐसा करने की चेष्टा करते हैं, तो यह चेतित अनुकरण हुआ; यदि ऐसा नहीं, तो यह अचेतित अनुकरण कहलायगा।

अनुकरण और अभ्यास निर्माण

शिक्षा में अनुकरण का महत्त्व बहुत अधिक है। अभ्यासों का निर्माण तो अधिकांश में अनुकरण से होता है। बालक प्रायः अपने शिक्षक और सहपाठियों का अनुकरण किया करते हैं। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सभी गुणों का संकलन इसी अनुकरण से होता है। यदि शिक्षक गंदा रहता है, देर कर विद्यालय में आता है, अशुद्ध और गंदा लिखता है, गाली बकता है और निर्दयता से व्यवहार करता है, तो उसके छात्र भी वैसे ही व्यवहार करते हैं। यह अचेष्ट एवं अचेतित अनुकरण का मूक प्रभाव है।

अच्छी दृष्टि, अच्छी श्रवणशक्ति, शरीर का नैरोग्य, स्वास्थ्य और सौन्दर्य, दाँतों की स्वच्छता, ईमानदारी, सचाई, कृपालुता, नम्रता, सुशीलता, निष्पक्षता आदि शिक्षकों के गुणों का प्रभाव बालक पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि अपने छात्रों के सामने अच्छे अभ्यास और उत्तम आचार-विचार को उपस्थित करे और अपने को एक आदर्श अध्यापक बनाने का यत्न करे। अनुकरण से दो भाव प्रायः जाग्रत होते हैं। उन्हें मनोविज्ञान में स्पर्द्धा और ईर्ष्या कहते हैं। यदि किसी बालक या पूज्य सज्जन को देखकर उनके समान बनने की चेष्टा की जाती है, अपने को बढ़ाने का यत्न किया जाता है, तो इस भाव को स्पर्द्धा कहते हैं। दूसरे उन्नत साथी

जुगान्तियों को छाँटने की जरूरत होती है। छाँटने का काम बड़े लड़के कर सकते हैं या किसी बालक का अभिभावक, जो छाँटना जानता है, उससे इसके लिये प्रार्थना की जा सकती है। पेड़ नहीं होने से पेड़ लगाने की बात पहले ही कही गई है। यदि पेड़ लगाने का वर्णन रक्खा जाय, तो अच्छा होगा। पेड़ लगाने के समय लड़कों को एक-एक बही रखनी चाहिये, जिसमें पेड़ कब लगा, बड़ा हुआ और कैसे बढ़ा इत्यादि का वर्णन रहना चाहिये। ऐसा इतिहास स्कूल के लिये आगे चलकर बड़ा रोचक होगा।

ऊपर हमने बतलाया है कि पढ़ने के लिये मकान की अत्यन्त आवश्यकता है; इसलिये मकान बहुत सावधानी से बनवाना चाहिये। विद्यालय में श्रेणियाँ अलग-अलग होनी चाहिये। प्रारम्भिक पाठशाला और मध्यविद्यालय की श्रेणियाँ यदि अलग-अलग विभागों में सजाई जायँ, तो बहुत अच्छा हो। अलग-अलग रहने से पढ़ाई में बाधा नहीं होती।

बच्चों की पढ़ाई के लिये कभी-कभी कक्षा भर के बालकों को बोलवाना पड़ता है; अतः चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं श्रेणियाँ एक सिलसिले में रहें, तो पढ़ाई का काम विशेष शान्ति से संपन्न हो।

श्रेणी का कमरा इतना बड़ा होना चाहिये कि हरएक विद्यार्थी को १० वर्गफीट के हिसाब से स्थान मिले और १२० घनफीट हवा की जगह हो! इस प्रकार हमलोग अंदाज लगा सकते हैं कि कक्षा का घर कितना बड़ा होना चाहिये। कमरे की जमीन सूखी नहीं होनी चाहिये। जमीन नहीं सूखी होने

को देखकर उसे अपने समान नीचे गिराने की चेष्टा ईर्ष्या कहलाती है। अनुकरण के ये दोनों परिणाम हैं। यदि स्पर्द्धा का भाव ठीक से जाग्रत किया जाय तो बालक के लिये अच्छा है और ईर्ष्या का भाव बुरा है।

स्पर्द्धा और ईर्ष्या

शिक्षक इस स्पर्द्धा को ठीक मार्ग से ले चले तो छात्र का बहुत उपकार हो सकता है। अनुकरण की प्रवृत्ति का गुरुतर प्रभाव समझकर शिक्षक को अपने स्वभाव, चरित्र और अभ्यासों को आदर्श बनाना चाहिये। प्रत्येक बात का अनुकरण लड़के करते हैं। यदि शिक्षक असावधानी से कुछ गंदा लिखता है, तो उसका भी प्रभाव बालकों की लिखावट पर पड़ता है। बात-बात में बालक शिक्षक के काम की नकल करते हैं। तब इसका जीवन में कितना महत्त्व है, यह कुछ कहने का नहीं, विचारने का काम है।

खेल

बालकों में खेल की प्रवृत्ति भी प्रचंड रूप से पाई जाती है। आधुनिक शिक्षा-तत्त्वज्ञों ने बालकों की शिक्षा में इसको बहुत बड़ा महत्त्व प्रदान किया है। शिक्षक को इस प्रवृत्ति द्वारा पढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। अनुकरण, विधायकता, कुतूहल आदि सहजात वृत्तियों का विकास इसके सहचार में पड़कर पूर्ण रूप से पाया जाता है। मनोविज्ञानियों में खेल के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्त प्रचलित पाये जाते हैं। शिलर (Shiller) का कहना है कि कार्य करने के उपरान्त जो शक्ति बच जाती है, उसी का उपयोग खेल में किया जाता है। स्टेनली हॉल (Stanely Hall) के मतानुसार खेल

बतलानेवाला वहाँ कोई दूसरा नहीं रहता है। इसी हिसाब से गाँव में स्कूल का मकान अच्छा हो सकता है।

यदि किसी गाँव की जन-संख्या १००० हो, तो १५० के लगभग लड़के और लड़कियाँ होंगे। इस हालत में छात्रों और छात्राओं की संख्या २६+२१+१६+१८=८१ होगी। मकान अब किस प्रकार का होना चाहिये कि इतने छात्र पढ़ सकें? इस दशा में स्कूल की लम्बाई और चौड़ाई का हिसाब इस प्रकार होना चाहिये—

$$\frac{(२६+२१)\times १०}{१४}=\frac{४७०}{१४}=३४ \text{ फीट}$$

$$\frac{(२६+१६)\times १०}{१४}=\frac{४२०}{१४}=३० \text{ फीट}$$

$$\frac{(२१+१८)\times १०}{१४}=\frac{३९०}{१४}=२८ \text{ फीट}$$

इसलिये जहाँ दो कमरों की जरूरत है वहाँ कमरे १४ और १५ फीट चौड़े तथा ३० और २६ फीट लम्बे होंगे। यदि श्रेणियों के कमरे आयताकार हों तो, शिक्षक को पढ़ाने में सुविधा होगी। ओसारे की ओर अधिक दरवाजे और चौड़ी दीवारों में तीन-चार खिड़कियाँ होनी चाहिये।

छत के भीतर की ऊँचाई १२ फीट से कम नहीं होनी चाहिये। कमरे की सतह से कम-से-कम दो फीट की ऊँचाई पर खिड़कियाँ होनी चाहिये और उनकी लम्बाई-चौड़ाई ३×२½ हों तो अच्छा है। जिस ओर कूड़ा-पट्ट हो उस ओर खिड़कियाँ नहीं रहनी चाहिये।

मनुष्य की उन स्वाभाविक प्रवृत्तियों में से एक है जिससे बालक अपने पूर्वजों के स्वभाव की आवृत्ति करता है।

खेलने के समय शोर करना, उछलना, कूदना, बिगड़ना, जीत जाने का यत्न करना, दौड़ना आदि उसी के लक्षण हैं। मेल ब्रॉश (Male Branche) का कथन है कि खेल ही में लड़का अपने भावी जीवन के युद्ध की तैयारी करता है। खेल में ही जीवन-होड़ में सफलता प्राप्त करने की शिक्षा मिलती है। कौन-सा सिद्धान्त ठीक है और मान्य है, यह कहना कठिन है; किन्तु शिक्षक के लिये ये तीनों सिद्धान्त ठीक हैं और तीनों का संकलन बालक है। लड़कों की लड़ाई, झूठे खेल, सिपाहियों का तमाशा आदि इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति के प्रत्यक्ष बीज हैं।

खेल का महत्त्व

शिक्षक खेलने और कार्य करने में भेद लगा देते हैं। लड़के जब पढ़ते नहीं हैं तब शिक्षक कहते हैं कि क्या तुमलोग खेल रहे हो। इससे मालूम होता है कि खेल में और पढ़ने में बहुत अन्तर है, किन्तु यह भेद विचारवालों का नहीं है। शिक्षा में भी खेल की वृत्ति उत्पन्न करनी चाहिये। काम में किसी उद्देश्य या परिणाम की ओर लक्ष्य रहता है। खेल में खेल ही लक्ष्य है। खेल खेलते समय आनन्द प्राप्त होता है। खेल में खेल की क्रिया में ही आनन्द प्राप्त होता है। कार्य में सफल होने पर काम करने का आनन्द मिलता है। इस प्रकार का आनन्द साहित्यसेवियों, गणितज्ञों, दार्शनिकों, और वैज्ञानिकों को अपने स्वाध्याय, अध्ययन, अनुसंधान तथा गवेषणापूर्ण अन्वेषण के व्यापार ही में प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति बालकों में जाग्रत करनी

स्कूल के सामानों में कुर्सी, टेबुल और डेस्क आवश्यक हैं। डेस्क तीन प्रकार के होने चाहिये। गाँव की प्राइमरी पाठशालाओं में डेस्क का प्रबन्ध करना कठिन होता है। वहाँ लड़के चटाइयों पर बैठाये जाते हैं। चटाई पर बैठने से अनेक हानियाँ हो सकती हैं। मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) वक्र हो जाता है, पीठ झुक जाती है, मेदे में निर्बलता आ जाती है और सीना सिकुड़ जाता है।

इसके बदले में तिपाई या पीढ़े का प्रयोग अच्छा समझा जाता है। बेंच के लिये सिंगल डेस्क का प्रबन्ध भी अच्छा है। इसका नमूना दिया हुआ है।

इसकी नाप लड़कों के शरीर के अन्दाज की होती है। इससे यह लाभ है कि लिखते समय हाथ और पीठ को सहारा मिलता है। बैठक की ऊँचाई इस प्रकार होनी चाहिये कि लड़कों के पैर लटकें नहीं, वरन् पृथ्वी पर पूर्ण रूप से जमे रहें। बेंच पर लड़कों को बैठाना ठीक नहीं है। बच्चों के लिये इसी नमूने का अवलम्ब करना चाहिये। दस से चौदह वर्ष वाले लड़कों के लिये डुएल डेस्क अच्छा है। उसमें पीठ लगी होनी चाहिये। किन्तु वहाँ भी सिंगल डेस्क का प्रबन्ध किया जाय, तो अच्छा है। चौदह वर्ष से ऊपर के लिये भी सिंगल डेस्क की जरूरत है। यह ऐसा होना चाहिये कि खड़े होने के समय पीछे के तख्ते उठा दिये जायँ। डेस्क के तख्ते उठाकर उसपर हाथ रक्खे जा सकते हों और डेस्क के बीच के तख्ते पर कागज-किताब आदि रक्खे जा सकें। पीछे की ओर पीठ लगी हो और उसपर एक लड़का बैठ सके। डुएल डेस्क में जो पीठ लगी रहती है वह

चाहिये। आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये कि लड़के खेला-कुदाकर पढ़ाये जायँ।

खेल में मनुष्य स्वतः-प्रवृत्त होता है, अनुराग होता है और रुचि बढ़ती है। पढ़ाई में इन तीनों का अलग-अलग महत्त्व है; अतः इसके अनुसार शिक्षा देना उत्तम है।

खेल में बालक का विकास होता है, स्फूर्त्ति आती है, सोचने की शक्ति बढ़ती है, तर्क करने की शक्ति विकसित होती है और मानसिक क्रिया द्रुतगामिनी होती है; अतः इस प्रवृत्ति के ऊपर जोर देना प्रत्येक नवीन शिक्षक का कर्त्तव्य है। खेल की व्यवस्था बालकों की आयु और शक्ति के अनुसार होनी चाहिये। छोटे बच्चे के लिये हाथ-पैर चलानेवाले खेल—जैसे दौड़ना, भागना, पीछा करना, बनावटी घोड़ा बनाकर या बनकर दौड़ाना या दौड़ना—उपयुक्त हैं। सात-आठ वर्ष के ऊपर वाले बालकों के लिये रचनात्मक खेल उपयोगी है—जैसे फुटबॉल, हाकी इत्यादि। इसमें साथ-साथ मिलकर काम करने की दक्षता बढ़ती है। आगे चलकर मानसिक साधनवाले खेल रुचिकर होते हैं; जैसे—कैरम बोर्ड, शतरञ्ज इत्यादि।

बालकों में कुछ करते रहने की प्रबल इच्छा रहती है। वह इच्छा एक प्रकार से खेल का अन्य रूप है। इस इच्छा के अनुकूल शिक्षा प्रदान करनी चाहिये; किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि बालकों का बराबर मनोरञ्जन हो और मनोरञ्जन के लिये वे खेलने में लगाये जायँ। खेल में लगाना ठीक है, किन्तु खेल में लगाना ही शिक्षा का प्रयोजन मान लेना ठीक

प्राइमरी स्कूलों में असबाब के लिये एक अलग कमरा बनाने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन जलपान की कोठरी आवश्यक है। यदि कोठरी न बन सके तो एक छोटा-सा हिस्सा बरामदे का इसके लिये रख छोड़ना चाहिये। इसका फर्श पक्का रहना चाहिये। पानी बहने का ऐसा ढंग होना चाहिये कि पानी बहकर स्कूल के बागान में सीधे चला जाय।

यदि जलपान के कमरे में छोटे-छोटे तख्ते बनाये जायँ, तो लड़कों को अपनी अपनी रोटी, भूँजा, चपाती आदि रखने में खूब सुभीता हो। हिन्दू-मुसलमानों का अलग-अलग पानी रखना भी कहीं पर प्राइमरी स्कूलों में जरूरी होता है। लेकिन सब जगह यह भेद आवश्यक नहीं है। प्राइमरी स्कूल का एक चित्र (नमूना) नीचे दिया जाता है, जिसमें पानी की भी कोठरी है—
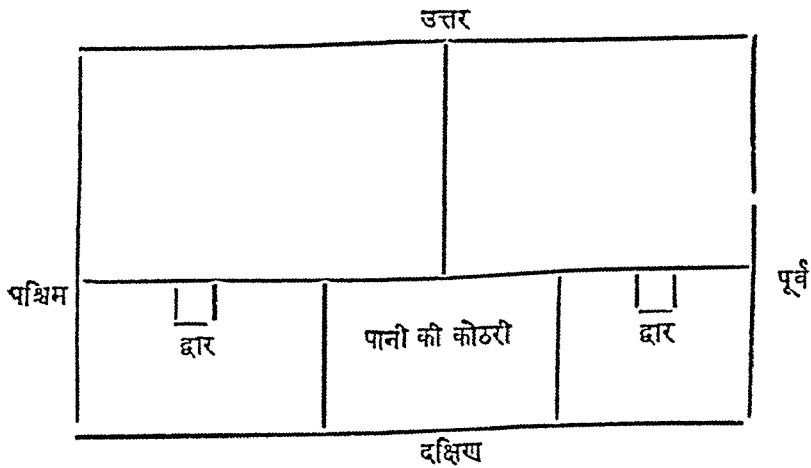
शिक्षामर्मज्ञ, शिक्षक एवं विद्यालय-सम्बन्धी उच्च कर्म्मचारियों के छायाचित्र (Photo) बहुत ही उत्साहवर्द्धक हैं। इनसे इतिहास पढ़ाने में सहायता मिलेगी और लड़के अपने प्रान्त का महत्व तथा आश्चर्य्यजनक दृश्य भली भाँति जान सकेंगे। इनके द्वारा लड़कों की ज्ञान-दृष्टि विस्तृत होती है।

पुस्तकालय भी विद्यालय का एक आवश्यक अंग है। इसकी उपयोगिता के विषय में पहले ही लिखा गया है। विद्यालय में एक छात्र-वाचनालय भी अवश्य रहना चाहिये। इसमें प्रत्येक प्रचलित और आवश्यक भाषा को मासिक पत्रिका और समाचार-पत्र आदि का मँगाना बहुत उपयोगी है।

इससे शिक्षक पढ़कर अनेक सामयिक विषयों और घटनाओं को जानकर लड़कों के लिये उत्तम शिक्षा दे सकते हैं। लड़के स्वयं पढ़कर अपनी दृष्टि विस्तृत कर सकते हैं।

स्कूल के कार्य सुचारु रूप से संचालन के लिये घड़ी की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके बिना कोई काम ठीक रीति से नहीं चल सकता है। समय-ज्ञान के लिये प्रत्येक विद्यालय में एक घड़ी अवश्य रहनी चाहिये। घड़ी के साथ-ही-साथ घंटे की भी आवश्यकता है। कार्य्यक्रम का विभाग घंटों ही में निर्धारित रहता है। ऐसी दशा में समय-ज्ञान कराने के लिये लड़कों और शिक्षकों दोनों के लिये घंटे की अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिये एक घंटा अवश्य रहना चाहिये।

यदि और घंटे का मूल्य अधिक जान पड़े तो लोहे का सुन्दर और मोटा घंटा रक्खा जा सकता है। इससे भी काम निकल जायगा। स्टेशनों का काम तो इसी से चलता है।

को मित्र समझने लगते हैं और शिक्षक के बतलाये हुए मार्ग से चलने को सन्नद्ध हो जाते हैं। खेल से दिन-भर के काम में हेर-फेर होता है, जिससे छात्रों की शारीरिक उन्नति होती है, मानसिक थकावट दूर होती है और मस्तिष्क को विश्राम तथा आराम मिलता है।

स्कूल के तीसरे पहर में जब लड़कों के मुख पर क्लान्ति की छाया दौड़ने लगती है तब खेल खेलाना अत्यन्त प्रयोजनीय हो जाता है। खेल से ऐसे भी काम सधते हैं जो शिक्षा के द्वारा कभी हो ही नहीं सकते। इसलिये खेल को शिक्षा का साधन मानकर शिक्षक को अपने काम में अग्रसर होना चाहिये, किन्तु खेल को जीवन का लक्ष्य मानकर अपना कर्त्तव्य-पालन करना अनुचित है।

खेल के साथ सहयोग और प्रतियोग का गहरा और अटूट सम्बन्ध है। खेलाड़ी छात्र एक दूसरे से बढ़ जाने की अभिलाषा रखते हैं। बालकों में नकल करने की प्रवृत्ति प्रबल रहती है। अतः साथ में काम कराने का उत्साह प्रदान करना चाहिये। श्रेणी को कई टोलियों में बाँटकर प्रश्नों के द्वारा उनके ये दो भाव जाग्रत किये जा सकते हैं। उच्चारण के अभ्यास तथा पहाड़ों की स्मरण-परीक्षा में इनका सहज उपयोग हो सकता है। प्रतियोग से विशेष काम लेना ठीक नहीं है। विजयी छात्रों की अत्यन्त प्रशंसा तथा पिछड़े छात्रों की अत्यन्त निन्दा हानिकारक है। प्रतियोग के विपरीत परिणाम पर विचार करते हुए शिक्षक को ईर्ष्या के भाव से छात्रों को दूर रखने का यत्न करना चाहिये। इसके विषैले फल का

शिक्षक का यह मुख्य उद्देश्य होना चाहिये कि वह वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध जानना और देखना लड़कों को सिखावे। वस्तु-ज्ञान भी बालक का अनिश्चित होता है। वह शब्द को ही सब कुछ समझता है। गाय का चित्र दिखलाकर स्पष्ट ज्ञान करा देना चाहिये कि गाय क्या है। शिक्षक का यह मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह अपने छात्र को स्पष्ट और निश्चित विचार का अभ्यास करावे। यह काम तभी संभव है, जब शिक्षक उत्साही है और शिक्षा-प्रदान ऐसी रीति से करे कि बातें लड़के की समझ में आ जायँ और वे बातें उसे रुचिकर भी मालूम हों।

यह बात अवश्य मान्य है कि जो विषय रुचिकर मालूम होता है, वह जल्दी समझ में आता है और लड़के उसको शीघ्रता से ग्रहण करते हैं; किन्तु चित्त को प्रसन्न करनेवाली वस्तु इससे भिन्न है। शिक्षक को ऐसा भी काम करने का अभ्यास कराना चाहिये कि जो प्रसन्न नहीं कर सकता है। किताबों को ठीक क्रम से सजकर रखना, गन्दा न होने देना,

अनुराग और रोचकता

साफ-सुथरा रहने का अभ्यास करना, ये विषय विनोद के अन्दर नहीं आते हैं; किन्तु बालक इन कार्यों को बार-बार करे तो इनमें भी आनन्द मिलेगा। ये विषय भी रोचक हो जायँगे। देखा जाता है कि शिक्षक पाठ को रोचक बनाने के लिये हँसी-खेल की कहानी कहते हैं; किन्तु लड़कों का मन पाठ की ओर से घूमकर कहानी और व्यर्थ बातों की ओर घूम जाता है और पढ़ाई में बाधा पहुँचती है। लड़कों को चित्र देखकर या कहानी सुनकर जो विनोद होता है वह पाठ में लगने के साक्षात् लक्षण नहीं हैं। पाठ के इन दो

पहलुओं पर विचार कर पाठ की उपयोगिता आँकी जा सकती है। पाठ को रोचक बनाने के अनेक उपाय और साधन हैं। लड़कों की रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है। लड़कों के कौतूहल से शिक्षा का काम आरम्भ होना चाहिये, किन्तु ये बातें भी मानसिक विकास के अनुसार आवश्यक हैं।

लड़कों की रोचकता क्षणिक और तात्कालिक होती है। वे तत्काल की तरंग पर दौड़ते हैं, पाठ का उद्देश्य उनलोगों को ज्ञात नहीं रहता, इसलिये उनकी रोचकता तात्कालिक होती है। बच्चों के पाठ को रोचक बनाने के लिये कम समय तक ही उन्हें पढ़ाना चाहिये और यथाशक्ति स्थूल वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये। बालकों के स्वभाव के अनुसार पाठ रहने से पाठ बहुत रोचक होता है। रोचकता उम्र के साथ-साथ प्रौढ़ होती है।

समझ बढ़ने के साथ-साथ व्याकरण और गणित कितने सरस और रोचक मालूम होने लगते हैं, यह कहने की बात नहीं है। जो लोग छात्रजीवन व्यतीत कर चुके हैं, वे स्वयं इसका अनुभव कर सकते हैं और अपने अतीत अनुभव का बच्चों पर प्रयोग कर सकते हैं। लड़कों को नया ज्ञान इस प्रकार प्रदान करना चाहिये कि वे इसका अभिप्राय समझ लें। लड़कों के नये और पुराने ज्ञान का सम्मिश्रण होना चाहिये। पुराने ज्ञान की सहायता से नये ज्ञान को मानस में धारण करने का अभ्यास करना चाहिये। मनोविज्ञान के सिद्धान्तानुसार यह एक महत्त्व की वस्तु है। जब तक उपलब्धि (apperception) की महिमा के अनुसार कार्य नहीं किया जायगा, तब तक इस नये ज्ञान का संकलन समझना कठिन है। लड़कों को नक्शा दिखाना तब

तक व्यर्थ है जब तक लड़कों को यह ज्ञान नहीं है कि प्राकृतिक दृश्य जो वे देख चुके हैं, उन्हीं के प्रतिरूप मानचित्र में हैं।

शिक्षक का यह आवश्यक कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह बालक के अधूरे और अनिश्चित पाठ को पूर्ण और निश्चित बनावे। हर एक श्रेणी का काम पिछली श्रेणी के काम से सम्बद्ध रहता है। हर एक नये पाठ का सम्बन्ध पुराने पाठ से लगा रहता है। नये पाठ के पढ़ाने के समय और पाठ बनाने के अभिप्राय से यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि लड़के इस विषय को कहाँ तक जानते हैं। पढ़ाने के समय शिक्षक उन्हीं शब्दों का प्रयोग करे जो लड़के अच्छी तरह जानते हैं। जब लड़के एक बात समझ लें, तब दूसरी बात सिखाना या बतलाना आरम्भ करे।

पाठ को रोचक बनाना मानसिक साधन का मूल-मन्त्र होना चाहिये। यह भी अभ्यास के ऊपर अवलम्बित है। बालकों में आत्म-संयम, शिष्टाचार, सचाई, साहस आदि नैतिक गुण तथा स्वच्छता, मिताहार, श्वास-प्रश्वास आदि शारीरिक गुणों के अभ्यास बालकों की छोटी अवस्था में डालने चाहिये; किन्तु ज्ञान-सम्बन्धी शिक्षा में धीरे-धीरे सोचने और मनन करने के अभ्यास डालने के साथ नई बातें सिखाई जाती हैं। इसमें अध्ययन सम्बन्धी नये अभ्यास सिखाने पड़ते हैं और ये जीवन में बहुत दिनों तक काम देते हैं।

बुद्धि विषयक शिक्षा देने में कार्य की प्रवीणता एवं ज्ञान सम्बन्धी शिक्षाएँ दी जाती हैं। कार्य-प्रवीणता या दक्षता शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानी जाती है। किसी काम को अच्छी तरह

ये अशुद्धियाँ वनी रहती हैं। 'व' और 'ब' का भेद नहीं जानना तो इतना गड़बड़ करता है कि लेखक होने पर भी लेख लिखने के समय लेखनी रुक जाती है। ऐसे बहुत-से विषय हैं जिनपर शिक्षक लेश-मात्र भी ध्यान नहीं देता और उसको यह अनवधानता बालकों को सदा के लिये अनवधान बनाकर छोड़ देती है, जो फिर बृहस्पति के आने पर भी दूर नहीं हो सकती।

शिक्षक पढ़ाने या नई बात बताने के समय इस पर ध्यान नहीं देते हैं कि लड़के नई बात सीखने के समय अच्छी रीतियों का अभ्यास डाल रहे हैं। विषय का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। विषय जानने के समय भली भाँति अभ्यास करने से दक्षता प्राप्त होती है और बुरी रीति से काम करने में 'लसड़ियापन' का मौन अभ्यास पड़ता जाता है। छात्रों को नई बात सीखने में बुद्धि-सम्बन्धी पक्का अभ्यास डालना चाहिये जिससे दक्षता भी प्राप्त हो। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस विषय पर बहुत ज़ोर दिया है। जो बालक पढ़ने में प्रखर-बुद्धि हैं, वे खेल-कूद में भी आगे रहेंगे। उसके मन को इस ओर घुमाने की आवश्यकता है। सिविलियनों की शिक्षा ऐसी ही होती है और इसी सिद्धान्त के साहाय्य से यह मानना पड़ता है कि वे जहाँ जायँगे वहाँ ठीक से व्यवस्थित होकर काम करेंगे।

मनोविज्ञान के पण्डितों ने इस मानसिक विकास के कई मुख्य साधन निकाले हैं। छात्रों को जो कुछ पढ़ाया जाय, भूगोल हो या गणित, भाषा हो या इतिहास, सब में यह अवश्य देखना चाहिये कि जो कुछ बतलाया जाता है, वह लड़के समझते हैं कि नहीं। शिक्षक कोई नया विषय पढ़ा देते हैं। लड़के

पुस्तकों की भाषा रटकर सुना देते हैं और शिक्षक महाशय उसीसे संतुष्ट हो जाते हैं। शिक्षक को यह आदत बहुत ही हानिकारक है। शिक्षा का यह बहुत बुरा रूप है। यहीं से लड़कों में बुरी आदत डालने की शिक्षा आरम्भ होती है। शिक्षक थोड़े से अभ्यास और पढ़ाई को शीघ्रता से समाप्त करने के लोभ से भी यही कर डालते हैं।

वे यह नहीं सोचते कि यह पौधा विष का है, आगे चल कर बड़ा भयंकर रूप धारण करेगा। भाव समझे बिना शब्दों को रट लेना एक निष्फल काम है। इससे ज्ञान की वृद्धि नहीं होती। यह अभ्यास हानिकारक भी है। शिक्षक और छात्र दोनों इससे ठगे जाते हैं। शिक्षा इस कृत्रिम वृद्धि के आवरण में ढक जाती है और विद्यार्थी इस 'तोता-रटन्त' को ही विद्या की उन्नति समझने लगता है। यह उन्नति उन्नति नहीं है, वरन् अवनति ही है। जो लड़के ऐसी आदत बाल्यकाल में सीख लेते हैं, वे बड़े होकर भी बहुत घाटे में रहते हैं। हमें कई छात्रों की परीक्षा से मालूम हुआ है कि सैकड़े ३० मैट्रिक और आई० ए० विद्यार्थी भी इस बुरे अभ्यास के दास हैं। यह आदत नई बातें सीखने तथा समझने में व्यर्थ बना देती है और रुकावट डालती है।

समझाकर पढ़ाना

बिना अर्थ समझे शब्द को रट लेना कटोरे से पानी न पीकर उसकी हवा पी लेना या भात न खाकर केवल भाफ पी लेना है। भाषा पढ़ाने में यह दोष विशेष रूप से पाया जाता है। लड़के दो-दो तीन-तीन किताबें पढ़ लेते हैं, शब्दों को रट लेते हैं; किन्तु अर्थ कुछ

भी नहीं जानते। ऐसी अवस्था में प्रतिलोम शब्दों का व्यवहार कर, समानार्थक शब्दों की सहायता से भाव पर छात्रों का ध्यान खींचने का यत्न करना चाहिये।

कोई शिक्षक शिक्षित (Trained) कहलाने का तब तक अधिकारी नहीं है, जब तक वह अपने छात्रों को समझाना नहीं जानता अथवा समझकर पढ़ने का ढंग बतलाना नहीं जानता। शिक्षक की सावधानी और उत्साह के विना इसका होना अत्यन्त असम्भव है। यदि शिक्षक बालक की योग्यता के अनुकूल कोई विषय पढ़ावे, ऐसी बात बतलावे जो आसानी से समझ में आ जाय, बालकों के पढ़ने पर ऐसे साधारण प्रश्न पूछे जिसका उत्तर विना समझे न दे सके, प्रतिकूल शब्दों का प्रयोग करे, समानार्थक शब्दों को बतलावे, चित्र दिखलाकर अर्थ-ज्ञान करावे, शब्द से पढ़ाना आरम्भ करे तो यह दोष बहुत अंशों में दूर हो सकता है। पाठशालाओं में तो यहाँ तक देखा गया है कि किताब विना देखे लड़के सर-सर पढ़ जाते हैं, लेकिन कहाँ वे शब्द हैं, उनको इनका पता नहीं। ऐसी धाँधली से शिक्षा की उन्नति असम्भव है।

मानसिक अभ्यास का दिग्दर्शन ऊपर कराया गया है और यह भी बतलाया गया है कि समझ-समझकर पढ़ने का अभ्यास बाल्यकाल में डालना चाहिये। इस अभ्यास का शिक्षा में अत्यन्त महत्त्व है और इसको भूल जाना शिक्षा के एक प्रसिद्ध सोपान को भूल जाना है।

चित्त की एकाग्रता—अवधान

चित्त की एकाग्रता

पढ़ने में दूसरा अभ्यास चित्त की एकाग्रता है। एकाग्रचित्त होकर किसी पाठ का मनन और चिन्तन

(Involuntary attention) और दूसरे को प्रयत्नशील-
अवधान अवधान (Voluntary attention) कहते हैं। स्वतः
अवधान में बहुत चेष्टा नहीं करनी पड़ती। मन किसी रोचक, चमकीले और रंगदार पदार्थ की ओर अपनी वृत्तियों को दौड़ाने के लिये स्वयं बाध्य-सा हो जाता है। मनुष्य का मन सदा इधर-उधर घूमता रहता है। जो विषय जितना ही अधिक आकर्षक होता है उस ओर उतनी ही शीघ्रता से ध्यान दौड़ जाता है। इसमें विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती। उत्तेजक के उपस्थित होने पर ध्यान उस ओर स्वयं खिंच जाता है। ध्यान खिंचने पर विषय को जानने की उत्कण्ठा होती है और उसमें थोड़ा प्रयत्न करना पड़ता है। बालकों में स्वतः अवधान अधिक होता है। इसका समुचित उपयोग करना शिक्षक के हाथ में है। सचेष्ट प्रयत्नशील ध्यान लगाने को प्रयत्नशील (voluntary) अवधान कहते हैं। यदि कोई पदार्थ इतना चमकीला और आकर्षक न हो कि वह बलात् ध्यान आकर्षित कर सके, तो उसी ओर इच्छापूर्वक मन दौड़ाने का नाम प्रयत्नशील अवधान है। बालक परीक्षा में विशेष अंक पाने की इच्छा से पुस्तक पढ़ने में मन लगाते हैं। यह प्रयत्नशील अवधान का उदाहरण है।

अनुभव से देखा गया है कि अवधान भी कुछ नियम के अनुकूल चलते हैं। पहला नियम जो इसमें लागू होता है, वह उत्तेजक की अधिकता (Intensity of Stimulus) माना गया है। जितना ही अधिक बलवान् उत्तेजक होगा उतना ही अधिक अवधान उस ओर आकर्षित होगा। पढ़ाई के समय भी सिनेमा के बाजे मन को बरबस आकर्षित कर लेते हैं। यदि पढ़ाई के समय

है। जिस वस्तु से मनुष्य का कार्य सिद्ध होता है, वह मनुष्य को अपनी ओर खींच लेती है। पढ़ने के समय कितने लड़के गणित से कम प्रेम करते हैं, लेकिन जीविका प्राप्त करने के लिये पीछे यह विषय ही ध्यान को आकर्षित कर लेता है और वे घण्टों बैठकर इसमें लगे रहते हैं। पुरस्कार प्राप्त करने के लिये लड़के पूस-माघ के कड़ाके के जाड़े में भी पानी में तैरते हैं और तैरने में आगे बढ़ जाने के लिये इसका कई दिनों तक अभ्यास करते हैं।

छठा नियम परिवर्त्तन (Change) का है। पढ़ाने में इसका विशेष प्रयोग होता है। विषयों को बदल-बदलकर पढ़ाने से लड़कों का मन नहीं थकता। जीवन में इस परिवर्तन से थकावट नहीं आती और मनुष्य दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करता जाता है। अवधान के लिये इसका अत्यन्त प्रयोजन है। कार्य-क्रम से विषयों को बदलकर पढ़ाने से लड़के थकते नहीं हैं और उनका दिमाग ताजा रहता है। अवधान में भी बाधा नहीं पड़ती।

सातवाँ नियम गति (Motion) का है। चलती चीजों को देखने के लिये अधिक उत्कण्ठा हो जाती है और उनपर ध्यान शीघ्रता से जम जाता है। चलती हुई ट्रेन को देखने के लिये टकटकी बँध जाती है। शान्त चित्रों से चलते-फिरते और बोलते चित्र चित्त को अधिक एकाग्र कर देते हैं।

आठवाँ नियम असम्भव को सम्भव हो जाने (Unexpected) का है। जिस वस्तु की आशा नहीं और वह हो जाय, तो बड़ी शीघ्रता से उस ओर ध्यान खिंच जाता है। अखबार देखनेवाले इस प्रकार

अधिक मानसिक काम करने से थकावट पैदा हो जाती है और पढ़ने में ध्यान नहीं जमता। थकावट दूर करने के लिये व्यायाम कराना चाहिये अथवा विश्राम देना चाहिये। शरीर और मन एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते, अतः इनके पारस्परिक सम्बन्ध को समझकर मानसिक और शारीरिक बाधाओं को दूर करना चाहिये।

पाठ-सम्बन्धी बाधाओं के विचार करने के समय पाठ की क्लिष्टता, अत्यन्त सरलता एवं कृत्रिमता पर विचार करना चाहिये। पढ़ानेवाली बात ऐसी क्लिष्ट न हो कि लड़के कुछ समझें ही नहीं और निरन्तर शिक्षक की भाषा की उलझन में पड़े रहें और उनका मुँह ताकते रहें। पाठ ऐसा सरल भी नहीं होना चाहिये कि लड़के उसकी ओर ध्यान ही न दें। नई और पुरानी बातों को मिलाकर पढ़ाने से मानसिक विकास भी होता है और ध्यान भी लगता है। शिक्षा में जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक वास्तविकता का खयाल रहना चाहिये जिनसे लड़के पूर्ण परिचित रहें। शिक्षा-सम्बन्धी बाधाओं के वर्णन करने में शिक्षक के दोषों का विचार आ जाता है। शिक्षक का हँसोड़, रूखा और चपल स्वभाव ही बालकों के अवधान में बड़ा भारी बाधक है। शिक्षक के चरित्र, वेष-भूषा, रहन-सहन, चाल-ढाल ऐसे न हों कि लड़के उनको देखकर हँसें। शिक्षक की धीमी बोली, आलस्य और अन्यमनस्कता पढ़ाई के भारी बाधक हैं। उन्हें साफ-साफ ऊँचे स्वर से बोलना चाहिये कि लड़के उनके शब्दों को सुनें। उन्हें यह भी जानना चाहिये कि किस विषय को किस वर्ग में किस रीति से पढ़ाना चाहिये।

इन बाधाओं को हटाकर ऐसी परिस्थिति कायम करनी चाहिये कि लड़कों का अवधान ठीक हो और पढ़ाई में उनका मन लगे। यदि निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाय तो अवधान सुगम से प्राप्त किया जा सकता है।

अवधान के साधारण नियम

(१) नवीन बातों को बतलाने के समय मानसिक शक्तियों पर ध्यान देना चाहिये। किसी नये विषय को अचानक ठूँस देने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। जानी हुई बातों की याद दिलाकर नई बातों का बतलाना श्रेयस्कर है।

(२) अवधान के लिये मानसिक बल की मात्रा पर भी ध्यान देना चाहिये। अपराह्न काल की अपेक्षा प्रातःकाल में बालक अधिक ध्यान देते हैं, क्योंकि इस समय उनका मन ताजा रहता है।

(३) एक विषय पर ध्यान लगाने के लिये यह आवश्यक है कि विषय रोचक हो और ध्यान स्थिर रखने का अभ्यास हो। यदि एक विषय पर ध्यान लगाने का निरन्तर प्रयत्न किया जाय तो अभ्यास से अवधान लगाये रखना आसान हो जायगा। जब एक विषय पर अवधान लगाने का अभ्यास हो गया, तब वह अभ्यास बराबर काम देता है। इसका यथार्थ उपयोग शिक्षक को करते रहना चाहिये। किसी विषय की सूक्ष्म बारीकियाँ समझने के लिये उस विषय पर बार-बार ध्यान लगाने की आवश्यकता पड़ती है। गम्भीर विषयों के अध्ययन के लिये ध्यान का अभ्यास बाल्यकाल में ही करना चाहिये, नहीं तो आगे चलकर ध्यान विकीर्ण होने लगता है और पढ़ाई में बाधा होती है।

(४) किसी वस्तु को प्राप्त करने की आशा भी ध्यान स्थिर कर देती है। परीक्षा में प्रथम होने की आशा मेधावी विद्यार्थियों को भी घंटों तक एक काम में लगाये रखती है। जीवन-संग्राम में यह आशा भी अमृत-बूटी है।

(५) बच्चों के लिये चमकीली वस्तुएँ भी अवधान को ठीक करती हैं। कम अंक और दण्ड पाने का भय, शिक्षकों और माता-पिता को प्रसन्न करने की उत्कण्ठा एवं उपहास, अपमान आदि से बचने की इच्छा भी पढ़ाई में ध्यान लगाने को बाध्य करती है।

यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि कभी-कभी शिक्षक को कृत्रिम अवधान से धोखा होता है। लड़कों के चुपचाप बैठे रहने से यह नहीं समझना चाहिये कि उनका ध्यान पाठ की ओर लगा है। शिक्षक के द्वारा बालकों को चुपचाप बैठे रहने की उत्तेजना दी जाती है। यह उत्तेजना बालकों की प्रकृति के लिये हानिकारक है। छात्रों को चुपचाप देर तक बैठाये रखना, उनकी प्रकृति पर घोर अत्याचार करना है। उनकी चंचल प्रकृति से काम लेना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। बालकों की चपलता उनके स्वास्थ्य तथा शक्ति का परिचायक है। उस शक्ति और स्वास्थ्य का विकास करना शिक्षक का कर्त्तव्य होना चाहिये। उसके दबाने से प्रकृति कुचली जाती है और व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। इस प्रकार के दबाव से उनका शारीरिक अनिष्ट होना चाहिये। चुपचाप बैठ कर बेकार रहने का अभ्यास दृढ़ होता है; इसलिये इस कृत्रिम अवधान के ऊपर शिक्षक का पूरा ध्यान रहना चाहिये। यदि

शिक्षित, अनुभवी और मेधावी शिक्षक इसपर ध्यान नहीं देगा तो बच्चों का उद्धार असम्भव है।

स्मृति

अवधान और स्मृति विद्यार्थियों के लिये विशेष उपयोगी हैं।

अवधान और स्मृति

अवधान स्मृति का सहायक और पोषक है। छात्रों के लिये स्मृति बहुत महत्त्व की वस्तु है। वे जो कुछ देखते या सुनते हैं वह यों ही ध्यान में कैसे आ सकता है। जो कुछ पहले अनुभव में आया था मन में उसकी प्रतिमाएँ वर्तमान रहती हैं। नवीन बातें उनके साथ मिल जाती हैं और उनके प्रभाव में आ जाती हैं। एक प्रतिमा के स्मरण होने से दूसरी प्रतिमा भी स्मृति में आ जाती है। दूसरी से तीसरी और तीसरी से चौथी। स्मृति के इस नियम को सम्बन्ध-नियम कहते हैं।

स्मृति के सम्बन्ध वाले नियम तीन प्रकार से काम करते हैं।

स्मृति

इन्हें आसन्नता, सादृश्य और विपरीतता के नियम कहते हैं। यदि दो या दो से अधिक पदार्थों का अनुभव पहले एक ही स्थान में या एक ही समय में किया गया हो और यदि उनमें से कोई एक उपस्थित हो जाय तो दूसरे का भी स्मरण हो जायगा; जैसे एक स्कूल के सहपाठी के साथ भेंट होने से उस समय की सारी घटनाएँ याद आ जाती हैं। सुदामा से भेंट होने पर कृष्ण को पाठशाला की सारी बातें याद आ गईं। जिस समय की घटना रहती है उस समय की सारी मुख्य बातों, स्थानों और सब लोगों का स्मरण हो जाता है। राम के स्मरण से सीता, लक्ष्मण, भरत, पञ्चवटी, दण्डकारण्य, रावण

आदि सभी वस्तुओं का अकस्मात् स्मरण हो आता है। इस नियम को आसन्नता का नियम (Law of contignity) कहते हैं।

स्मृति के नियम

यदि दो पदार्थों में रंग, रूप, गुण, आकार आदि में सादृश्य हो, तो एक की स्मृति दूसरे का स्मरण करा देती है। किसी मनुष्य का छायाचित्र (Photo) उसके रूप का स्मरण करा देता है। किसी व्यक्ति को देखकर अपने मित्र का स्मरण हो जाता है। हमें यहाँ एक कहानी याद आ गई है। वह इसका सुन्दर उदाहरण है। एक मदारी साँप दिखलाकर जीविका चलाता था। कई वर्ष हुए, वह हमारी वस्ती में आया। तमाशा दिखाकर वह जाने को उठ खड़ा हुआ और कुछ दूर जाकर ठहर गया और रोने लगा। हमारे पिताजी ने उसे बुलाकर रोने का कारण पूछा, तो उसने उत्तर दिया कि श्रीमन्, मेरे भाई को एक अजगर इसी प्रकार दवाकर ले गया, जिस प्रकार यह बिल्ली चूहे को मुँह में दवाकर ले जा रही है। इसी विल्ली को देखकर मुझे भाई का स्मरण हो आया। रूप और गुण में सादृश्य होने से भी एक घटना दूसरी घटना का स्मरण कराती है। समुद्रगुप्त के पाठ पढ़ाने में नेपोलियन का स्मरण हो आता है। कालिदास के वर्णन से शेक्सपियर का नाम (और गुण) स्मृति में आ जाता है। इस नियम को सादृश्य का नियम (Law of similarity) कहते हैं।

जो वस्तुएँ परस्पर एक दूसरो के विरुद्ध होती हैं, वे एक दूसरे का स्मरण कराती हैं। राजा और रंक, काला और गोरा, हल्का और भारी, राम और रावण, पाप और पुण्य, उष्ण और शीत, अकबर और औरंगजेव के स्मरण साथ-साथ होते हैं।

शीघ्रता से हो आता है। प्रिंस ऑफ वेल्स के स्वागत में जो खेल-घर (Amphitheatre) विश्व-विद्यालय में बन रहा था, उसका एक-ब-एक गिरना, किसीकी देह-दाह की क्रिया, विवाह की बातें, विश्वविद्यालय में नाम के साथ उत्तीर्ण होना आदि बातें जल्दी याद आ जाती हैं। इस नियम को विकारात्मक दशा (State of Feeling) भी कहते हैं।

धारणा पक्की करने के लिये प्रयत्नशील अवधान (Voluntary Attention) की भी आवश्यकता होती है। इस अवधान का अभ्यास करना आवश्यक एवं उपयोगी भी है। शिक्षक को इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये। विचार-सम्बन्ध (Thought Relation) भी स्मृति का एक विशेष नियम होना चाहिये। जो विचार सम्बन्ध-सूत्र में पिरोये जाते हैं, वे शीघ्रता से स्मृति में आ जाते हैं। इतिहास में तिथियों के साथ बड़ी-बड़ी घटनाओं का सम्बन्ध रहता है। तिथियों के स्मरण से घटनाओं का तत्काल स्मरण हो आता है।

बालकों को ऐसा अभ्यास लगाना चाहिये कि वे अनुभव को याद रख सकें। एक अनुभव का स्मरण करने के लिये संस्कार को पक्का करना चाहिये। संस्कार का प्रभाव गहरा करने के लिये तीन साधन आवश्यक माने गये हैं। उनमें पहला यह है कि प्रभावोत्पादक वस्तु प्रबल होनी चाहिये। दूसरा यह देखना चाहिये कि अवधान अनुभव पर केन्द्रित हो। तीसरा, विद्यार्थियों को यह समझना चाहिये कि जिस विषय पर ध्यान दिया जायगा, वह बहुत दिनों तक स्मरण रहेगा। किसी बात

शीघ्रता से हो आता है। प्रिंस ऑफ़ वेल्स के स्वागत में जो खेल-घर (Amphitheatre) विश्व-विद्यालय में बन रहा था, उसका एक-ब-एक गिरना, किसीकी देह-दाह की क्रिया, विवाह की बातें, विश्वविद्यालय में नाम के साथ उत्तीर्ण होना आदि बातें जल्दी याद आ जाती हैं। इस नियम को विकारात्मक दशा (State of Feeling) भी कहते हैं।

धारणा पक्की करने के लिये प्रयत्नशील अवधान (Voluntary Attention) की भी आवश्यकता होती है। इस अवधान का अभ्यास करना आवश्यक एवं उपयोगी भी है। शिक्षक को इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये। विचार-सम्बन्ध (Thought Relation) भी स्मृति का एक विशेष नियम होना चाहिये। जो विचार सम्बन्ध-सूत्र में पिरोये जाते हैं, वे शीघ्रता से स्मृति में आ जाते हैं। इतिहास में तिथियों के साथ बड़ी-बड़ी घटनाओं का सम्बन्ध रहता है। तिथियों के स्मरण से घटनाओं का तत्काल स्मरण हो आता है।

बालकों को ऐसा अभ्यास लगाना चाहिये कि वे अनुभव को याद रख सकें। एक अनुभव का स्मरण करने के लिये संस्कार को पक्का करना चाहिये। संस्कार का प्रभाव गहरा करने के लिये तीन साधन आवश्यक माने गये हैं। उनमें पहला यह है कि प्रभावोत्पादक वस्तु प्रबल होनी चाहिये। दूसरा यह देखना चाहिये कि अवधान अनुभव पर केन्द्रित हो। तीसरा, विद्यार्थियों को यह समझना चाहिये कि जिस विषय पर ध्यान दिया जायगा, वह बहुत दिनों तक स्मरण रहेगा। किसी बात

४

औरंगजेब के शासनकाल में अकबर का स्मरण हो आता है। विभीषण के चरित्र से भरत के चरित्र का स्मरण हो आता है। इस तीसरे नियम को विपरीतता का नियम (Law of contrast) कहते हैं।

इन नियमों के अतिरिक्त स्मरण और धारणा के कई ऐसे सहायक नियम भी हैं, जो बालकों के कार्य में अत्यन्त सहायता पहुँचाते हैं। सहायक नियमों में आवृत्ति का नियम (Law of repetition) सबसे बढ़कर है। जो बात बार-बार दुहराई जाती है उसका स्मरण सरलतापूर्वक होता है और धारणा भी पक्की हो जाती है। गाड़ियों के चलने से रास्ते में लीक पड़ जाती है वैसे ही एक बात के बार-बार दुहराने से मस्तिष्क में एक प्रकार के चिह्न बन जाते हैं; इसलिये उस रास्ते से विचार का आना-जाना सहल हो जाता है। विद्यार्थियों के लिये आवृत्ति के नियम बड़े काम के हैं।

दूसरा नियम संस्कारों की स्पष्टता (Vividness of Impression) का है। जिस वस्तु का संस्कार जितना ही स्पष्ट पड़ता है, उतना ही शीघ्र उस संस्कार का स्मरण हो आता है। हमारे एक मित्र की मृत्यु काशी-विद्यालय के छात्रावास में हुई थी। विश्वविद्यालय का नाम स्मरण होते ही उस मृत्यु की घटना हमारी आँखों के सामने नाचने लगती है और विश्व-विद्यालय से जो-जो सहायताएँ उनको या उनके मरने पर उनकी माता को मिली थीं, सब-के-सब का स्मरण हो उठता है।

तीसरा नियम मनुष्य की दशाओं से सम्बन्ध रखता है। शोकात्मक घटनाओं और आनन्दप्रद बातों का स्मरण मनुष्य को

शीघ्रता से हो आता है। प्रिंस ऑफ वेल्स के स्वागत में जो खेल-घर (Amphitheatre) विश्व-विद्यालय में बन रहा था, उसका एक-ब-एक गिरना, किसीकी देह-दाह की क्रिया, विवाह की बातें, विश्वविद्यालय में नाम के साथ उत्तीर्ण होना आदि बातें जल्दी याद आ जाती हैं। इस नियम को विकारात्मक दशा (State of Feeling) भी कहते हैं।

धारणा पक्की करने के लिये प्रयत्नशील अवधान (Voluntary Attention) की भी आवश्यकता होती है। इस अवधान का अभ्यास करना आवश्यक एवं उपयोगी भी है। शिक्षक को इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये। विचार-सम्बन्ध (Thought Relation) भी स्मृति का एक विशेष नियम होना चाहिये। जो विचार सम्बन्ध-सूत्र में पिरोये जाते हैं, वे शीघ्रता से स्मृति में आ जाते हैं। इतिहास में तिथियों के साथ बड़ी-बड़ी घटनाओं का सम्बन्ध रहता है। तिथियों के स्मरण से घटनाओं का तत्काल स्मरण हो आता है।

बालकों को ऐसा अभ्यास लगाना चाहिये कि वे अनुभव को याद रख सकें। एक अनुभव का स्मरण करने के लिये संस्कार को पक्का करना चाहिये। संस्कार का प्रभाव गहरा करने के लिये तीन साधन आवश्यक माने गये हैं। उनमें पहला यह है कि प्रभावोत्पादक वस्तु प्रबल होनी चाहिये। दूसरा यह देखना चाहिये कि अवधान अनुभव पर केन्द्रित हो। तीसरा, विद्यार्थियों को यह समझना चाहिये कि जिस विषय पर ध्यान दिया जायगा, वह बहुत दिनों तक स्मरण रहेगा। किसी बात

हो जायँ। जब तक नूतन ज्ञान प्राचीन ज्ञान का अंग नहीं बन जाता, तब तक वह किसी काम का नहीं होता। एक विषय का पूरा ज्ञान जिन-जिन उपायों से पूर्ण हो उन-उन साधनों का आश्रय लेना चाहिये। इन मनोविज्ञानिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त उत्तम स्मृति की उपलब्धि के लिये अनेक गौण साधन हैं, जिनका ज्ञान प्रत्येक शिक्षक और अभिभावक को होना चाहिये।

(१) जो कुछ पढ़ाया जाय, समझकर पढ़ाया जाय। बिना समझे किसी बात का स्मरण कर लेने से बात भूल जाती है और उसका उपयोग भी नहीं होता। जब हम छठीं श्रेणी में पढ़ते थे तब वृन्दावनधर का अँगरेजी में लिखा हुआ भारतवर्ष का इतिहास सम्पूर्ण कण्ठस्थ था, किन्तु अब उसका एक पृष्ठ भी याद नहीं है। वह रटा हुआ नहीं था, किन्तु आवृत्ति करने से याद हो गया था। इससे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। ऐसा परिश्रम व्यर्थ है।

(२) किसी विषय को याद करने के लिये उसका थोड़ा-थोड़ा अंश लेना चाहिये। एक बार अधिक भार उठा लेने से कुछ लाभ नहीं होता। बहुत बातें एक बार स्मरण करने से विस्मृत हो जाती हैं।

(३) किसी विषय के ज्ञान के लिये कई इन्द्रियों से सहायता लेनी चाहिये। कई इन्द्रियों से काम लेने से प्रभाव प्रबल पड़ता है। जिस विषय को पढ़ाना हो, बोल-बोलकर पढ़ाना चाहिये। आँख और कान द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान होने से मन पर प्रबल प्रभाव पड़ता है। ऐसा होने से विषय का ज्ञान स्मृति में स्थायी होता है।

(४) किसी विषय को बहुत दिनों तक स्मरण करने के लिये

चित्र बनाना, मुख्य-मुख्य बातें चुनना, सारांश लिख लेना और उदाहरण सोच लेना बहुत उपयोगी है।

(५) किसी विषय को पक्का बनाने के लिये उसपर वार्तालाप और वाद-विवाद करना उपयोगी है। वार्तालाप से जानी हुई बातों की आवृत्ति हो जाती है। पूर्वोत्तर पक्ष के वाद-विवाद से विषय स्पष्ट होता है। बेकन (Becon) नामधारी इंगलिस्तान के प्रकाण्ड विद्वान् का कहना है कि स्वाध्याय से सूचना बढ़ती है, लिखने से यथार्थता आती है और वार्तालाप से विषय अधीन होता है। इसलिये वार्तालाप से विषय का ज्ञान कराना शिक्षक का कर्त्तव्य होना चाहिये।

(६) उत्तम स्मृति के लिये सबसे बड़ा साधन आवृत्ति है।

आवृत्ति

"आवृत्तिः सर्वशास्त्राणां बोधादपि गरीयसी।" बार-बार दुहराने से बात बराबर जीभ पर नाचती रहती है, और मनुष्य को प्रत्युत्पन्नमति, मेधावी और तीव्रधी की उपाधि से विभूषित करती है। दुहराने से मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रभाव जितना गहरा होगा, उतना ही अधिक टिकाऊ होगा। हमारे आचार्य स्वर्गीय पण्डित रामावतारजी शर्म्मा साल में कम-से-कम दो दो बार समग्र ग्रन्थों को दुहरा जाते थे; इसीलिये माघ, नैषध, साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश, ऋग्वेद प्रथमाष्टक आदि ग्रन्थ उन्हें कण्ठाग्र रहते थे। वे बराबर रटन्त की निन्दा और दुहरन्त की महिमा गाते रहते थे।

(७) किसी विषय की गूढ़ मीमांसा पर पहुँचने के लिये, उसको अपना अंग बनाने के लिये, घोर परिश्रम की आवश्यकता है। परिश्रम, अविश्रान्त परिश्रम और युक्तियुक्त परिश्रम प्रत्येक

स्वाध्यायी का मूल-मन्त्र होना चाहिये। अँगरेजी साहित्य का गंभीर विद्वान् कोषाचार्य जॉनसन का वक्तव्य है कि युवको, युवावस्था में जितना स्वाध्याय बन सके—कर लो, अन्यथा अब आयु बढ़ जायगी तब यह असम्भव हो जायगा। स्वाध्याय के लिये स्वस्थ शरीर और किशोरावस्था ही अनुकूल है। इस समय अपने मन को पाठ की ओर लगाना बड़ा पुण्य है और यही सब सिद्धियों का मूल है। स्वाध्याय तपस्या है और इस तपस्या का फल चित्तवृत्ति, निरोध एवं घोर परिश्रम पर अवलम्बित है।

अब तक हमने यह बतलाने का यत्न किया है कि अध्ययन के लिये अवधान की विशेष आवश्यकता है। पाठ में अवधान लगने के लिये इसको जहाँ तक हो सके, रोचक बनाना चाहिये। पाठ में रुचि होने से अवधान भी ठीक होता है और विषय-ज्ञान की धारणा भी पक्की होती है। स्मृतिशक्ति की वृद्धि होती है और अध्ययन का अभ्यास दृढ़ होता है। पाठ में रुचि उत्पन्न करने के लिये शिक्षाविज्ञान के पण्डितों ने कई तात्कालिक सिद्धान्तों का निरूपण किया है और यह बतलाया है कि इनके उपयोग से छात्रों का अनन्त उपकार हो सकता है। ये सिद्धान्त मनोविज्ञानिक नींव पर अवलम्बित हैं और बालकों के स्वभाव की परीक्षा कर बनाये गये हैं। ये मानसिक विकास के सहायक और साधक भी हैं। इन सिद्धान्तों का प्रयोग किसी भी पाठ में न्यूनाधिक रूप में पाया जाता है।

शिक्षा-प्रदान के सामान्य नियम

(१) रुचि उत्पन्न करने के लिये सबसे प्रधान सिद्धान्त

अहाते का ज्ञान देकर फिर गाँव, जिले, प्रदेश, देश, महादेश का ज्ञान देना उचित है।

(४) शिक्षा देने में अनिश्चित से निश्चित की ओर बढ़ना चाहिये। पदार्थों का ज्ञान लड़कों के हृदय में अस्पष्ट और धुँधला रहता है। लड़के 'वृक्ष' शब्द का उच्चारण करते हैं। इस अनिश्चित ज्ञान को स्पष्ट बना देना चाहिये। उन्हें बतलाना चाहिये कि वृक्ष क्या है और इससे क्या लाभ है और कैसे यह बड़ा होता है ?

(५) दृष्टान्त से नियम की ओर पहुँचना चाहिये। एक विशेष वस्तु को बतलाकर उसके साधारण गुण का ज्ञान देना चाहिये। बिल्ली का चित्र दिखलाकर यह बतला देना चाहिये कि बिल्ली के एक ही पैर नहीं होता, किन्तु चार पैर होते हैं। व्याकरण या रेखागणित पढ़ाने में उदाहरण बतलाकर नियम निकलवाना चाहिये। ऐसा करने से लड़कों की रुचि बढ़ती है और शिक्षा गुणकारी होती है।

(६) परीक्षा में न्याय की ओर बढ़ना चाहिये। लड़के यह देखते हैं कि अधिक पाला पड़ने से फ़सल नष्ट हो जाती है, परन्तु क्यों नष्ट होती है, इसका कारण नहीं जानते। जब यह जान जाते हैं तब उन्हें उनका रहस्य मालूम हो जाता है। प्रकृतिपाठ और विज्ञानपाठ में, परीक्षा-द्वारा विज्ञान के सिद्धान्तों पर पहुँचने का यत्न करना चाहिये।

(७) पाठ पढ़ाने में सादृश्य और विपरीतता का भी अवलम्बन करना चाहिये। इसकी उत्तम रीति यह है कि विदित और अविदित के नियम में इसका प्रयोग किया जाय। समान

बातों का बतलाना सादृश्य है। विभिन्न बातों का बतलाना विपरीतता है। इतिहास और भूगोल में इसकी पूरी सहायता ली जा सकती है। पाटीगणित में गुणन पहाड़ों के साथ मिलाकर और साधारण भिन्न तथा दशमलव मिलाकर पढ़ाये जा सकते हैं। दो नई बातों को सिखाने में इसका प्रयोग किया जा सकता है। साहित्य पढ़ाने के समय शब्दार्थ बतलाने में विलोम शब्दों के प्रयोग से इसका उपयोग किया जा सकता है। सादृश्य और विपरीतता के नियम से किसी नई बात को दृढ़ करना भी सहज होता है। आवृत्ति करने में भी आसानी होती है। प्रत्येक विषय के पढ़ाने में इसका प्रयोग हो सकता है।

शिक्षा-विधि

यद्यपि विविध विषयों को पढ़ाने लिये विविध रीतियाँ हैं, किन्तु कुछ ऐसी सामान्य आवश्यक शिक्षात्मक बातें भी हैं जो थोड़े ही परिवर्त्तन से भिन्न-भिन्न विषयों में प्रयुक्त की जा सकती हैं। प्रत्येक शिक्षक और शिष्य-शिक्षकों को इन्हें परीक्षा करके समझ लेना चाहिये। आरम्भ में इन सबों का एकबारगी प्रयोग करना ठीक नहीं। यदि कोई शिक्षक अपने मन को इनकी ओर बराबर लगाये रहे और इनका प्रयोग सच्चे मन और सन्तोष से करता रहे, चाहे वह कम योग्यता का क्यों न हो, तो भी इन रीतियों से वह अवगत हो जायगा। इन रीतियों का अच्छी तरह से अनुभव कर इनसे काम लेना ठीक है।

(१) पहली बात इस सम्बन्ध में यह है कि जहाँ तक संभव हो, लड़कों को कम बताना चाहिये। लड़कों को अपने स्मरण, निरीक्षण एवं जानी हुई बात को साफ-साफ प्रकट करने की शक्ति को उत्तेजित करना चाहिये। लड़कों को जानी हुई बात को स्वयं प्रकट करने की योग्यता बढ़ानी चाहिये। निरीक्षण और पर्य्यवेक्षण द्वारा उनको स्वयं जानने की शक्ति भी बढ़ानी चाहिये। शिक्षक को यह सदा ध्यान रखना चाहिये कि उसके शिष्य अपनी जानकारी को उचित रीति से प्रकाशित कर सकें, चाहे वह बात घुमा-फिराकर ही क्यों न पूछी गई हो।

(२) ज्ञानेन्द्रियों के सहारे शिक्षा देनी चाहिये। पढ़ाने में जितनी ही अधिक ज्ञानेन्द्रियाँ काम में लगाई जायँगी उतना ही सन्तोषजनक परिणाम होगा। पढ़ाने में वस्तुओं को दिखाना,

उनकी परीक्षा कराना और विशेषता को समझाकर याद कराना चाहिये । पढ़ाने में कम-से-कम दृष्टि, श्रवण और मुख का प्रयोग होता है । इनका प्रयोग अवश्य करना चाहिये ।

(३) लड़कों को किसी बात को समझकर कण्ठस्थ करना ही पर्याप्त नहीं है । उनको प्रत्येक वस्तु अपने आप करके सीखना चाहिये । लड़कों को कक्षा के सामने बुलाना, चित्र या मानचित्र दिखलाना या स्वयं उनसे कुछ कराना उपयोगी है । लड़कों को चुपचाप बैठे रहने देना ठीक नहीं है । उन्हें बराबर काम में लगाये रहना अच्छा है ।

(४) लड़कों को सरल वस्तुओं का ज्ञान देकर कठिन वस्तुओं को बतलाना चाहिये । विदित वस्तुओं को बतलाकर अविदित वस्तुओं का ज्ञान देना चाहिये ।

(५) पहले उदाहरण देकर लड़कों ही से सिद्धान्त निकलवाना चाहिये । जैसे—सम्मिलित महत्तम समापवर्तक सिखाने में बहुत-से उदाहरण देना चाहिये । अन्त में उन उदाहरणों की सहायता से सिद्धान्त निकलवाना चाहिये । जितनी शिक्षा इस प्रकार दी जाती है, पढ़ने से उतना ही अधिक अनुराग बढ़ता है । इस रीति पर चलने से लड़कों का भरोसा बढ़ता है ।

(६) शिक्षक को इस प्रकार पढ़ाना चाहिये कि लड़कों को कुछ पूछने की इच्छा हो और विषय में मन लगाने लगें । शिक्षक को इस प्रकार पढ़ना चाहिये कि लड़कों को स्वयं पढ़ने और नवीन बातों को ज्ञात करने में उत्कंठा उत्पन्न हो । जो बातें लड़के स्वयं ज्ञात करते हैं, वे उन बातों से जो शिक्षक बतलाता है, विशेषकर अधिक लाभदायी हैं ।

(७) कभी-कभी लड़कों को पाठ दुहराने पर भी जोर देना चाहिये। स्मरण-शक्ति से काम लेना आवश्यक है। पर उससे अधिक काम लेना ठीक नहीं है, उसको विल्कुल निकम्मा रखना भी नहीं चाहिये।

(८) भिन्न-भिन्न विषयों के पढ़ाने की विधियाँ भिन्न-भिन्न हैं, तथा उनका प्रयोग भी निम्नलिखित सिद्धान्तों के ऊपर अवलम्बित है। किसी विषय को पढ़ाने में इनका अवश्य विचार विचार होना चाहिये—

(क) विषय किस प्रकार का है?

(ख) इसके पढ़ाने का तात्पर्य्य सुधार है या ज्ञानवृद्धि?

(ग) लड़कों की उम्र, योग्यता, गुण और शक्ति क्या हैं?

(घ) पाठशाला की परिस्थिति और सामग्री।

इन वातों को ध्यान में रखकर शिक्षक को पढ़ाना चाहिये। पढ़ाने में शिक्षा-तत्त्व का ज्ञान अवश्य रहना चाहिये और शिक्षा-विधि का प्रयोग होना चाहिये। विना किसी ढंग से पढ़ाना, अन्धेरे में कोई वस्तु टटोलना है।

उत्तम रीति से शिक्षा-प्रदान करने से समय का वचाव और अल्प शक्ति का क्षय होता है। इससे जल्दी थकान भी नहीं होती है और मस्तिष्क पर भार भी नहीं पड़ता है। उत्तम प्रणाली से पढ़ाने से काम अच्छा होता है। इस प्रकार काम करने से शारीरिक और नैतिक उन्नति के लिये पर्य्याप्त अवसर मिलता है।

पाठ का उद्देश्य निश्चित हो जाना चाहिये। वालकों को

पाठ का उद्देश्य मालूम हो जाने से पाठ में रुचि उत्पन्न होती है। रुचि उत्पन्न करने के लिये पाठ के विषय का पता देना उचित है। यदि पाठ व्यावहारिक बातों से सम्बन्ध रखता है, तो लड़कों की रुचि और अधिक बढ़ती है। क्षेत्रफल निकालने के पहले छात्रों को बतला देना उचित है कि आज हम तुमलोगों को कमरे का फर्श बतलाने में सहायता देंगे। ऐसे प्रश्नों से पाठ आरम्भ करना चाहिये जिनसे व्यावहारिक सम्बन्ध हो। पाठ आरम्भ करके ऐसे उदाहरणों का प्रयोग करना चाहिये कि लड़के किसी सचाई, सिद्धान्त या नियम पर पहुँच जायँ। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये शिक्षक को समय-समय पर कई शिक्षा-रीतियों का पालन करना पड़ता है। ये रीतियाँ विशेष अवसर पर विशेष काम देती हैं। इन रीतियों में पढ़ाने की आगमनात्मक रीति बहुत उपयोगी है। इसमें पाठ का आरम्भ उदाहरणों से किया जाता है। उन उदाहरणों की परीक्षा से प्रयोजनीय नियम या सिद्धान्त का पता लगाया जाता है। व्याकरण पढ़ाने में इसी रीति का अवलम्बन करना चाहिये। गणित और रेखागणित पढ़ाने में भी इसी रीति का प्रयोग होना चाहिये। आगमनात्मक रीति के ठीक विपरीत निगमनात्मक रीति है। इसमें पहले सिद्धान्त बतलाया जाता है। इसी रीति का प्रयोग पहले बहुत किया जाता था और आज-कल भी आलसी शिक्षक इसका आश्रय लेते हैं। निगमनात्मक रीति के अनुसार शिक्षक छात्रों के लिये शिक्षा-सम्बन्धी सब काम स्वयं कर देता है। जो कुछ उसे सिखाना है, वह लड़कों को पहले ही बतला देता है। आगमनात्मक रीति में

पाठ

छात्रों को अपने ही नियम मालूम करने पड़ते हैं। इसमें छात्रों को स्वयं काम करने का अवसर मिलता है। लड़कों को यह बतला देना कि उनको अमुक नियम या सिद्धान्त निकालना है बुरा नहीं है, किन्तु सिद्धान्त बतलाकर आगे बढ़ने की ओर संकेत करना ठीक नहीं है।

आगमनात्मक विधि

आगमनात्मक रीति से शिक्षा देने के अनेक लाभ हैं। इससे छात्रों को नई बात या सिद्धान्त मालूम करने का अभ्यास हो जाता है। यह अभ्यास मनुष्य-जीवन में बहुत लाभदायक होता है। सुशिक्षित बुद्धि की यह एक परीक्षा है कि ऐसी बुद्धिवाला मनुष्य दक्षता और सावधानी से सामान्य सिद्धान्त जान लेता है। जिस मनुष्य में यह योग्यता नहीं होती, वह किसी उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान का अधिकारी नहीं होता। इस क्रिया में लगे रहने से लड़के बराबर क्रियाशील और फुर्तीले बने रहते हैं। इसमें स्वाधीनता और स्वावलम्बन का पाठ मिलता है। निगमनात्मक रीति से पढ़ाने से बालकों का मन आलसी और पराधीन हो जाता है। उन्हें अपने मन पर भरोसा न रखने और दूसरों के विचार को ठीक मान लेने का अभ्यास पड़ जाता है।

आगमनात्मक और निगमनात्मक विधियों का समन्वय

आगमनात्मक या निगमनात्मक रीति से पढ़ाने के समय इस बात का अवश्य विचार करना चाहिये कि छोटी बातों को बतलाने में बहुत समय नष्ट न हो। इसमें आगमनात्मक रीति का अवलम्बन लेना ठीक नहीं है। जहाँ नियमों या सिद्धान्तों को समझाना अत्यन्त आवश्यक है, वहाँ खूब समझाना चाहिये। जो

कुछ भी सिखाना हो स्पष्ट रीति से सिखाना चाहिये कि लड़के उसको हृदयङ्गम कर लें। कहाँ किसी रीति का प्रयोग होना चाहिये, यह तीन बातों पर निर्भर करता है—एक तो छात्रों ने विद्याप्राप्ति में कितनी उन्नति की है; दूसरी उनकी समझने की शक्ति कैसी है और तीसरी यह है कि शिक्षक को कितना समझाना है। इन बातों पर विचार कर शिक्षक को आगे बढ़ना चाहिये।

कोई-कोई विषय ऐसा होता है कि जिसमें आगमनात्मक रीति का ही प्रयोग उत्तम है और कोई-कोई पाठ ऐसा भी होता है जिसमें निगमनात्मक रीति की विशेष आवश्यकता है। जिस पाठ में जिस रीति की अधिक आवश्यकता होती है वह पाठ उसी रीति से प्रसिद्ध रहता है। इसलिये निगमनात्मक (Deductive) या आगमनात्मक (Inductive) पाठ भी होते हैं; किन्तु पाठ कोई भी हो, सबमें अभ्यास की आवश्यकता होती है। बिना अभ्यास के कोई सिद्धान्त पक्का नहीं हो सकता। अभ्यास-पाठ हर एक पाठ का अंग है, किन्तु कभी किसी विशेष बात को दृढ़ करने के लिये अभ्यास-पाठ की आवश्यकता होती है। अभ्यास-पाठ में नीचे लिखी पाँच बातों का स्पष्ट विवरण रहता है।

(१) किसी अभ्यास के निर्माण के लिये किसी विशेष उद्देश्य का लक्ष्य होना चाहिये। (२) यह स्पष्ट रहना चाहिये कि वह उद्देश्य कैसा है जिसकी प्राप्ति इस अभ्यास से हो सकती है। (३) आवृत्ति के समय विषय पर अवधान को लगाने से क्या लाभ होंगे। (४) अभ्यास-पाठ में भी विविध बातों का

आवर्त्तन और परिवर्त्तन होता रहना चाहिये कि मानसिक थकान न होने पावे। (५) अशुद्धियों को दूर करने के लिये यथा-साध्य चेष्टा होती रहनी चाहिये। अभ्यास-पाठ में व्यक्तिगत और सामूहिक अभ्यास की ओर विशेष रीति से जोर देना चाहिये। श्रेणी के लड़कों का दोष श्रेणी भर के लड़कों को उसमें लगाकर दूर करना चाहिये। व्यक्तिगत भूलों का मार्जन व्यक्तियों के द्वारा कराना चाहिये। श्रेणी भर के लड़कों को टोलियों में विभक्त कर इस प्रकार का कार्य किया जा सकता है जिससे अपार लाभ हो सकता है। उच्चारण, गणना, पढ़ना, लिखना सिखाने में इसका खूब प्रयोग किया जा सकता है। अभ्यास-पाठ पढ़ाई की नींव है।

साहित्यपाठ में सौन्दर्यानुभूति का विशेष पाठ होना चाहिये। जो विषय शिक्षक पढ़ाता है, उसके हृदय में उसके प्रति प्रगाढ़ अनुराग और विषय की अनुभूति होनी चाहिये। शिक्षक को चित्र, संगीत, लय, कविता, व्यक्ति के प्रति लड़कों के हृदय में प्रेम और उत्साह उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिये। लड़कों को अपने मन के अनुकूल विषय-निर्वाचन की पूरी स्वतन्त्रता रहनी चाहिये। ऐसे पाठ में कभी उदासीनता नहीं आनी चाहिये। उदासीनता आने से साहित्यपाठ अरोचक हो जाता है। आजकल इस प्रकार के साहित्यपाठ का प्रायः अभाव ही देखा जाता है। जो शिक्षक इसका प्रेमी होगा वही इसका आशय समझा सकता है। कभी-कभी छन्द या कविता-रचना कर इस कला पाठ में उन्हें उत्साहित करना चाहिये।

शिक्षा देने में 'देखो' और 'कहो' तथा 'देखो' और 'सीखो'

का बहुत प्रयोग किया जाता है। पढ़ना पढ़ाने में, कहानी कहलाने में तथा किसी बात को लड़कों के द्वारा निकलवाने में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। कृष्णपट्ट पर कुछ लिखने या दीवाल पर चित्र टाँगने से इसका उपयोग किया जाता है। लिखना सिखाने में 'देखो' और 'लिखो' की प्रणाली काम में लाई जाती है। इन दो प्रणालियों से लड़कों का अनुराग बढ़ता है और लिखने-पढ़ने में मन लगता है। ये प्रणालियाँ आरम्भिक अवस्था के लिये बहुत उपयोगी और आवश्यक हैं। इन नियमों में विदित से अविदित की ओर, मूर्त्त से अमूर्त्त की ओर, अमिश्र से मिश्र की ओर तथा उदाहरण से नियम की ओर चलने के तात्विक सिद्धान्त अन्तःस्थित रहते हैं।

प्रत्यक्ष विधि

मानसिक शक्ति के पूर्ण विकास के लिये प्रत्यक्ष विधि अत्यन्त उपयोगी है। प्रश्नों के द्वारा लड़कों से ही किसी बात को निकलवाना शिक्षाशास्त्र में बहुत महत्त्व रखता है। यूनान के सुप्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात महत् तत्वों की मीमांसा करते समय प्रश्नों के द्वारा ही जनता से गूढ़ बात निकलवा लेते थे। इस प्रणाली के नियम का प्रयोग शिक्षा-क्षेत्र में पाया जाता है। किसी अन्य भाषा के पढ़ाने में इसका बड़ा महत्त्व है। अँगरेजी पढ़ाने में इस प्रणाली के ऊपर बड़ा महत्त्व दिया गया है। इस प्रणाली की समुचित विवेचना उस विषय के पढ़ाने की विधि के साथ-साथ विस्तारपूर्वक की जायगी। साधारणतः इसका संक्षेप रूप जान लेना लाभदायक है।

प्रश्न और उत्तर

पढ़ाने की सब कलाओं, पद्धतियों और प्रणालियों में प्रश्न एक बहुत उपयोगी वस्तु है। आधुनिक शिक्षा में इसका बड़ा महत्व है। अनुराग, अवधान, उत्तेजना, जिज्ञासा, कौतूहल आदि के लिये प्रश्नों का उपयोग नितान्त आवश्यक है। आधुनिक शिक्षा की अट्टालिका प्रश्नावली रूपी दीवालों पर खड़ी है। इतिहास पढ़ाने में केन्द्रीय विधि, उद्गम विधि, कहानी-विधि या प्रत्यक्ष प्रश्नोत्तर विधि या कोई विधि हो; गणित सिखाने में आगमनात्मक, मूर्त्तात्मक या कोई विधि हो; पढ़ना या लिखना सिखाने में विश्लेषण विधि, संयोजन विधि, वाक्य विधि, शब्द विधि, उच्चारण विधि, देखो और लिखो विधि, देखो और पढ़ो विधि, पुरानी अक्षर विधि, उपहार, विधि या कोई हो; भूगोल या प्रकृतिपाठ में, पर्य्यवेक्षण, अनुसंधान, यात्रा, परीक्षा कोई भी कार्य हो, विदेशी भाषा पढ़ाना सिखाने में अनुवाद विधि, प्रत्यक्ष विधि या अप्रत्यक्ष विधि किसी का उपयोग किया जाय, किन्तु सर्वत्र प्रश्नों की आवश्यकता होती है। प्रश्नों की सहायता से बच्चों का मन काम में लगता है। स्वयं पदार्थों के अन्वेषण करने का अभ्यास पड़ता है। पाठ की बातें स्पष्ट होती हैं। पुनरावृत्ति के प्रश्नों से स्मृतिशक्ति बलवती होती है। प्रश्नों से शिक्षक को अपना काम जाँचने का अवसर मिलता है। अध्ययन करते समय यदि छात्र प्रश्न सोचें और उसका उत्तर निकालें तो बड़ा लाभ हो सकता है। अध्ययन में उत्सुकता और कौतूहल उत्पन्न करते चलना शिक्षक का कर्त्तव्य होना चाहिये। जिसको पढ़ने, समझने और ज्ञान-प्राप्ति में कुछ

प्रश्नों का महत्व

शंका ही नहीं होती, वह नवीन ज्ञान की प्राप्ति में बहुत पिछड़ा हुआ रहता है। प्रश्नों से अध्ययन में उत्तेजना प्राप्त होती है और शंका-समाधान के लिये मनन और विचार करने का अवसर प्राप्त होता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से देखने से पता चलता है कि प्रश्नों से सामूहिक जीवन का विकास तो होता ही है, साथ-ही-साथ व्यक्तिगत शक्तियों का उद्घाटन और प्रकाशन भी होता है। श्रेणी-शिक्षा और व्यक्तिगत शिक्षा को मिलानेवाला प्रश्न ही है। प्रश्नों के द्वारा इनका सुन्दर विकास और अभिव्यञ्जन होता है। मनुष्य-जीवन प्रश्नमय है। पद-पद पर कोई-न-कोई प्रश्न उपस्थित होता रहता है। प्रश्नों का हल करना और उनका सामना करना प्रत्येक ज्ञानार्थी का कर्त्तव्य होना चाहिये। विद्यार्थी को इसका अभ्यास होना चाहिये कि प्रश्नों को देखकर घबराये नहीं, वरन् सोचकर उत्तर निकाले। आजकल आजीविका के लिये, प्रतिष्ठित पद पाने के लिये, किसी विशेष सम्मान के लिये भी परीक्षाओं की प्रणाली प्रतिष्ठित हो रही है। प्रश्नों को हल करने का अभ्यास इन गहन परीक्षाओं में बैठने का सहायक होता है और इनसे निर्भीक होने की शिक्षा प्राप्त होती है। आधुनिक शिक्षा में प्रश्नों के ऊपर बड़ा महत्त्व दिया गया है। नवीन बातों को सिखाने के लिये शिक्षक का यह बहुत बड़ा साधन है। प्रश्नों के चुनाव से परिश्रम, अध्यवसाय और तीव्रधी होने का शीघ्र पता चल जाता है। प्रश्न चुनने, पूछने और प्रश्नोत्तर लेने की कला अनुभव से प्राप्त होती है। निरन्तर अभ्यास करते रहने से इसमें प्रवीणता प्राप्त होती है। शिक्षक को इसका यथोचित और समुचित प्रयोग करना सीखना चाहिये।

प्रश्न श्रेणी को संकेत कर पूछना चाहिये। प्रश्न पूछकर ठहर जाना चाहिये। प्रश्नोत्तर सोचने के लिये लड़कों को पर्याप्त समय देना चाहिये। प्रश्न सुनकर शीघ्र ही हाथ उठानेवाले लड़कों से उत्तर के लिये तकाजा ठीक नहीं है। यदि श्रेणी के अधिक लड़कों के हाथ न उठें तो प्रश्न फिर से करना चाहिये। उत्तर देने के लिये उत्तम, मध्यम और निकृष्ट लड़कों में भेद-भाव रखना ठीक नहीं है।

प्रश्न

प्रश्नविधि

अनुभव से देखा गया है कि अनुभवी शिक्षक प्रश्न पूछने में दक्ष होते हैं और उनके प्रश्नों से उनकी गम्भीरता और मननशीलता का पता लगता है। शिक्षण-विद्यालयों के शिष्य-शिक्षकों के लिये कुछ ऐसी बातें हैं जिनका अभ्यास उनके लिये बहुत महत्व का है। इन्हीं बातों का विचार कर प्रश्नावलियाँ तैयार करनी चाहिये।

(१) प्रश्न स्पष्ट और सीधा होना चाहिये। जिन प्रश्नों के कई प्रकार के उत्तर हो सकते हों अथवा जिनका उत्तर निर्दिष्ट न हो—ऐसे प्रश्न नहीं करना चाहिये।

(२) प्रश्नों की भाषा सरल और शुद्ध होनी चाहिये। प्रश्नों की भाषा कभी दुरूह नहीं होनी चाहिये।

(३) ऐसा प्रश्न कदापि नहीं करना चाहिये जिसका उत्तर बहुत बड़ा और लम्बा हो। ऐसे प्रश्न के उत्तर में लड़के घबरा जाते हैं और स्मरण की हुई बातें भी भूल जाते हैं।

(४) 'हाँ'-'नहीं' वाला प्रश्न कभी नहीं पूछना चाहिये।

उत्तर सोचने के लिये पूरा समय देना चाहिये। प्रश्नोत्तर सोचना मानसिक विकास का एक प्रधान साधन है। इसका अभ्यास शिक्षा में बहुत महत्व का है।

(११) ऐसे प्रश्न भी पूछने चाहिये कि अभिमानी, असावधान और आलसी लड़कों को शीघ्रता से उत्तर निकालने में कठिनाई हो। इसका प्रयोग कभी-कभी करना चाहिये।

(१२) कभी-कभी उत्साहवर्द्धक प्रश्न भी पूछने चाहिये। जिन प्रश्नों से साहस बढ़े, उत्तेजना हो, विषय में अनुराग हो और पढ़ने में मन लगे, उन्हें भी पूछना चाहिये।

प्रश्नों में ऊपर बतलाये हुए गुण रहने चाहिये, किन्तु प्रश्नों के उद्देश्य निश्चित और स्पष्ट रहने चाहिये। जो शिक्षक बिना किसी उद्देश्य से प्रश्न पूछता है, वह निरर्थक है और शिक्षा-सिद्धान्त से दूर है। प्रश्नों के ध्येय के अनुसार ये कई प्रकार के होते हैं। इनके स्वरूप को जानकर अपने कार्य में प्रवृत्त होना शिक्षक के लिये आवश्यक है। नीचे इनके भेद लिखे जाते हैं।

(१) परीक्षात्मक प्रश्न, इनके ध्येय—

(क) लड़कों की उन्नति की जाँच करना है। लड़के क्या जानते हैं, कहाँ तक जानते हैं और क्या नहीं जानते हैं, इन बातों का पता इस प्रकार के प्रश्नों से लग जाता है। ये आरम्भिक प्रश्न के काम करते हैं।

(ख) ज्ञात विषय के द्वारा ये नई बातों का स्मरण कराते हैं। पूर्व ज्ञान की सहायता से नई बात जानने की उत्सुकता उत्पन्न करना भी इसका उद्देश्य है।

(ग) विषय में अवधान लगाने के लिये भी इनका प्रयोग

(च) मार्ग-दर्शक प्रश्न—ये विषय में प्रवेश होने के लिये व्यवहृत होते हैं। जैसे—क्या यह कलम है ?

(छ) पूरक प्रश्न—जिसमें खाली स्थान छोड़ दिये जाते हैं। बालक अपने विचार से इनको पूरा करते हैं। जैसे—राम.....पिता.....साथ.....लौट.....गया।

(ज) वैकल्पिक प्रश्न—इसमें उत्तर-द्योतक तथा उसके विपरीतार्थक शब्द दिये रहते हैं। जैसे—बीड़ी पीना बुरा है या अच्छा ?

इनमें मार्ग-दर्शक, पूरक और वैकल्पिक प्रश्नों का उपयोग जहाँ तक सम्भव हो, परीक्षा में ही करना चाहिये। पढ़ाने में इनका प्रयोग अत्यल्प होना चाहिये। यदि इनकी गणना परीक्षात्मक प्रश्नों के अन्तर्गत की जाय तो अच्छा हो। किन्तु विद्वानों ने इन्हें शिक्षात्मक प्रश्नों के अन्तर्गत परिगणित किया है; इसलिये ये यहाँ ही दिखलाये गये हैं। शिक्षात्मक और परीक्षात्मक प्रश्न अन्योन्याश्रित हैं। इनका प्रयोग साथ-साथ होने ही से शिक्षा में उन्नति हो सकती है।

उत्तर

पढ़ाने के समय प्रश्नों की उपयोगिता पर पूरा विचार किया जा चुका है। अब उत्तरों के रूप और व्यवस्था पर विचार करना आवश्यक जान पड़ता है, किन्तु इसके पहले इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिये कि लड़के प्रश्नों के द्वारा लाभ उठाते हैं या नहीं। कभी-कभी पढ़ाने के समय शिक्षक पूछते हैं कि 'समझा या नहीं ?' 'समझते हो ?' इत्यादि। यह ढंग बुरा है। शिक्षक को प्रसन्न करने के लिये छात्र 'हाँ सर' 'जी' 'जी सर' 'जी पण्डितजी' कह देते हैं। ये रीतियाँ

चाहिये। यदि लड़के पूर्ण उत्तर न दे सकें तो खण्ड-खण्ड करके उत्तर लेना चाहिये। यदि लड़के प्रश्नों के उत्तर समझ गये हों, किन्तु उचित शब्दों में उन्हें प्रकाशित न कर सकते हों तो शिक्षक को अनुकूल शब्दों के प्रयोग से भाव प्रकाशित कर देना चाहिये। लड़कों के उत्तम उत्तर पर उनकी प्रशंसा करनी चाहिये और अनवधानता के कारण बुरे उत्तरों के लिये कभी-कभी उन्हें लज्जित करना चाहिये। लड़कों की शक्ति के अनुसार उत्तर स्वीकार कर लेना चाहिये। यह देखा गया है कि कितने शिक्षक लड़कों के उत्तर से सन्तुष्ट नहीं होते और स्वयं प्रश्नोत्तर करने लगते हैं। इस असंतोष से दूर रहना प्रत्येक शिक्षक का कर्त्तव्य है। कभी-कभी यह भी देखा गया है कि अशुद्ध उत्तरों पर 'नहीं' करके शिक्षक आगे बढ़ जाते हैं और भूल-सुधार नहीं करते। शिक्षक को ऐसे स्थानों पर शब्दों के द्वारा चित्र खड़ा कर—चित्र दिखलाकर, स्पष्ट रूप से, विषय का ज्ञान करा देना चाहिये।

उत्तर देने में यह नियम रहना चाहिये कि एक ही बालक एक समय उत्तर दे। किन्तु कभी-कभी सम्मिलित उत्तर की भी आवश्यकता पड़ती है। सम्मिलित उत्तर से दब्बू, संकोची, कमजोर, मेधावी आदि सभी लड़कों की बोलने की झिझक दूर हो जाती है। मन्दबुद्धि लड़के भी औरों को देखा-देखी से कुछ बोलते हैं और स्मरण करने का यत्न करते हैं। इस उत्तर में मनबहलाव भी होता है और लड़कों को इसमें आनन्द मिलता है। यदि छोटे बच्चों की श्रेणियों में कभी-कभी इसका प्रयोग कराया जाय, तो बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। किन्तु ऐसे समय शोर-गुल

आवश्यकता होती है। व्याख्या आरम्भ करने के पूर्व विषय के प्रति कौतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न कराना चाहिये। इसके बाद गूढ़ बातों को, किसी प्रासंगिक घटनाओं तथा कथाओं को स्पष्ट रूप से धीरे-धीरे बोल-चाल की साधु भाषा में बतलाना चाहिये। शिक्षक कभी-कभी उत्साहित होकर आवश्यकता से अधिक बातें बतलाने लगते हैं। शिक्षा में यह उपयोगी नहीं है। कभी-कभी विषय-ज्ञान की न्यूनता अथवा ज्ञान की अधिकता से व्याख्या अनुचित हो जाती है। पाण्डित्य-प्रदर्शन करने की अभिलाषा से कठिन भाषाओं के प्रयोग द्वारा की गई व्याख्या बालकों के लिये अनुपयुक्त सिद्ध होती है। इन दोषों से बचकर व्याख्या की ओर प्रवृत्त होना चाहिये। व्याख्या करने का साधन दृष्टान्त और प्रासंगिक उदाहरणों का उपस्थित करना भी है। व्याख्याओं को स्पष्ट करने तथा पाठ में अनुराग एवं अभिरुचि उत्पन्न करने के लिये दृष्टान्त बहुत उपयोगी हैं। दृष्टान्त सरल और उपयोगी होना चाहिये। छोटे बच्चों के लिये दृष्टान्त और उदाहरण बहुत उपयोगी हैं। स्थूल उदाहरण देकर पढ़ाना बहुत लाभकारी है। स्थूल उदाहरणों के द्वारा अज्ञात वस्तुओं का ज्ञान कराया जा सकता है। उपमा और तुलना के द्वारा मौखिक दृष्टान्त भी बहुत लाभकारी होते हैं; किन्तु सर्वत्र इनका प्रयोग ठीक नहीं है। जिन दृष्टान्तों से बालक को विशेष लाभ होता है, वे कई प्रकार के होते हैं—(क) सजीव पदार्थ; (ख) आदर्श (नमूना); (ग) चित्र या तस्वीर; (घ) मानचित्र और (ङ) कृष्णपट्ट पर ढाँचा।

वस्तुपाठ या प्रकृतिपाठ में यदि सजीव पदार्थ के विषय में

पढ़ाना हो, तो उसे लाकर और सामने रखकर उसके विषय में बतलाना ठीक होगा। बिल्ली का पाठ पढ़ाने के लिये बिल्ली का चित्र दिखलाकर पढ़ाना आरम्भ करना ठीक है। यदि सजीव पदार्थ उपलब्ध नहीं हो सके तो उसका चित्र ही दिखलाना चाहिये। चित्र दिखलाकर कौतूहल उत्पन्न करना शिक्षण में बहुत उपयोगी है। चित्रों के विषय में विद्यालय के आवश्यक सामान के अन्तर्गत बहुत-सी बातों का वर्णन कर दिया गया है। किसी ऐतिहासिक बात को समझाने के लिये तत्कालीन वस्तु, मुद्रा, पात्र इत्यादि का प्रदर्शन कराया जा सकता है। व्याख्या करने या किसी बात को समझाने में आवश्यकता पड़ने पर किसी भावभंगी या मुद्रा का प्रयोग करना भी उपयोगी होता है। मानचित्र दिखला कर किसी स्थान, युद्ध आदि का स्पष्ट ज्ञान दिलाया जा सकता है। व्याख्या में मानचित्र बहुत भारी सहायक है। इसके अतिरिक्त कृष्णपट्ट पर ढाँचा खींचकर या पाठ देने के समय नक़शा या चित्र बनाकर, युद्ध का दृश्य तैयार कर कोई विषय स्पष्ट किया जा सकता है। छोटी-छोटी सत्य अथवा कल्पित कहानियों के द्वारा भी मनुष्यों को रहन-सहन का स्पष्टीकरण किया जा सकता है। जहाँ स्थूल चित्र या आदर्श न हों वहाँ शब्दों की सहायता लेनी पड़ती है। ऐसे अवसरों पर शिक्षक को अपने केन्द्रित विषय से कभी अलग न होना चाहिये। दृष्टान्तों की भाषा सरल और सुबोध होनी चाहिये। व्यक्तिगत अनुभवों को बहुत संयम के साथ पाठकों के सामने रखने का यत्न करना चाहिये।

चित्र

पढ़ाने के समय मानचित्र, रूपपत्र या छाया चित्र टाँगने की आवश्यकता पड़ती है। उनके लिये दीवारों पर खूँटी

मानचित्र

या कीलों को दीवारों पर ठोंक देना चाहिये। जिस समय जिस मानचित्र की आवश्यकता हो उस समय उसका ही प्रयोग करना उचित है। उपयोगी चित्र समूचे घण्टे भर लटकाये रक्खा जा सकता है, लेकिन लाभ के विचार से खूब विवेचना के साथ यह काम करना चाहिये। नमूना, मानचित्र आदि के नहीं रहने पर शिक्षक को इनको स्पष्ट करने के लिये कृष्णपट्ट की सहायता लेनी चाहिये। प्रारम्भिक, मध्य या उच्च विद्यालय में पाठ देते समय कृष्णपट्ट की उपयोगिता अपरिमित है। शिक्षक का सदा साथ देनेवाला यही एक साथी है। चित्रों को प्रदर्शित करने में इसका विचार अवश्य रखना चाहिये कि लड़के उनको समझते चलें। यदि चित्र को देखकर इसका तात्पर्य्य लड़के नहीं समझते हैं, तो वैसे चित्र दिखलाने से कुछ भी लाभ नहीं है। चित्र बड़ा, यथार्थ, उपयोगी, अभिव्यञ्जक और भावोत्पादक होना चाहिये। चित्र को दिखाकर लड़कों को अर्थ या भाव समझाने का यत्न करना चाहिये। जहाँ तक हो सके, कम चित्रों का प्रयोग अभि-वाञ्छनीय है। अपरिचित वस्तुओं के ज्ञान करानेवाले चित्र विशेष उपयोगी नहीं हैं। ऐसे चित्रों के दिखाने के पहले चित्र-सम्बन्धी बातों के बारे में पूर्ण रूप से वार्त्तालाप कर लेना चाहिये। बिना वार्त्तालाप किये अपरिचित पदार्थों के द्योतक चित्रों से कोई लाभ नहीं है। यदि चित्र बहुत छोटा हो तो घूम-घूमकर दिखा लाना चाहिये।

(ङ) विषयदर्शक शब्दों को कृष्णपट्ट पर अवश्य लिखना चाहिये।

(च) पाठ-सारांश या कृष्णपट्ट-सारांश इसपर अवश्य लिखना चाहिये।

(छ) पाठ देते समय कृष्णपट्ट का निरन्तर प्रयोग करते रहना चाहिये। अनावश्यक प्रयोग व्यर्थ हैं।

(ज) मानचित्र का ढाँचा और दृष्टान्त कृष्णपट्ट पर अवश्य दिखलाना चाहिये।

(झ) इतिहास पढ़ाने में काल-रेखा और वंशावलियों का उल्लेख अवश्य रहना चाहिये।

(ञ) साहित्य में शब्दार्थ, सरलार्थ, पदार्थ, वाक्यार्थ तथा भावार्थ; रेखागणित में रेखा; भूगोल में मानचित्र का ढाँचा इत्यादि कृष्णपट्ट के आवश्यक कार्य हैं।

(ट) शिक्षकों को इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि कृष्णपट्ट पर लिखने के समय खल्ली के "कें, कें" शब्द न हों।

(ठ) कृष्णपट्ट के प्रयोग में यह एक आवश्यक नियम होना चाहिये कि शिक्षक ज्यों ही श्रेणी में प्रवेश करे त्यों ही वह कृष्णपट्ट को साफ कर दे। पढ़ाई समाप्त होने के बाद भी इसे साफ तरह से पोंछ देना चाहिये। श्रेणी-नायकों पर सदा निर्भर रहना ठीक नहीं है।

(ड) कृष्णपट्ट कई प्रकार के होते हैं। रँगी हुई दीवार पर नकशा बनाना, चित्र खींचना आदि उपयोगी होते हैं। लटकने वाले कृष्णपट्ट पर भी सभी बातें लिखी जा सकती हैं, किन्तु इधर-उधर घुमाया जानेवाला कृष्णपट्ट बहुत लाभदायक है।

यह नीचे ऊपर खसकाया भी जा सकता है। यह शिक्षक के लिये बहुत उपयोगी है।

(ढ) कृष्णपट्ट पर जो कुछ लिखा जाय उससे लड़कों को लाभ उठाने का अभ्यास कराना चाहिये। शिक्षक कृष्णपट्ट पर लिख देते हैं, लेकिन इसपर ध्यान नहीं देते कि लड़के लिखते हैं या नहीं।

(ण) कृष्णपट्ट पर लिखते समय शिक्षक को बोलते रहना चाहिये। लिखने के समय लड़कों के सामने खड़ा होना ठीक नहीं है। अशिक्षित शिक्षकों की यह आदत असावधानी के कारण होती है। कुछ भी लिखने के समय कृष्णपट्ट के बीच से आरम्भ न कर, उसके शीर्षभाग से आरम्भ करना चाहिये। कृष्णपट्ट के नीचे एक तिपाई रहनी चाहिये जिसपर झाड़न और खल्ली बराबर रक्खी रहे। जिस शिक्षक ने शिक्षा देने के समय कृष्णपट्ट के महत्व को ठीक समझ लिया है, स्फूर्ति से कार्य करने की क्षमता प्राप्त कर ली है और जिसने कृष्णपट्ट को अपना सच्चा मित्र समझ लिया है, उसने अपने कार्य में बहुत-कुछ दक्षता और सफलता प्राप्त कर ली है।

कृष्णपट्ट पर किसी बात को लिखने तथा अंकित करने का यह तात्पर्य है कि उसे लड़के हृदयंगम कर लें। कृष्णपट्ट की बातों को समझने, स्मरण करने तथा आवश्यकता पड़ने पर प्रकाशित करने का अभ्यास दिलाना चाहिये। जो कुछ पढ़ाया जाय, बतलाया जाय और लिखाया जाय सबको लड़के ठीक से देखें और उसी तरह कार्य करने का अभ्यास करें। आधुनिक शिक्षा का यह एक प्रधान विषय है कि बालकों से

विशेष अभ्यास कराया जाय। किसी बात की निपुणता प्राप्त करने के लिये अभ्यास की अत्यन्त आवश्यकता है। जो कुछ लड़कों से लिखाया जाय उसपर उन्हें खूब ध्यान देना चाहिये। छात्रों की योग्यता और कुशलता भिन्न-भिन्न श्रेणियों की होती है, इसलिये उनकी उन्नति और कठिनाइयाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं।

अभ्यास और संशोधन

मनोविज्ञान के सिद्धान्त का यदि पालन किया जाय, तो यही ठीक माल्म होता है कि अभ्यास की जाँच अवश्य होनी चाहिये और उसकी देख-भाल अलग-अलग होनी चाहिये। श्रेणी में कार्य करने के समय लड़कों के अभ्यासों की जाँच आसानी से हो सकती है। लड़कों के हस्तलेख, चित्रांकन, पाटीगणित आदि की अशुद्धियाँ हर एक छात्र की उसकी अपनी जगह पर सुधारी जा सकती हैं। सामान्य अशुद्धियों को एकत्र कर श्रेणी के सामने बतलाना चाहिये। सामान्य अशुद्धियों को अलग-अलग बतलाने की अपेक्षा श्रेणी में सबके सामने बतलाना ही लाभदायक है। गणित की भद्दी क्रिया, व्याकरण की सामान्य भूल तथा हस्तलेख में टेढ़ी लकीरों की भूलें, लेखनी ठीक तरह से पकड़ना, सीधा होकर ठीक से बैठना आदि सब बालकों के सामने बतलाने से विशेष लाभ है।

अभ्यासों को देखने से सामान्य भूलों का पता चल जाता है। उन्हें एकत्र कर अपनी नोट-पुस्तक में अंकित कर देना चाहिये। इस प्रकार के संग्रह से आगे भी लाभ होता है और शिक्षक की योग्यता, कुशलता तथा प्रवीणता बढ़ती रहती है। इस संग्रह से शिक्षक की अपार भलाई है के छात्रों का सुधार

होता है। श्रेणी के छात्रों के सुधार के अतिरिक्त नये साल के कार्य-क्रम की योजना करने में आसानी भी होती है।

संशोधन में अत्यन्त सावधानता तथा चौकसी की आवश्यकता है। नये या अशिक्षित शिक्षक अशुद्धियों और भूलों को स्वयं लिख देते हैं। उन्हें यह देखना चाहिये कि अशुद्धियाँ लड़कों के मानस में दृढ़ हुई हैं या नहीं। अशुद्धियों को स्वयं काटकर शुद्ध बनाना संशोधन का बहुत बुरा ढंग है। जब लड़के अपनी अशुद्धियों को स्वयं ठीक कर सकते हैं, तब उन्हें स्वयं ठीक करने का साहस देना चाहिये। गणित, व्याकरण आदि की अशुद्धियों को केवल रेखांकित कर देना चाहिये जिसमें छात्रों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो जाय। इसके अतिरिक्त केवल उनका ध्यान ही आकर्षित करना नहीं चाहिये, वरन् उन अशुद्धियों को दूर करने का अभ्यास कराना चाहिये। अशुद्ध प्रयोगों को शुद्ध कर कई बार लिखने का अभ्यास कराना आवश्यक है। मध्य या उच्च अँगरेजी विद्यालयों में अशुद्धियों की ओर संकेत कर देने के कई विशेष संकेत बनाये गये हैं जिनका व्यवहार अभ्यास-संशोधन में उपयोगी समझा जाता है। जैसे—

(१) भाषा की अशुद्धि—भा०। (२) व्याकरण की अशुद्धि—व०। (३) लिखावट की अशुद्धि—लि०। (४) संदेह-जनक बातों के लिये—? (५) व्यर्थ बातों के लिये—! (६) भयंकर अशुद्धियों के लिये !! (आह)। (७) गणित के अशुद्ध उत्तर के लिये—उ०। (८) गणित क्रिया—X (९) वाक्य-योजना— + (१०) लेख की भूमिका या शैली अशुद्ध—अ०

अँगरेजी में ऐसे अनेक संकेत निकले हैं। शिक्षक अपनी युक्ति, सुविधा और अवकाश के अनुसार इनका प्रयोग कर सकता है। शिक्षक को आराम की घंटी में आराम न कर अभ्यास-संशोधन करना चाहिये। घर पर लिखने के लिये बहुत थोड़ा पाठ देना चाहिये। अधिक पाठ देने से अधिक लिखना पड़ता है और उसके संशोधन में अधिक समय लगता है। संशोधन में अधिक समय लगाने से पढ़ाने के लिये समुचित तैयारी का अवकाश नहीं मिलता। इसलिये शिक्षक को जहाँ तक सम्भव हो थोड़ा ही पाठ लिखने के लिये देना चाहिये। बहुत अधिक लिखने के लिये पाठ दे देना और अपने घर पर उसकी मीमांसा कर संशोधन करना तथा उसमें विशेष समय लगाना लड़कों के लिये विशेष उपयोगी नहीं होता।

अभ्यास या रचना देखने में शिक्षक को अत्यन्त सावधानी के साथ कार्य करना चाहिये। अपमानजनक, निराशाजनक या उत्साहनाशक नोट देने के पूर्व खूब विचार कर लेना चाहिये। लेख के उपरान्त कोई संकेत करना लाभदायक होता है, किन्तु विशेष रूप से लम्बा-चौड़ा नोट उपादेय नहीं है। रचना या निबन्ध के अन्त में अंक न देकर अ, ब, स अथवा उ, म, नि का प्रयोग करना अच्छा है। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट, निर्णय-पूर्ण संख्या १० में ६/१०, ४/१०, ३/१० से कहीं अच्छा है। परीक्षा में भी इसका यथासाध्य उपयोग किया जा सकता है।

अभ्यासपुस्तक

लिखने के लिये अभ्यास पुस्तकें श्रेणी भर में एक ही आकार और प्रकार की होनी चाहिये। एक चौथाई उपान्त

(हाशिया) छोड़कर ऊपर-नीचे तथा दाईं ओर कुछ-कुछ जगह छोड़कर लिखना चाहिये। भिन्न-भिन्न विषयों के लिये भिन्न-भिन्न पुस्तकें उपयुक्त हैं। श्रेणियों में 'रफ' कॉपी की परिपाटी बहुत बुरी है। जिस विषय का पाठ हो उस विषय की एक लेख-पुस्तक रहनी चाहिये और पढ़ाई के समय तत्सम्बन्धी लेख छात्रों को लेख-पुस्तक में लिखते जाना चाहिये। श्रेणी या घर पर स्याही कलम से लिखने पर जोर देना चाहिये। यदि पेंसिल अच्छी और पक्की हो तो श्रेणी में इसका प्रयोग किया जा सकता है। आवृत्ति या पाठ की दक्षता के लिये शुद्ध-शुद्ध लिखने का अभ्यास कराने के लिये घर का हस्तलेख आवश्यक है; किन्तु इसमें शिक्षक के अधिक समय व्यतीत करना ठीक नहीं है।

लड़कों को सरसरी तौर से अभ्यासपुस्तक या कागज के टुकड़े पर लिखने की कदापि आज्ञा न देनी चाहिये; किन्तु जो कुछ लिखें वह एक ही बार अत्यन्त स्वच्छता और सावधानी से लिखें। शिक्षक को इसका बराबर ध्यान रखना चाहिये कि यदि आरम्भ में ही स्वच्छता का अभ्यास डाला जाय, तो आगे भी स्वच्छता पर ध्यान रहेगा। पढ़ाने के समय ऐसा देखा जाता है कि जो बातें पुस्तक में नहीं हैं और शिक्षक उन्हें बताना चाहता है, तो उन्हें उचित है कि उन बातों को लड़कों की नोट-पुस्तक में लिखा दें; परन्तु यह करना तभी उचित है जब उन बातों को लड़के समझ गये हों। प्रत्येक दशा में लिखाई हुई बातों को शिक्षक स्वयं देखे। अशुद्ध प्रयोगों को बिना शुद्ध किये छोड़ देना लड़कों में बुरा अभ्यास डालना है।

पाठ और पाठटीका

हर एक विषय के कई भाग होते हैं। एक भाग को सम्यक् रीति से पढ़ाने के लिये शिक्षक को योजना करनी पड़ती है।

पाठ

जो भाग किसी निश्चित समय पर पढ़ाया जाता है उसको पाठ कहते हैं। प्रत्येक पाठ यद्यपि अलग-अलग रहता है, तथापि वह पूर्व्व के पाठों से सम्बन्ध रखता है और आगे के पाठ की ओर झुकता है। प्रत्येक पाठ का एक मुख्य स्वरूप होता है। प्रत्येक भाग के क्रम-सम्बन्ध और उन्नति का सिलसिला रहता है। हरएक विषय को पढ़ाने की भिन्न-भिन्न सामग्रियाँ और रीतियाँ होती हैं। भिन्न-भिन्न पाठों को भिन्न-भिन्न रीतियों के द्वारा पढ़ाने से लड़कों को पाठ का मुख्य तत्त्व हृदयंगम हो जाता है। इसलिये बालकों के मानसिक विकास के लिये पाठ की तैयारी और योजना अत्यन्त उपयोगी हैं। पाठ के मुख्य तीन भेद हैं:—

(क) आदर्श पाठ।
(ख) अभ्यास-पाठ।
(ग) समालोचना पाठ।

शिक्षण-विद्यालयों में इन्हीं तीन प्रकार के पाठों का प्रयोग किया जाता है, जिससे शिक्षकों को पढ़ाने में दक्षता प्राप्त होती है। शिक्षण-विद्यालय के अध्यापक आदर्श पाठ पढ़ाते हैं। नये शिक्षकों के लिये वह उत्तेजना प्रदान करता है और शिक्षा का मार्ग बतलाता है। नये शिक्षक जब दक्षता और प्रवीणता प्राप्त करने के लिये पढ़ाने का अभ्यास करते हैं और उन पाठों को

पाठ की संक्षिप्त टीका लिखनी पड़ती है। इस टीका और पाठ्य-विवरण पर वाह्य दृष्टि से अवलोकन करने पर पाठ के उद्देश्य, शिक्षक का अभिप्राय और पढ़ाने का लक्ष्य स्पष्ट रूप से झलक जाता है। इसी विवरण—क्रमबद्ध लेख-ढाँचे को "पाठ-टीका" कहते हैं।

इस पाठटीका को एकरूपता प्रदान करने के लिये अनेक यत्न हुए, किन्तु यह असम्भव है। विविध विषयों की पाठटीकाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। विशेष विषयों की पाठटीका विशेष रूप की होती है। मोटी और भद्दी पाठटीकाएँ लिखना ठीक नहीं है। पाठटीका का उद्देश्य शिक्षा को अस्वभाविक बनाना नहीं होना चाहिये। पाठटीका पढ़ाने का उद्देश्य बतलाती है। इससे पाठ का कार्य आरम्भ होता है। यह पाठ का लक्ष्य नहीं है। वृहत्काय पाठ-टीका लिखकर पढ़ाने में असावधानी और शिथिलता प्रदर्शित करना पाठ के उद्देश्य को बिगाड़ देना है। यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक पाठ-टीका में पाँच अवयव—प्रस्तुतीकरण, प्रदान, सम्मेलन, साधारणीकरण तथा प्रयोग, सदा वर्तमान रहें।

लाइपज़ीक विश्व-विद्यालय के प्रख्यात अध्यापक ज़ीलर ने पाठ के इन पाँच अवयवों को विशेष रूप से महत्व प्रदान किया है। इन्होंने मनोविज्ञान के आचार्य हरबार्ट साहब द्वारा आविष्कृत मानसिक विकास के आधार ज्ञान और अनुराग की नींव पर ही पाँच कमरे वाले गढ़ निर्मित किये। ये शिक्षा-प्रदान के पाँच सोपान हरबार्ट साहब के नाम से प्रसिद्ध हैं, क्योंकि उन्होंने इनका

उद्देश्य है। इसके ऊपर चरित्र-निर्माण तथा व्यवहार-पद्धति स्थिर है। पढ़ाने में इसका अवश्य प्रयोग करना चाहिये। शिक्षित संसार ने इसका ऐसा अनुसरण किया है कि जहाँ देखिये वहीं इसका राज्य फैला हुआ है।

किसी श्रेणी का पाठ हो, पाठ-टीका की अवश्य जरूरत पड़ती है। इनमें उपर्युक्त पाँच सोपानों की आवश्यकता होती है। प्रस्तुतीकरण में पढ़ाने के पहले पूर्वज्ञान की जाँच के लिये प्रश्न किये जाते हैं। प्रश्न पूछकर लड़कों की योग्यता का पता लगाया जाता है। यदि प्रश्नों की आवश्यकता नहीं है तो चित्रों को दिखलाकर नई बात बतलाने के लिये लड़कों का मानस तैयार किया जाता है। लड़कों की अभिरुचि उत्पन्न करना, नूतन विषय समझने की योग्यता का पता लगाकर उनमें प्रवृत्त करने के लिये अवधान लगाना, चित्र दिखलाकर प्रश्न पूछना, आवृत्ति के प्रश्न पूछकर नये विषय की ओर संकेत करना, **प्रस्तुतीकरण** का मुख्य उद्देश्य है।

इसके पश्चात् **उद्देश्य-प्रकाश** और नये-नये विषयों को थोड़ा-थोड़ा वतलाना चाहिये। लड़कों के अवधान के लिये वीच-वीच में नये उपायों का अवलम्बन करते रहना चाहिये। विषय का प्रत्येक अंश वालकों को समझाना होगा। इसका पूरा वर्णन शिक्षक को अपनी पाठ-टीका में अंकित करना चाहिये, किन्तु पाठ-टीका को अक्षर-अक्षर पढ़ाना आवश्यक नहीं है। पढ़ाई के वीच-वीच में भी शिक्षक अपना क्रम वदल सकता है। इसीको **प्रदान** कहते हैं।

शिक्षा देते समय पूर्व ज्ञान का नये ज्ञान के साथ समन्वय

इसलिये इनका समुचित प्रयोग करते हुए पाठटीका लिखना आरम्भ करना चाहिये।

पाठटीका शीर्षक

(१) पाठ की जाति का उल्लेख रहना चाहिये; अभ्यास पाठ, समालोचना-पाठ या आदर्श-पाठ।

(२) पाठ का विषय; गणित, साहित्य इत्यादि।

(३) पाठ का शीर्षक। वृहदाकार अक्षरों में शीर्षक का निर्देश रहना चाहिये कि जिसे देखते ही दूसरों को विषय का पूरा ज्ञान हो जाय।

(४) श्रेणी का स्पष्ट रूप से उल्लेख रहना चाहिये कि देखने-वाला श्रेणी और विषय की उपयोगिता का मिलान कर सके।

(५) श्रेणी के नीचे उस कक्षा के लड़कों की औसत आयु का उल्लेख रहना चाहिये। विषय का तारतम्य देखने के लिये वार्षिक आयु का उल्लेख रहना उपयोगी है।

(६) समय की अवधि का उल्लेख भी रहना चाहिये। छात्रों की वार्षिक आयु और विषय की गंभीरता के विचार से ही समय निर्धारित करना चाहिये। उच्च कक्षाओं के लिये ४० मिनट, मध्य कक्षाओं के लिये ३० मिनट और बच्चों के लिये २५ मिनट पर्याप्त हैं।

(७) विद्यालय का उल्लेख रहना चाहिये।

(८) तिथि (तारीख) लिखी रहनी चाहिये। इससे पाठतालिका, पाठटीका और कार्यक्रम का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट रहता है।

(९) उद्देश्य का उल्लेख स्पष्ट रूप से लिखा रहना चाहिये। पाठटीका के विशेषज्ञों का कथन है कि पाठटीका के उद्देश्य में

पाठ का उल्लेख रहना आवश्यक है, क्योंकि इसका उल्लेख तो पाठ के सामने रहता ही है। इसमें साधारण तथा विशेष उद्देश्यों का ही उल्लेख रहना चाहिये; जैसे, तार्किक शक्ति का विकास, मानसिक शक्ति की उन्नति, कल्पना-शक्ति की उत्तेजना, साहित्य-सौन्दर्य की अनुभूति के लिये अनुराग जाग्रत करना इत्यादि उद्देश्य के रूप हैं।

उद्देश्य के उदाहरण

(क) पढ़ना—साधारण उद्देश्य—ध्वनियों और शब्दों को पढ़कर अर्थ समझने की शक्ति उत्पन्न करना। विशेष उद्देश्य—शुद्ध-शुद्ध स्पष्ट रीति से भाव के साथ पढ़ने का अभ्यास करना। उच्चारण के दोषों को दूर कराकर स्पष्ट रीति से पढ़ने का अभ्यास डालना।

उद्देश्य

(२) लिखना—साधारण—पाठ्य, सुन्दर, स्पष्ट लिखावट के लिये हस्तलेख का अभ्यास करना।

विशेष—ठीक-ठीक खड़ी रेखाओं को शुद्ध-शुद्ध लिखने का अभ्यास डालना। स्वरों के चिह्नों और अक्षरों को ठीक स्थान से लिखने का अभ्यास डालना।

(३) गणित पढ़ाने का साधारण उद्देश्य—तर्क-शक्ति का विकास, निर्दिष्टता का भाव विकसित करना, वैज्ञानिक क्रमबद्धता का विकास आदि होना चाहिये।

विशेष उद्देश्य—किसी विशेष गणना के नियम को सिखलाना है।

(४) भूगोल पाठ का साधारण उद्देश्य—लड़कों के पर्यवेक्षण

तथा कल्पना का विकास, कार्यकारण सम्बन्ध का पता लगाना, देश, समाज और जाति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना।

विशेष उद्देश्य —किसी भौगोलिक तत्व का मनुष्यों पर प्रभाव और लाभ बतलाना।

(५) इतिहास पाठ में साधारण उद्देश्य—तुलना, तर्क और न्याय के द्वारा चरित्र निर्माण।

विशेष उद्देश्य—सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विकास; देशप्रेम, व्यक्तित्व की मर्यादा किसी विशेष काल या देश के आचार-व्यवहार आदि की शिक्षा।

(६) व्याकरण—मननशक्ति का विकास एवं गूढ़ चिन्तन का अभ्यास साधारण उद्देश्य के अन्तर्गत है। किसी विशेष शब्द का विशेष प्रकार का प्रयोग बतलाना विशेष उद्देश्य है।

(७) प्रकृतपाठ—साधारण उद्देश्य इन्द्रियों का साधन, अवधान, पर्यवेक्षण, तुलना, प्राकृतिक वस्तुओं के प्रति अनुराग उत्पन्न करना है। विशेष उद्देश्य किसी विशेप पौधे, फल का ज्ञान देना है।

(८) कृष्णपट्ट, झाड़न और खल्ली को छोड़कर पढ़ाई की अन्य सामग्रियों का अवश्य उल्लेख करना चाहिये। पाठटीका में इनका निर्देश आवश्यक है। स्वहस्त-निर्मित उपादानों का पाठ-टीका में बड़ा महत्व है। उनसे पाठटीका की महत्ता बढ़ जाती है।

(९) इनके बाद विषय और शिक्षा-विधि का उल्लेख रहना चाहिये। शिष्य-शिक्षकों के लिये विपय और विधि के स्तम्भों का स्पष्ट ज्ञान रहना चाहिये। विपयों का उल्लेख लेख

बातें प्रसंगानुसार विषय या विधि स्तम्भ में अंकित रहनी चाहिये। विधि और विषय-खण्डों में खण्ड पाठों का विवरण अवश्य रहना चाहिये। खण्ड पढ़ाने की विधि और खण्डावृत्ति के प्रश्न विधि-खण्ड में रहने चाहिये। इतिहास में खण्ड-खण्ड पढ़ाना उपयोगी ही नहीं, आवश्यक भी है। इन खण्डों का उल्लेख विधि और विषय-खण्ड में अवश्य रहना चाहिये। खण्ड पढ़ाने की विधि की बाईं ओर विषय स्तम्भ में पढ़ाने-वाला विषय संक्षेप में अंकित रहना चाहिये। खण्डावृत्ति के प्रश्नोत्तर कृष्णपट्ट और विषय-स्तम्भ में अंकित रहने चाहिये। इनके अतिरिक्त इतिहास पढ़ाने में कालरेखा, राज्य तथा राजा की वंशावलियाँ, राज्य का विकास, युद्ध-दृश्य, सेना-संख्या, मानचित्र, रूपचित्र इत्यादि बातों का स्पष्ट वर्णन कृष्णपट्ट पर लिखना चाहिये। इतिहास में कृष्णपट्ट-सारांश अत्यन्त उपयोगी है।

उदाहरण के लिये कुछ आदर्श पाठटीकाएँ दी जाती हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि यहाँ जो कुछ टीकाएँ लिखी गई हैं, ठीक वैसी ही पाठटीकाएँ लिखी जानी चाहिये। ये केवल संकेत मात्र हैं। इसी ही क्रम से लिखने का यत्न करना चाहिये। कोई-कोई चार स्तम्भों में पाठ-टीका लिखते हैं और कोई-कोई विषय और विधि ही में टीका समाप्त कर देते हैं। चार स्तम्भों में पाठटीका लिखने की प्रणाली सरल और शिक्षण-विद्यालय के विद्यार्थियों के लिये सुगम तथा सुसाध्य भी है। इसी का विशेष अभ्यास करना चाहिये। यहाँ तीन पाठ-टीकाएँ दी जाती हैं जिनसे इनकी प्रणाली का संक्षिप्त ज्ञान हो जाय।

सोपान	विषय	विधि	कृष्णपट्ट-सारांश
प्रदान (क)	उद्देश्य प्रकाश	आज यही "श्रीराम-विलाप" पढ़ेंगे।	श्रीराम-विलाप
(ख)	शिक्षक का पढ़ना और लड़कों को चुपचाप पढ़ने का आदेश करना।	शिक्षक सम्पूर्ण पाठ को स्पष्ट रीति से एक बार पढ़ जायँगे और लड़कों को चुपचाप पढ़ने का आदेश करेंगे। मौन-पाठ के बाद निम्न-लिखित प्रश्नों को पूछ कर पाठ का सारांश निकलवायेंगे।	
(ग)	(१) कोमल स्वभाव (२) राम के लिये माता-पिता का त्याग। (३) जंगल में घोर दुःख सहना।	(१) लक्ष्मण को मूर्च्छित देखकर रामचन्द्र किन-किन बातों का स्मरण कर रहे हैं? सम्पूर्ण पाठ को शिक्षक दो खण्डों में विभक्त कर देंगे।	(१) कोमल स्वभाव। (२) राम के लिये माता-पिता का त्याग। (३) जंगल में घोर दुःख सहना।
प्रदान	प्रथम खण्ड। सकहु·····विकलाई निम्नलिखित शब्दों के अर्थ बतलाकर	प्रथम खण्ड इस खण्ड को किसी एक बालक से शिक्षक पढ़वायेंगे और पढ़ने	

सोपान	विषय	विधि	कृष्णपट्ट-सारांश
	वाक्यों में प्रयोग कराया जायगा :— काळ, मृदुल, विपिन वाता । कठोर आदि विलोम शब्दों को बताना ।	की अशुद्धियों को शुद्ध करायेंगे । शब्दार्थ, भावार्थ और व्याख्या कराते जायँगे अनुराग, बात, आतप, मृदुल के विलोम शब्द पूछे जायँगे और लड़कों के नहीं बतलाने पर शिक्षक स्वयं बतलाकर कृष्णपट्ट पर लिख देंगे ।	काळ = कभी । मृदुल=कोमल । विपिन=जंगल । वाता = वायु ।
(३) सम्मेलन	खण्डावृत्ति के प्रश्न-द्वारा । रामजी के लिये अनेक कष्ट सहे । सर्दी, गर्मी और अनेक कष्ट सहे ।	पढ़े हुए अंश का भाव लड़के समझ गये हैं कि नहीं, इसकी जाँच के लिये खण्डावृत्ति के प्रश्न पूछेंगे । (१) लक्ष्मण ने इतने कष्ट क्यों सहे ? (२) उन्होंने किन-किन कष्टों को सहा ?	रामजी के लिये अनेक कष्ट सहे । सर्दी गर्मी और अनेक कष्ट सहे ।
प्रदान ।	द्वितीय खण्ड । जो जनितेउ ....मोही । भावार्थ, शब्दार्थ बिछोह = वियोग ।	उपर्युक्त रीति के अनुसार इस खण्ड को पढ़ाकर और भावार्थ निकलवाकर शब्दार्थ	बिछोह=वियोग खगपति=गरुड़ खग = पक्षी ख = अवकाश

सोपान	विषय	विविध	कृष्णपट्ट-सारांश
	खगपति = गरुड़ । खग = पक्षी । दीना = दीन । बिछोह = वियोग ।	और वाक्यार्थ पर ध्यान देंगे । बिछोह का विलोम शब्द संयोग तथा खग की व्याख्या करेंगे । तत्पश्चात् खण्डावृत्ति के प्रश्न पूछकर खण्ड समाप्त करेंगे ।	ग = गमन करनेवाला दीना = दीन, दुःखी
सम्मेलन	"लक्ष्मण की मूर्च्छा उन्हें पिता के वचन को न मानने की याद दिला रही है ।" "राम के असह्य दुःख को देखकर द्रवित नहीं होता ।" भाई के बिना निराश्रय हो गये थे ।	(१) श्रीरामजी पिता के उस वचन को न मानने की बात क्यों कह रहे हैं ? (२) उन्होंने दैव को क्यों जड़ कहा ? (३) मणिहीन साँप और पक्षहीन गरुड़ के समान राम क्यों हो गये ?	लक्ष्मण की ऐसी दशा न होती । इस दुःख को देखकर वह द्रवित नहीं होता । भाई के बिना श्रीरामजी मणि-हीन सर्प और पक्षहीन गरुड़ के समान निरा-श्रय और असक्त हो गये थे ।
साधारणी-करण	पूर्णावृत्ति ।	पूर्णावृत्ति के प्रश्न पूछ-कर बिखरे हुए ज्ञान को	

भूगोल का अभ्यास पाठ २

विषय—राजकीय विभाग। पाठ—अरब की स्थिति और रचना संगठन। श्रेणी—सातवीं। औसत उम्र—१३ वर्ष। समय—४० मिनट। स्थान—राँची जिला-स्कूल। तिथि—१०-३-१६३५	उद्देश्य—अरब की भौगोलिक रचना का वर्णन करते हुए लड़कों के पर्य्यवेक्षण और विचार-शक्ति को विकसित करना। उपादान—एशिया का रिलीफ मैप, स्वनिर्मित मानचित्र, मैपोग्राफ।

विषय	विधि और व्याख्यान
भूमिका मुहम्मद साहब का जन्म अरब के मक्के में हुआ था।	मुहम्मद साहब का जन्म कहाँ हुआ था ?
प्रदान (उद्देश्य-प्रकाश) अरब की रचना और भौगोलिक स्थिति।	आज हमलोग अरब की रचना और भौगोलिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
प्रदान स्थिति—एशिया का दक्षिण पश्चिम अन्तरीप। कर्कट रेखा इसको दो भागों में खण्डित करती है।	मानचित्र की सहायता से एशिया के दक्षिण में स्थित तीन प्रायद्वीपों का स्मरण दिलाते हुए बाईं ओर की बातों का निकलवाना।

कृष्णपट्ट-सारांश	
(क) सीमा— उत्तर—एशिया माइनर। पूरब—फारस और फारस की खाड़ी। दक्षिण—अरब समुद्र। अरब की खाड़ी। पश्चिम—लाल समुद्र।	**(ख) प्राकृतिक रचना—** विस्तृत अधित्यका पूर्व की ओर ढली हुई है। पूर्व और पश्चिम किनारों पर संकीर्ण और मरुस्थल भूमि। पश्चिम कोने पर समानान्तर पहाड़ियाँ स्थित हैं।

(ग) आबहवा—

बहुत उष्ण और वर्षा का अभाव। दक्षिण-पूर्व में थोड़ी वर्षा होती है।

इतिहास का अभ्यास पाठ ५

विषय	पाठ	श्रेणी	औसत	समय	स्थान	तिथि	उद्देश्य	उपकरण
इतिहास	अलाउद्दीन का राज्यारोहण	चौथी	उम्र दस वर्ष	३० मिनट	राँची जिला-स्कूल	११—३—१९३५	अलाउद्दीन के पाठ से लड़कों में वीरता का भाव जागृत करना।	भारत का ऐतिहासिक मानचित्र, अलाउद्दीन का रूप चित्र, कालरेखा, इत्यादि।

विषय	विधि	कृष्णपट्ट-सारांश
भूमिका के प्रश्न—जलालुद्दीन का समय।	पूर्व ज्ञान की जाँच के लिये निम्नलिखित प्रश्न पूछेंगे। जलालुद्दीन ने दिल्ली पर कब तक राज किया ?	
उद्देश्य प्रकाश-अलाउद्दीन का राज्यारोहण।	उचित उत्तर पाने पर शिक्षक उद्देश्य प्रकाश करेंगे। आज हमलोग उसीके भतीजे अल्लाउद्दीन की राजगद्दी पर बैठने का वृत्तान्त पढ़ेंगे।	अलाउद्दीन का राज्यारोहण।
प्रदान— अलाउद्दीन, जलालुद्दीन का भतीजा और दामाद था। वह कड़ा और अवध का नवाब था। उसने अपने चचा की आज्ञा के बिना ही देवगिरी को जीत लिया। गंगा नदी के किनारे	शिक्षक कहानी कहने के ढंग से सम्पूर्ण वृत्तान्त को धीरे-धीरे कह जायँगे और बीच-बीच में बुद्धि-वर्द्धक प्रश्न पूछते जायँगे। पढ़ाने के समय बुद्धि-वर्द्धक प्रश्न पूछेंगे। जैसे—अपने चचा को उसने घातकों से क्यों मरवाया ? नवाबों में किसी को हराकर क्यों	

विषय	विधि	कृष्णपट्ट-सारांश
अपने चचा से मिलने के समय गुप्त घातकों के द्वारा वध करवा स्वयं १२६५ ई० में दिल्ली का बादशाह बन बैठा। नवाबों को धन देकर, पदवियाँ प्रदान कर और लड़कर सबको अपने अधीन कर लिया। पूर्णावृत्ति के प्रश्न	शमन किया ? गंगा नदी, देवगिरी, कड़ा, अवध को नकशे में दिखलाते हुए और पाठ पढ़ाते हुए काल-रेखा के द्वारा सन् १२६५ ई० का ज्ञान देंगे। नकशे में अवध, कड़ा तथा देवगिरी का स्पष्ट ज्ञान देना। पूर्णावृत्ति के निम्न-लिखित प्रश्न पूछने के समय कृष्णपट्ट को उलट देंगे अथवा लिखी हुई बातों को मिटाकर फिर से कृष्णपट्ट-सारांश लिखते जायँगे। शिक्षक लड़के की सहायता से कृष्णपट्ट पर लिखेंगे और लड़के से नोटबुक में सब लिखते जाने का आदेश करेंगे। (१) अलाउद्दीन ने दिल्ली की गद्दी कैसे प्राप्त की ? (२) बादशाह होकर नवाबों का कैसे शमन किया ?	सारांश अलाउद्दीन, जलालुद्दीन का भतीजा और दामाद था। उसने अपने चचा की अनुमति के बिना ही देवगिरी को जीत लिया। इस प्रकार अवध और कड़ा के नवाब होने की हैसियत से उसने पूरी वीरता दिखलाई। देवगिरी

पाठटीका के सम्बन्ध में कई बातें विचारणीय हैं। पाठ-टीका तर्क-शास्त्रानुकूल होनी चाहिये। यह चार स्तम्भों में लिखी जाय, परन्तु लड़कों के लिये उपयोगी होनी चाहिये। पाठटीका का गुलाम बनना शिक्षक के लिये भारी दोष है। पाठटीका देखकर पढ़ाना शिक्षक की शिथिलता, मन्दबुद्धि एवं असावधानता का द्योतक है। शिक्षक को जब पाँच-पाँच विषयों पर पाठटीका लिखनी हो तो उन्हें संक्षेप में लिखने का अभ्यास करना चाहिये। यह पाठटीका ऐसी होनी चाहिये कि वह शिक्षा-कार्य में बराबर सहायता पहुँचावे।

पाठटीका लिखने के पूर्व पाठ-तालिका तैयार कर लेनी चाहिये। पाठ स्कीम के अनुसार पाठटीकाएँ भिन्न-भिन्न विषयों की भिन्न-भिन्न पुस्तकों में या भिन्न-भिन्न सिलसिले में लिखी जानी चाहिये। यदि शिक्षक के पास भिन्न-भिन्न पाठ-टीका की पुस्तकें खरीदने के पैसे हों तो इनके लिये भिन्न-भिन्न पुस्तिकाएँ रहनी चाहिये। यदि यह सम्भव नहीं हो तो एक बड़े पोथे में भिन्न-भिन्न विषयों के लिये भिन्न-भिन्न क्रम से कुछ पृष्ठ निर्वाचित कर देने चाहिये। प्रत्येक विषय की पाठटीका लिखने के पूर्व यह स्कीम लिख देनी चाहिये। अभ्यास-पाठ हो या प्रतिदिन की पढ़ाई हो, यह स्कीम अवश्य रहनी चाहिये। बिना पाठस्कीम के पाठटीका लिखना अनुपयुक्त है।

पाठटीका लिखने पर भी स्वतंत्र रूप से पढ़ाना चाहिये। साफ-साफ बोलकर स्पष्ट रूप से व्याख्या कर अपने पाठ को रोचक बनाने का यत्न करना चाहिये। यदि पाठटीका अच्छी

रीति से लिखी गई है, पाठटीका लिखने में विचार और तर्क से काम लिया गया है तो पढ़ाना भी अच्छा ही होगा। किन्तु पाठटीका लिख लेने ही से पढ़ाई अच्छी होगी यह आवश्यक नहीं है। यद्यपि पाठटीका भी शिक्षक की योग्यता जाँचने की एक कसौटी है, तथापि शिक्षक के गुणों की पूरी जाँच विद्यार्थियों के सामने पढ़ाने के समय ही होती है। इसलिये पाठटीका लिखने के अभ्यास के साथ-साथ तर्कानुकूल शिक्षा प्रदान का भी अभ्यास करना चाहिये।

समालोचना-पाठ

पढ़ाने का अभ्यास अनुभव से पक्का होता है। यह वह कला है जो निरन्तर लीन रहने से पक्की और खरी उतरती है। अभ्यासपाठ के साथ-साथ समालोचनापाठ भी होना चाहिये। शिक्षकों के गुण-दोषों का उद्घाटन करना उनके अवगुणों की ओर ध्यान दिलाना अत्यन्त आवश्यक है। समालोचनापाठ से शिक्षक तपाये हुए सोने के समान खरा होता है। पढ़ाने में कुशलता, दक्षता और निर्भीकता आती है। शासन-सुधार और शिक्षा-प्रदान करने में वह सफल होने लगता है। इसलिये शिष्य-शिक्षकों के लिये समालोचना-पाठ अत्यन्त महत्व का है। समालोचना-पाठ में पाठ-प्रदाता को ही लाभ नहीं होता, वरन् समालोचकों को भी फायदा पहुँचता है। इसलिये समालोचना-पाठ में केवल दोषोद्घाटन ही नहीं होना चाहिये, वरन् पाठ कैसे उन्नत किया जा सकता है उसका भी विवेचन होना चाहिये।

समालोचना में समालोचकों को दोष-गुणोद्घाटन के समय अपने विचार के कारण भी बतलाने चाहिये। कारण से कार्य की उपयोगिता पर पहुँचने का यत्न करना बहुत उपयोगी है। समालोचना-पाठ में यह आवश्यक है कि पाठटीका की एक प्रति कम-से-कम एक दिन पहले समालोचकों को दे देनी चाहिये जिससे वे पाठ के विषय में पूर्ण रूप से विचार कर पाठ-देखने और समालोचना करने को तैयार हों।

समालोचना करने में तीन बातों पर ध्यान देना चाहिये।

(क) शिक्षा-रीति।

(ख) रीति की क्रियाओं का प्रयोग।

(ग) शिक्षक और श्रेणी।

रीति के विषय में यह देखना चाहिये कि दृष्टान्तों का पूर्ण रूप से प्रयोग हुआ है वा नहीं। विदित से अविदित की ओर चलने का सिद्धान्त काम में लाया गया है वा नहीं। यह भी देखना चाहिये कि लड़कों की रुचि पाठ की ओर लगकर नई-नई बातों को स्वयं पता लगाने की भावना जागृत हुई है वा नहीं। किसी विषय को स्पष्ट करने के लिये शिक्षक ने जिस उपाय का अवलम्बन किया है वह तत्व को स्पष्ट करने के लिये उपयुक्त हुआ है वा नहीं। समालोचकों को यह भी देखना चाहिये कि उद्देश्य प्रकाशन, भूमिका एवं विविध खंडों का पारस्परिक तारतम्य कहाँ तक क्रमबद्ध रूप से सजाया गया है।

क्रिया-विधि के सम्बन्ध में यह देखना चाहिये कि शिक्षक और छात्रों के बीच परस्पर भाव विनिमय और विचार-सञ्चालन

स्वभाविक, व्याकरण-शुद्ध और लड़कों की योग्यता के अनुकूल होनी चाहिये। समालोचना के सम्बन्ध में यह भी देखना चाहिये कि शिक्षक ने पूर्वगत समालोचनाओं में दिखलाये हुए दोषों को दूर किया है वा नहीं। छात्रों के सम्बन्ध में यह देखना चाहिये कि वे प्रत्यक्ष रूप से पाठ में अनुरक्त, इच्छापूर्वक सावधान, सहयोग और सहकारिता के लिये उत्सुक, अपनी पूरी योग्यता के लिये उत्तेजित और शान्त हैं वा नहीं। बालकों को पाठ से कुछ लाभ हुआ है वा नहीं। समालोचना-पाठ के अन्त में साधारण विचार प्रकट करना चाहिये कि पढ़ाने में शिक्षक को सफलता प्राप्त हुई है वा नहीं। यदि सफलता हुई है तो क्यों और कैसे और असफलता हुई है तो क्यों और किन दोषों के कारण?

समालोचना-पाठ में एक अनुभवी शिक्षक तथा प्रधान शिक्षक को रहना चाहिये। शिक्षक का निर्णय ही अन्तिम न्याय होना चाहिये। पाठ-प्रदान के समय समालोचकों को समालोचना-पुस्तिका में तीन खण्ड दाहिनी ओर रहने चाहिये और बाईं ओर चार खण्डों में विभक्त रहना चाहिये। समालोचना-पुस्तिका का रूप निम्नलिखित प्रकार होना चाहिये।

शिक्षक का नाम और योग्यता

घनश्याम प्रसाद आइ० ए०

साधारण समालोचना

(१) पाठटीका—

(क) शीर्षक।

(ख) विषय।

(ग) विधि और व्याख्यान।

(घ) कृष्णपट्ट सारांश।

(२) पाठ-प्रदान—

(क) चित्रों और मानचित्रों का प्रयोग।

(ख) प्रश्न के गुण और दोष।

(ग) पाठटीका के अनुकूल पाठ।

(३) शिक्षक—

(क) व्यवहार।

(ख) सहयोग, सहाय-प्रदान।

(ग) भाषा और स्थिति।

(४) शासन—

(क) छात्रों का अनुराग।

(ख) उत्तेजना।

(ग) मनोयोग।

(घ) मानसिक विकास।

(ङ) शान्ति।

(च) पाठ से छात्रों को लाभ।

विषय इतिहास

समालोचना करने के अनेक ढंग हैं, किन्तु संक्षिप्त रीति यही है। शिक्षण-शक्ति के विकास के निमित्त कोई भी साधन उतना उपयुक्त नहीं है जितना कि शिक्षण का वास्तविक अभ्यास। अभ्यास में उन्नति प्राप्त करने लिये समालोचना की आवश्यकता है। जिस पाठ में सभी सहयोगी शिक्षक मिलकर पाठ के गुण दोषों की मीमांसा करते हैं और शिक्षक उसपर विचार कर अन्तिम न्याय कर देते हैं और समालोचना के दोषों का विवरण सभी शिष्य-शिक्षक अपने पास रख लेते हैं तो उसी पाठ का नाम समालोचना-पाठ है। अभ्यास-पाठ की पुस्तिका के अतिरिक्त समालोचना-पुस्तिका भी रहनी चाहिये और दोनों पृष्ठों में लिखना चाहिये। इस प्रकार समालोचना-पाठ से शिष्य-शिक्षकों को बड़ा लाभ होता है।

---

(१) श्रेणी में शिक्षक को लड़कों के पहले ही पहुँचकर उन्हें स्वागत करना चाहिये। शिक्षक के श्रेणी में पहले पहुँचने से किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होता और लड़के शान्तिपूर्वक कार्य आरम्भ करते हैं। शिक्षक के इस आचरण से कालानुवर्तिता की शिक्षा मिलती है और शिक्षक देर से आये हुए वालक को डाँट-डपट सकता है और उसको दण्ड भी दे सकता है।

(२) शिक्षक को पढ़ाई आरम्भ करने के पूर्व यह देख लेना चाहिये कि शिक्षा के सभी आवश्यक उपादान उपस्थित हैं। जैसे—कृष्णपट्ट साफ है, खल्ली और झाड़न टूल पर रक्खी हुई है, निर्देशक अपनी जगह पर टँगा हुआ है, मानचित्र और चित्र सब यथा स्थान पर रक्खे गये हैं।

(३) शिक्षक को श्रेणी में लड़कों को ठीक तरह से वैठाना चाहिये। साधारणतः सब लड़कों के स्थान श्रेणी में नियत रहना चाहिये। यदि समालोचना-पाठ में या अन्य किसी आदर्शपाठ के समय लड़के दूसरे कमरे में वैठाये जाते हों तो उन्हें वड़ाई-छोटाई के अनुसार वैठाना चाहिये। शिक्षक की ऐसी स्थिति रहनी चाहिये कि वह एक नजर से सब लड़कों को देख सके। वे सट-सटकर वैठने से न ठीक से काम करते हैं और न ठीक से लिख सकते हैं। कभी-कभी सट-सटकर वैठे-वैठे झगड़ा कर देते हैं जो श्रेणी-शासन में विघ्न उपस्थित करता है। निकट-निकट वैठने से वैठने की बुरी रीति सीखते हैं और इससे उनकी कमर टेढ़ी हो जाती है।

(४) यदि कोई लड़का साफ-सुथरा नहीं हो तो उसे शीघ्र ही साफ होकर आने का आदेश कर देना चाहिये। शिक्षक

लड़कों की गन्दगी को तभी रोकने में सफल हो सकता है जब वह स्वयं साफ-सुथरा रहता है और अपने वस्त्रों को ठीक से पहनता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि स्वच्छता और धन से कोई आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। मोटे और रुखड़े कपड़े भी साफ रक्खे जा सकते हैं। शिक्षक या छात्र दोनों को आत्म-सम्मान का भाव रखना चाहिये और यह जानना चाहिये कि आत्म-सम्मान का भाव आदर्श वेशभूषा से प्रकट होता है।

(५) शिक्षा आरम्भ करने के पहले यह देख लेना चाहिये कि पढ़ाई के सभी सामान किताब, कागज, पेंसिल लाने, पुस्तिका मौजूद हैं। जिस विषय की पढ़ाई होती हो उसी विषय की पुस्तिका में तत्सम्बन्धी नोट लिखने देना चाहिये। यदि किसी लड़के ने किताब पेन्सिल लाने की भूल की है तो उसे थोड़ा दण्ड देकर कार्य में प्रवृत्त करना चाहिये। अभ्यास-जन्य दीर्घ-सूत्रता के लिये दण्ड-प्रकरण में उपयुक्त दण्ड का विधान किया गया है।

(६) पाठ आरम्भ करने के पूर्व शिक्षक को लड़कों का अवधान अपनी ओर खींच लेना चाहिये। यदि सब लड़कों का ध्यान शिक्षक की ओर आकर्षित नहीं हुआ है तो उनका ध्यान आकर्षित कर पढ़ाई शुरू करनी चाहिये।

(७) देर से आनेवाले विद्यार्थियों के लिये कुछ समय तक ठहरना चाहिये। लड़कों को यह बात मालूम होनी चाहिये कि देर से आना शिक्षक का अपमान करना है। यदि ऐसी बात उन्हें विदित हो जाय तो अपनी भलाई चाहनेवाला कोई भी बालक देर से आने का विचार भी न करेगा। देर से आनेवालों

की उपस्थिति पीछे बनानी चाहिये और उनकी यह हरकत दूर करने के लिये स्कूल की छुट्टी होने के बाद रोककर पढ़ने-लिखने का काम कराना चाहिये। आरम्भ में समझा देने ही से यह दोष दूर हो जाता है। समयानुवर्तिता के नियम का उल्लंघन करने-वाले शिक्षक के कारण भी ये दोष उत्पन्न होते हैं।

(८) शिक्षक की विना अनुमति से कभी भी छात्रों को किसी बाहरी आदमी के आने से उठ खड़ा होना नहीं चाहिये। शिक्षक या श्रेणी-नायक की आज्ञा से उठना न्यायानुकूल है। किसी के आने पर उठ खड़ा होना उसके लिये सम्मान प्रदान करना है। यह तो उचित है, किन्तु आधे लड़कों का खड़ा होना और आधे का झुका रहना बहुत ही खराब है। लड़कों को यह मालूम नहीं रहता है कि किसके आने पर खड़ा होना और किसके आने पर नहीं खड़ा होना चाहिये। इसलिये यह सबसे अच्छा तरीका है कि शिक्षक जब बोले तो लड़के खड़े हों। लड़खड़ाते हुए खड़ा होना ठीक नहीं है। यदि कोई मौखिक पाठ हो रहा है तो शिक्षक को कहना चाहिये कि लड़के खड़े हो जाओ। यदि कोई बात लिखाई जा रही है तो शिक्षक को कहना चाहिये कि लिखना बन्द करो और खड़े हो जाओ। शिक्षक को इस बात से सदा साव-धान रहना चाहिये कि कोई विना उसकी अनुमति के श्रेणी में प्रवेश न करे। शिक्षक के विना पूछे श्रेणी में प्रवेश करना अन्याय है।

(९) शिक्षक और श्रेणी के बीच से किसी का गुजरना ठीक नहीं है। यह बुरा ढंग है। कोई निरीक्षक या प्रधानाध्यापक ऐसा करें तो शिक्षक को उनके पीछे ऐसा कहना चाहिये कि

छुट्टी देना आवश्यक है, किन्तु व्यर्थ के लिये बाहर जाने के अभ्यास को रोकना चाहिये। एक लड़के को प्यासा देखकर सब लड़के प्यास समझने लगते हैं और पानी पीने के लिये उतावले हो जाते हैं।

(१४) किसी भी छात्र को शिक्षक की आज्ञा विना अपने स्थान से नहीं खसकना चाहिये। पढ़ाने के समय लड़कों की बहुत भीड़ नहीं लगानी चाहिये। मानचित्र में कोई स्थान दिखलाने के समय लड़के भीड़ लगाते हैं। ऐसे व्यवहार से श्रेणी-शासन में वाधा पड़ती है और शिक्षा विधि-पूर्वक सम्पन्न नहीं हो सकती है। एक बार एक ही लड़के को नक्शे के पास जाना चाहिये।

(१५) शिक्षा-प्रदान में शिक्षक को सदा सतर्क और सावधान रहना चाहिये। लिखने के समय शिक्षक का घूमना उपयोगी होना चाहिये। शिक्षक को लड़कों की लिखावट पर खूब जोर देना चाहिये। उनकी अशुद्धियों, असावधानियों और प्रमादजन्य भूलों की ओर संकेत कराते रहना चाहिये। भूलों का संशोधन घूम-घूमकर करते रहने से लिखने की घंटी में ही संशोधन पूरा हो जाता है।

(१६) आज्ञा देने के उपरान्त आज्ञापालन के लिये ठहर जाना चाहिये। अपनी कलम और किताव उठाओ। जव तक लड़के उन्हें उठा न लें तव तक शिक्षक को ठहरना चाहिये। जव इनको लेकर तैयार हो जायँ तव लिखाने का आदेश करना चाहिये।

(१७) पढ़ाने के समय शिक्षक को लड़कों की आँखों और

मुखाकृति की ओर भी ध्यान देना चाहिये। पाठ में आनन्द लेने से उनकी मुखाकृति प्रसन्न मालूम होती है। उनके देखने से शिक्षा की सफलता का पता लगाया जा सकता है। लड़कों की दृष्टि शिक्षक पर और शिक्षक की दृष्टि बालकों पर निरन्तर लगी रहनी चाहिये। पाठ में अनुराग और अवधान लगने से यह स्वाभाविकतया उत्पन्न होता है।

(१८) कृष्णपट्ट का प्रयोग बराबर होना चाहिये।

(१९) पुस्तकों को साफ-सुथरा रखने की शिक्षा बराबर देनी चाहिये। लड़कों को पुस्तकों के प्रति प्रेम और अनुराग रहना चाहिये और उन्हें सरस्वती के रूप मानकर उनको पवित्रता की दृष्टि से देखना चाहिये।

(२०) श्रेणी को छोड़कर बिना अनुमति से भाग जानेवाले लड़कों को यथोचित दण्ड होना चाहिये। बिना अनुमति से श्रेणी छोड़ देना विद्यालय के प्रति अन्याय है।

(२१) लड़कों की शारीरिक उन्नति पर शिक्षक को ध्यान देना चाहिये। पढ़ाने के समय यदि किसी लड़के को मूर्च्छा, बेहोशी, सिर-दर्द हो जाय तो तुरत उसका प्रतीकार करना चाहिये। ऐसे रोगियों को छुट्टी दे देनी चाहिये।

(२२) निर्धारित समय के भीतर ही पाठ समाप्त कर देना चाहिये। यदि ऐसा न किया जाय तो दूसरे घण्टे का पाठ अधूरा ही समाप्त करना पड़ेगा।

(२३) जैसे ही घण्टी बजे वैसे ही लड़कों को छोड़ देना चाहिये। लड़कों को छोड़ने के समय इस प्रकार बोलना चाहिये—

(क) पुस्तकों को लेकर तैयार हो जाओ।

(ख) खड़े होओ।

(ग) बाहर निकलो ।

(घ) धीरे-धीरे पंक्ति में चले जाओ।

(२४) शिक्षक को कृष्णपट्ट को पोंछ देना चाहिये और खल्ली, झाड़न को यथोचित स्थान पर रख देना चाहिये। कृष्ण-पट्ट पर अपनी लिखी हुई बातों को मिटाना बहुत जरूरी है।

(२५) इसके पश्चात् शिक्षक को अपनी स्वकीय स्मारक-लिपि में पाठ के गुणदोषों का विवेचन अंकित कर देना चाहिये। इस प्रकार के विवेचन में कम से कम चार बातों का समावेश रहना चाहिये।

(क) पाठ का साधारण परिणाम।

(ख) शिक्षक को जो कुछ बतलाना था सब बतलाया या नहीं।

(ग) भविष्य में दोषों को दूर करने के उपाय होने चाहिये।

(घ) भविष्य में पाठ को सफल बनाने के अन्य क्या उपाय होने चाहिये।

स्मारक-लिपि से शिक्षक को बहुत सहायता मिलती है और इसका सदा उपयोग करना चाहिये। इसके अपार लाभ हैं। शिक्षक काम, अनुभव और अभ्यास के ऊपर अवलम्वित है। अतः इनके लिये स्मारक-लिपि की विशेष आवश्यकता है।

—❀❀❀—

शासन और संगठन

मुख्याध्यापक और अन्य शिक्षक

शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियों का विकास करना ही शिक्षा तथा शिक्षालय का मुख्य उद्देश्य है। विद्यालय में शिक्षित होकर बालक का अपनी जीवन-यात्रा निर्विघ्न समाप्त करना, कण्टकाकीर्ण मार्ग से चलते हुए जीवन-संग्राम में वीर योद्धा के समान युद्ध करते रहना एवं अन्त में सुयोग्य नागरिक बनकर परमार्थ प्राप्त करने का मार्ग ढूँढ़ना इसका मुख्य लक्ष्य होना चाहिये। भावी जीवन की कठिनाइयों का सामना करने तथा परिस्थिति को अनुकूल करने की शिक्षा इसमें दी जाती है। इससे बालक सफल नागरिक, देशभक्त, राजभक्त, समाजभक्त और प्राणिमात्र का सेवक हो सकता है। यदि विद्यालय की पढ़ाई से कोई मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा भी सम्पन्न नहीं कर सकता है तो वह उसका दुरुपयोग करता है। जिस विद्यालय से इतने लाभ होते हैं उसका कितना महत्व है, कहने की बात नहीं। इसके शासन और प्रबन्ध पर संसार के भावी नेता का जीवन अवलम्बित है। इसकी व्यवस्था पर शिक्षा का सारा काम निर्धारित है। यदि इसकी व्यवस्था और प्रबन्ध न्यायपूर्ण हो तो शिक्षा का काम सुचारु रूप से चल सकता है। जिस विद्यालय का शासन ठीक है, वहाँ की मर्यादा भी बढ़ी-चढ़ी है। जिस स्कूल में मर्यादा है,

विद्यालय

वहाँ पारस्परिक सहानुभूति है। जहाँ पारस्परिक सहानुभूति है, वहाँ की शिक्षा समीचीन है। जहाँ की शिक्षा समीचीन है, वहाँ का परीक्षा-परिणाम भी सन्तोष-जनक है। जहाँ का परीक्षा-फल अच्छा है, वहाँ की प्रतिष्ठा भी बढ़ी हुई है और जहाँ की प्रतिष्ठा उत्साहवर्द्धक है, वहाँ का शिष्टाचार भी उच्चकोटि का है और जहाँ का शिष्टाचार आदर्श है, वहाँ का प्रबन्ध भी उत्तम है। इसलिये विद्यालय के प्रबन्ध और शासन के ऊपर विशेष ध्यान देना चाहिये। विद्यालय शिक्षा का केन्द्र है। इस केन्द्र को ठीक रखना प्रत्येक प्रधान शिक्षक का कर्त्तव्य है। विद्यालय यदि रेलगाड़ी है तो हेडमास्टर उसका संचालक है।

प्रधानाध्यापक

प्रधानाध्यापक की सहानुभूति ही विद्यालय को सुधार सकती है। उसकी आज्ञा को छात्र सादर ग्रहण करते हैं। उसकी प्रार्थना लड़कों के हृदय में नूतन उत्साह का संचार करानेवाली होती है। उसको गम्भीर तथा कृपालु राजाराम होना चाहिये, जिसके यहाँ बड़े से बड़ा अध्यापक एवं छोटे से छोटा बच्चा अपना दुखड़ा सुनाने को पहुँच सके। उसका व्यक्तित्व लड़कों के हृदय में भय उत्पन्न करानेवाला नहीं होना चाहिये। उसको देखकर बालक आदर और प्रेम की भावना अपने हृदय में जाग्रत कर सकें। उसको हरएक लड़के के स्वभाव, नाम और विशेषता का ज्ञाता होना चाहिये। बालकों के प्रति प्रधानाध्यापक का भाव-वात्सल्य होना चाहिये। बालकों के साथ खेल में योग देना, मैदान में जाकर उनको उत्साहित करना, उनके सत्य चरित्र का पता लगाना, उनके भिन्न स्वभावों की छानबीन करना एवं उनके धार्मिक

जब किसी प्रकार स्कूल की निन्दा होती है, तब हेडमास्टर के हृदय में चोट पहुँचती है। इस समय हेडमास्टर को बड़ी सावधानी से काम निकालना चाहिये। स्कूल की परीक्षा का फल खराब होने से एवं स्कूल-परिदर्शक की कड़ी जाँच से प्रधानाध्यापक को कभी-कभी चिन्ता हो जाया करती है। स्कूल की पढ़ाई का निरन्तर निरीक्षण करते रहने से चिन्ता की कोई बात नहीं होनी चाहिये। परिदर्शक को हेडमास्टर अपना मित्र समझे। उनकी नुक्ताचीनी और समालोचना से घबराने की कोई बात नहीं होनी चाहिये।

प्रधानाध्यापक को संरक्षकों से भी मिलते रहना चाहिये। छात्रों के माता-पिता तथा अभिभावकों की सहानुभूति प्राप्त करना प्रत्येक प्रधान शिक्षक का अपना कर्त्तव्य होना चाहिये। स्कूल के शासन में स्कूल की मर्य्यादा में बट्टा न पड़े, तो अभिभावकों का प्रेमभाव ग्राह्य है अन्यथा स्कूल की मर्य्यादा को पैरों तले रौंदकर अभिभावकों का मुखापेक्षी बनना किसी भी आत्माभिमानी एवं गौरवाभिमानी प्रधान शिक्षक के लिये उचित नहीं है। निम्न लिखित बातों पर यदि कोई शिक्षक ध्यान दे, तो उसको प्रधान शिक्षक होने पर इनसे कुछ सहायता मिल सकती है। प्रधान शिक्षक का काम अनुभवगम्य है ज्ञानगम्य नहीं। इस बात पर ध्यान रखकर निम्न लिखित संकेतों की ओर प्रधान शिक्षक ध्यान दे।

(१) प्राचीन आचार्य के सदृश प्रत्येक प्रधानाध्यापक को शिक्षकों एवं छात्रों के लिये आदर्श होना चाहिये।

(२) प्रधान शिक्षक को इस बात का बराबर ध्यान रहना

कहाँ तक उन्नति हो सकती है, प्रत्येक बालक कहाँ तक अच्छा बनाया जा सकता है, इसका ध्यान प्रधान शिक्षक को रहना चाहिये। प्रधान शिक्षक का कार्य्य उत्तरदायित्वपूर्ण और बड़े मार्के का है। उन्हीं के चरित्रबल का प्रभाव सम्पूर्ण विद्यालय पर पड़ता है। यही कारण है, जैसा कि किसी ने कहा है कि प्रधान शिक्षक मुहर है, और विद्यालय लाह। प्रधान शिक्षक घड़ीसाज है, तो स्कूल घड़ी। प्रधान शिक्षक नाविक है, तो स्कूल जहाज। इस संसार-समुद्र से पार उतारने का भार उसी विद्यादाता हेडमास्टर के ऊपर निर्भर है।

सहायक शिक्षक

प्रधान शिक्षक के काम में सहायता पहुँचानेवाले सहायक शिक्षक हैं। उच्च या मध्य विद्यालयों के शिक्षकों का समाज भिन्न-भिन्न प्रकृति, रुचि और स्वभाववाले शिक्षकों का समूह रहता है। हेडमास्टर को इनलोगों से काम करने-कराने में बड़ी कठिनाई होती है। बहुतेरे शिक्षक प्राचीनता के उपासक और नूतनता के प्रबल विरोधी रहते हैं। नई प्रणाली, नये खेल और नये विचार के ये बराबर विरोधी रहते हैं और पुरानी बातों की लीक पीटने में ही अपनी बड़ाई समझते हैं। नई आभा से आलोकित हेडमास्टरों को जो अड़चनें पड़ती हैं, वे वर्णनातीत हैं। कितने शिक्षक तो पढ़ाने की प्रणाली से ही अनभिज्ञ रहते हैं, कई दूसरे विभाग में जाने की चेष्टा करते रहते हैं, कितने पढ़ा भी सकते हैं, किन्तु आलस्य के कारण पढ़ाते नहीं हैं, कितने इस विभाग में इसलिये आते हैं कि उन्हें और किसी जगह नौकरी नहीं मिलती। ऐसे लोगों के साथ व्यवहार करना और इनसे काम कराना हेडमास्टर के लिये टेढ़ी खीर

सिद्धान्त समझाया जाता है, शिक्षात्मक मूल तत्वों की विवेचना बतलाई जाती है। पढ़ाने की युक्तियों की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है। पढ़ाने में क्या-क्या कठिनाइयाँ होती हैं इसका भी थोड़ा संकेत दे दिया जाता है। व्यावहारिक ज्ञान के लिये आदर्श पाठ, समालोचनात्मक पाठ या अभ्यास पाठ का भी व्यवहार किया जाता है, लेकिन पूरी तरह से सिद्धान्तों के कार्य्यरूप में परिणत करने का वहाँ अवसर नहीं मिलता। सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने के लिये वह स्कूल ही है जहाँ शिक्षक अपनी रुचि के अनुसार उन शिक्षा-तत्वों को व्यवहार में ला सकता है। ट्रेनिङ्ग विद्यालय तो उन सिद्धान्तों को बतलाकर उन्हें ठीक रास्ता बतलाते हैं। कलकत्ते जाने का रास्ता क्या है, यह जान जाने से कोई कलकत्ता नहीं पहुँच सकता। दो-चार स्टेशन चला देने से भी फिर स्वयं ही यात्रा करनी होगी। ट्रेनिङ्ग कालेज में शिक्षित होकर भी शिक्षक को अनेक कठिनाइयाँ पड़ती हैं। उन्हें प्रधान शिक्षक से पूछ-ताछ करनी चाहिये अथवा अपने अनुभवी शिक्षक मित्र से ही इसके विषय में परामर्श लेना चाहिये, लेकिन नये शिक्षक हेडमास्टर से कोई बात पूछना नहीं चाहते हैं। उन्हें भय होता है कि उनके खोखले ज्ञान की कलई खुल जायगी या इनसे पूछा जायगा वे स्वयं उलझन में पड़ जायँगे।

ऐसी विषम परिस्थिति में पढ़ाई का कार्य्य सुचारु रूप से सम्पन्न करना हेडमास्टर के लिये बड़ा विकट प्रश्न हो जाता है। हेडमास्टर को यहाँ बहुत विचार से काम लेना चाहिये। प्रवीण, कार्य्यकुशल और उत्तरदायी शिक्षक को नीचे की दो श्रेणियों

में काम देना चाहिये। साधारण रीति से काम करनेवाले शिक्षकों को बीच की श्रेणियों में काम देना ठीक है। काम बाँटने के समय प्रधान शिक्षक को बड़ी सावधानी से काम करना चाहिये। पढ़ाई देखकर शिक्षकों को उचित भार देना चाहिये। सुव्यवस्था-प्रिय शिक्षक, जो पढ़ाने में मन लगाता है, उसे ही उत्तर दायित्वपूर्ण कार्य्य सौंपना श्रेयस्कर है। श्रेणी शिक्षक की प्रथा अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुई है। प्रत्येक श्रेणी का अधिकार एक शिक्षक के हाथ में रख देना उत्तम है। यदि श्रेणी शिक्षक प्रधान विषय का पण्डित हो, तो उसे ही भार सौंपना उत्तम है। विशेपज्ञों को विशेप विषयों की पढ़ाई का भार सौंपना स्कूल और छात्रों के लिये लाभदायक है, किन्तु इन विशेपज्ञों को और विषयों के अध्यापन का भी भार देना चाहिये। इतिहास, भूगोल या गणित के विशेपज्ञ को इन विषयों के अतिरिक्त विषयों के पढ़ाने का अवसर देना चाहिये। इन विषयों में भी पुराने और अनुभवी शिक्षक ही प्रधान समझे जायँ। हाई स्कूलों में इस प्रथा से बड़ा लाभ हुआ है। एक हाई स्कूल में तीन इतिहास के पढ़ानेवाले हैं, तो तीनों मिलकर इतिहास की व्यवस्था बना लें, हेडमास्टर से इसके बारे में परामर्श कर लें और कार्य्य-तालिका में उसी प्रकार कार्य्य रक्खें। इस प्रकार श्रेणी शिक्षक का क्रम भी जारी रहता है और विशेपज्ञों की प्रधानता भी रहती है। यह विषय सोचने का है और दक्ष प्रधानाध्यापक ही इसका उचित प्रयोग कर सकता है। मिडल स्कूलों में विशेपज्ञों की न कोई जरूरत ही है और न उनका अवसर ही है।

श्रेणी शिक्षक

शिक्षकों का काम देखने के लिये प्रधान शिक्षक को पूरा समय मिलना चाहिये। मास्टरों और छात्रों की अर्जियाँ देखने के लिये भी हेडमास्टर को एक घण्टा समय अवश्य निकालना चाहिये। इसके सिवा कम से कम दो घण्टा समय मास्टरों की पढ़ाई की जाँच-पड़ताल और देखभाल में विताना चाहिये। आठ आठ वर्गों को देखना आसान काम नहीं है। जहाँ एक वर्ग में दो-दो तीन-तीन विभाग हैं वहाँ का काम और जटिल हो जाता है। प्रत्येक दिन एक मास्टर की पढ़ाई देखने और उसपर मन्तव्य लिखने में ही हेडमास्टर का एक घंटा समय वीत जाता है। इस परिस्थिति में हेडमास्टर को कम से कम तीन घण्टा समय इसमें व्यतीत करना चाहिये।

हेडमास्टर को अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से अपने अधीनस्थ मास्टरों को यह संकेत कराते रहना चाहिये कि वह वहाँ उनका पथ-प्रदर्शक है, उनका छिद्रान्वेषक नहीं। शिक्षकों की कठिनाइयों को हल करने की योग्यता, समता एवं शक्ति प्रत्येक प्रधानाध्यापक में होनी चाहिये। दोष निकालना तो सहज है, किन्तु दोष को दूर करने में सफलीभूत होना कठिन है।

सबसे भारी काम जो प्रत्येक सेकेण्डरी स्कूल के हेडमास्टर का है, वह बालकों की लिखावट की देखभाल करना है। रद्दी पुस्तक (रफ कापी) की प्रथा बहुत बुरी है। इसके रखनेवाले विद्यार्थी को शीघ्र ही दण्ड देना चाहिये। पुस्तकें और कापियाँ सरस्वती की प्रतीक हैं। भला ऐसी गन्दी वहियों में हंसवाहिनी शुभ्रवसना सरस्वती का निवास कैसे हो सकता है? हरएक विद्यार्थी को इस बात की चेतावनी दे देनी चाहिये कि

वह शुद्ध, साफ और बनाकर लिखे। पुष्टाक्षरों का प्रयोग नितान्त वाञ्छनीय है। साफ-साफ अक्षरों में लिखने का अभ्यास अवश्य डालना चाहिये। विहार और उड़ीसा प्रान्त के मिशन स्कूलों की लिखावट आदर्श है। प्रत्येक लेख-कापी पर हस्तलिपि की कड़ी आलोचना रहनी चाहिये।

चित्राङ्कन और ड्रील की कार्य्यवाही पर हेडमास्टर महाशय का ध्यान अवश्य रहना चाहिये। चित्राङ्कन पर इस देश के स्कूलों में कम ध्यान दिया जाता है। सुकुमार वृत्ति के अभि-व्यञ्जन के लिये इसकी अत्यन्त उपयोगिता है। ड्रील की घंटो में शासन ठीक नहीं रहता। इसलिये हेडमास्टर के वहाँ रहने से यह सुचारु रूप से चलता है। ड्रील में शासन का पूरा अवसर मिलता है। यहाँ काम ठीक होने से स्कूल भर का शासन सुव्यवस्थित रहता है।

स्कूल में यह देखना चाहिये कि पढ़ाई खूब उत्साह के साथ हो रही है। शिक्षक की बोली स्पष्ट और पीछे के लड़कों के सुनने योग्य होती है। इतने जोर से शिक्षक नहीं बोलते हैं कि दूसरे वर्गवाले भी इससे घाटा उठाते हैं। सब लड़कों पर शिक्षक की दृष्टि रहती है। सब लड़कों से प्रश्न किये जाते हैं। प्रायः सब लड़के क्रियमाण हैं। आवश्यकता पड़ने पर कृष्णपट्ट का प्रयोग होता है। कृष्णपट्ट की लिखावट साफ और शुद्ध है। यदि इनमें किसी बात की कमी है, तो इनका उल्लेख हेडमास्टर साहब अपनी वही में कर लें और उस विशेष दोष की ओर शिक्षक की दृष्टि आकर्षित करें। यदि दोष का मार्जन होता है, तो शिक्षक का मन अपने व्यवसाय की ओर है अन्यथा वह

दिन काट रहा है और बालकों का द्रोही है। इस प्रकार हेड-मास्टर को पता चल जाता है कि कौन मास्टर स्कूल के लिये उपयुक्त है और कौन अनुपयुक्त। पढ़ाई वास्तव में व्यावहारिक एवं स्वाभाविक ढंग पर चलनी चाहिये। बनावटी ढंग से पढ़ाने पर लड़कों को लाभ नहीं होता है। कुछ देर के लिये इंसपेक्टर साहब या हेडमास्टर साहब भले ही खुश हो जायँ, लेकिन उपयोगी पढ़ाई ही पढ़ाई है और वह अभ्यास करते-करते प्राप्त होती है।

प्रत्येक शिक्षक के पास पाँच बहियाँ अवश्य रहनी चाहिये—

(१) उपस्थिति पुस्तिका।

(२) अंक पुस्तिका।

(३) कार्य्यक्रम पुस्तिका।

(४) लड़कों की नोट पुस्तिका।

(५) शिक्षक की अपनी डायरी।

जिस क्रम से उपस्थिति पुस्तिका में लड़कों के नाम लिखे जायँ, उसी क्रम से नाम अंक पुस्तिका में भी रहना चाहिये। वह ठीक तरह से शुद्ध-शुद्ध होना चाहिये। नाम और अन्य बातें सभी साफ-साफ रहनी चाहिये। शिक्षा-विभाग के आदेशानुसार इसमें लिखने से शिक्षक की सचाई का पता लगता है।

अंक-पुस्तिका में यथोचित समय से अंक लिखना चाहिये। जहाँ तक इसमें सफाई हो सके, वहाँ तक इसकी सफाई पर ध्यान देना चाहिये। यह एक ऐसी पुस्तिका है कि जिसको स्कूल जाँच करनेवाला व्यक्ति कभी भी देख सकता है। कार्य्य-विवरण पुस्तिका में दो भाग रहना चाहिये। प्रथम भाग में साल भर के कार्य्य का विवरण होना चाहिये। दूसरे भाग में एक चौथाई

साल का या महीने-महीने के कार्य्य का विवरण लिखा रहना चाहिये। यदि दैनिक या साप्ताहिक पाठ्य-विवरण लिखा जाय तो कार्य्य अत्यन्त सुव्यवस्थित होता है। इससे लड़कों और शिक्षकों को लाभ होता है। ट्रेनिङ्ग स्कूलों और कालेजों में तो शिक्षकों को उपशिक्षकों के साहाय्य से ही पाठ-स्कीम और पाठ-विवरण तैयार करना अच्छा होगा। शिक्षक की डायरी बड़े महत्त्व की है। एक सप्ताह के कार्यों का अन्दाज इससे लग जाता है। पाठानुष्ठान पुस्तक तथा डायरी की कार्य्यवाही मिलती-जुलती होनी चाहिये। इस प्रकार की डायरी का प्रचार संयुक्त-प्रान्त के स्कूलों में आजकल देखा जाता है।

तिथि सप्ताह के अंत में	कितना अंश पढ़ाया गया	शिक्षक के नोट	हेडमास्टर का नोट और मन्तव्य

इसके सिवा शिक्षक के पास अपनी व्यक्तिगत डायरी होनी चाहिये, जिसमें अपने काम की कोई बात वहाँ लिख ले सकता है। उसने कैसा पढ़ाया और उसका पढ़ाना अपने मन के मुताबिक संतोषजनक हुआ या नहीं; उससे क्या-क्या अशुद्धियाँ हुईं; कितनी बातें पढ़ाने से छूट गईं, इत्यादि। शिक्षक अपनी पाठटीका को वही में भी इन बातों को लिख सकता है और लाभ उठा सकता है। लड़कों की अशुद्धियों का वर्णन, तालिका एवं स्वरूप भी इसमें लिखा जा सकता है। प्रत्येक अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह इस व्यक्तिगत डायरी को रक्खे। वह कालेज में पढ़ावे, मिड्ल या प्राइमरी स्कूल का शिक्षक हो, हाई स्कूल में पढ़ावे, ट्रेनिङ्ग कालेज या ट्रेनिङ्ग स्कूल में अध्यापन करता हो या वह

गुरुट्रेनिङ्ग स्कूल का हेड पण्डित हो, अथवा कहीं भी शिक्षक का काम करता हो, उसका यह फर्ज होना चाहिये कि वह इसको बराबर रक्खे और इससे लाभ उठावे।

शिक्षक-सभा

विद्यालयों के कामों की मीमांसा और व्याख्या करने के लिये शिक्षक-सभा रहनी चाहिये। यह सभा स्कूल के लिये बहुत उपयोगी है। अनेक उलझे हुए काम इसमें सुलझ जाते हैं। शिक्षा सम्बन्धी बातों के अतिरिक्त शिक्षकों की कठिनाइयों को प्रकट करने का यहीं अवसर मिलता है। शासन-सम्बन्धी बातों पर यहाँ विचार होना चाहिये। यह सभा यदि महीने में एक बार हो तो सबसे अच्छा है। मिल-जुलकर काम करने की रीति और सहूलत इसी सभा से प्राप्त होती है। स्कूलों की एक सभा एक कमिश्नरी के इंसपेक्टर (अध्यक्ष) के सभापतित्व में हो तो और भी अच्छा है। इसमें पारस्परिक भावों का विनिमय होता है और इससे बहुत लाभ हो सकता है। आदर्श पाठ से उतना लाभ नहीं होता जितना वाद-विवाद करने से। यदि किसी बात की मीमांसा करनी हो तो सभापति की आज्ञा से विशेष अवसर पर भी सभा की जा सकती है।

छात्रों के विभाग

आजकल के माध्यमिक एवं उच्च विद्यालयों में ऐसे छात्र रहते हैं जो अपनी श्रेणी के बालकों से बहुत अच्छे रहते हैं, और कुछ ऐसे भी होते हैं जो बहुत कमजोर होते हैं। ऐसी श्रेणी में पढ़ाना कठिन है। कमजोर लड़के अनुत्तीर्ण होने पर अपनी असफलता का सब दोष विद्यालय के सिर पर लाद देते हैं। इसलिये हेड

परीक्षा, अर्द्धवार्षिक परीक्षा और (३) त्रैमासिक परीक्षा। लोगों का विचार है कि साप्ताहिक परीक्षा से विशेष लाभ नहीं है। विषय का ज्ञान भी नहीं होता है और जिस सप्ताह में जिस विषय की परीक्षा होती है, उस सप्ताह में केवल उसी विषय को लड़के पढ़ते हैं। कमजोर मास्टरों को फिर सोमवार को उत्तर-पत्र लौटा देना भी असम्भव हो जाता है। लड़कों को कम पढ़ना भी पड़ता है और कम समय मिलने से लिखना भी गन्दा होता है। हाई स्कूल और मिड्ल स्कूल की निम्न श्रेणियों में इससे कुछ फायदा हो सकता है। साप्ताहिक परीक्षा होने पर भी अर्द्ध वार्षिक परीक्षा और वार्षिक परीक्षा की आवश्यकता बनी रहती है। इसलिये साप्ताहिक परीक्षा की उपयोगिता बढ़ती नहीं है क्योंकि उससे पास-फेल का निर्णय ही नहीं किया जाता है। दूसरा ढंग भी उतना अच्छा नहीं है। अनुभव से मालूम हुआ है और बिहार प्रान्त के अनुभवी वयोवृद्ध हेडमास्टरों का यह कथन है कि दो परीक्षाओं से पढ़ाई की उन्नति नहीं हो सकती है। साल में तीन परीक्षाओं का क्रम उपयोगी सिद्ध हुआ है। दुर्गापूजा की छुट्टी के पहले, बड़े-दिन की छुट्टी के पहले और गर्मी की छुट्टी के पहले परीक्षा रखना अच्छा है। जहाँ स्कूल का साल दिसम्बर में ही खतम हो जाता है, वहाँ होली के बाद अप्रैल में और दूसरा सितम्बर के पहले और तीसरा दिसम्बर में होना चाहिये। यदि विद्यार्थी तीनों में पास है, तो पास समझना चाहिये। यदि किसी दो में पास है, तो भी पास मानना उचित है। यदि अन्तिम परीक्षा में सब प्रकार से पास है और अन्य दो परीक्षाओं में उसने कुछ उन्नति दिखलाई है,

तोभी पास समझना उसकी भलाई करना है। यदि कोई बालक प्रथम की दो परीक्षाओं में पास नहीं है, लेकिन एक विषय में ५ नम्बर के अन्दर ही फेल है और अन्तिम परीक्षा में रोगी होकर नहीं बैठ सका, तो उसे इस शर्त पर पास करना चाहिये कि रोग से छुटकारा पाने पर उस विषय में अगले साल के मार्च तक उसको कम से कम ४० फी सैकड़ा नम्बर ले आना पड़ेगा। ऐसी ही व्यवस्था कई सरकारी स्कूलों में पाई जाती है और इसी मत का समर्थन बड़े-बड़े विद्वान् हेडमास्टरों ने किया है। यदि सेकेण्डरी शिक्षक सभा में परीक्षा सम्बन्धी एक सुविधा-जनक नियम बना लिया जाय, तो बहुत ही अच्छा हो। ऐसा होने से हेडमास्टरों को भी सुविधा होगी। मास्टरों का भार भी हल्का होगा और स्कूल का परीक्षा सम्बन्धी काम भी आसान हो जायगा। प्रान्तीय इंसपेक्टरों की सभा में इस प्रकार का प्रस्ताव रक्खा जा सकता है और उनकी अनुमति से ही सब काम करना ठीक है। कहीं-कहीं गैर सरकारी स्कूलों में परीक्षाफल में स्कूल के मंत्री तथा अन्य चलते-पुर्जे सदस्य हस्तक्षेप करते हैं। यह शिक्षा मर्मज्ञ के लिये दुःखदायक सिद्ध होता है। यदि कोई मन्त्री या सदस्य शिक्षा तत्व का ज्ञाता या प्रेमी हो, तो उसके ऐसा करने में आपत्ति नहीं है, परन्तु वकालत पास कर लेने या व्यवसाय में लाखों की संपत्ति जमा कर लेने से कोई शिक्षा-मर्मज्ञ नहीं हो सकता। यह कहना कि सी० टी० या बी० टी० पढ़ लेने से कुछ फायदा नहीं है, या वकालत पास करके भी शिक्षक का काम कर सकता है, वैसा ही है जैसे कि कोई यह कहे कि बिना डाक्टरी पढ़े ही

वकालत पास कर या बी० ए० पास कर किसी रोग का निदान या औषध करना अच्छा है।

छात्रों के माता-पिता के यहाँ परीक्षा के फल को भेजना चाहिये। उनके नम्बर, स्थान तथा पास नम्बर की तालिका रहनी चाहिये। छात्रों के अभिभावकों को यह शीघ्र पता लग जाय कि उनके लड़के कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं और उनकी नैतिक तथा मानसिक स्थिति कैसी है। चालचलन और व्यवहार का भी उस "प्रोग्रेस बुक" में संकेत रहना चाहिये। इस परीक्षा के साथ-साथ मानसिक परीक्षा (mental test) का भी क्रम काम में लाया जा सकता है, लेकिन बहुत-सी बातें हेडमास्टर और अन्य मास्टर के पारस्परिक सहयोग के ऊपर ही अवलम्बित रहती हैं।

इन परीक्षाओं में यदि विषय शिक्षक ही प्रश्न चुनें और उत्तरपत्र देखें, तो सबसे अच्छा है। इसमें लड़कों की अधिक भलाई की सम्भावना देखी जा सकती है। यदि किसी प्रकार शिक्षक की कार्यवाही की जाँच करनी है, तो दूसरे ही शिक्षकों का देखना अच्छा होगा। तीनों परीक्षाओं में भिन्न-भिन्न व्यक्ति प्रश्न चुनें, भिन्न-भिन्न व्यक्ति उत्तरपत्र देखें इसमें भी कल्याण है। परीक्षा की बात जहाँ तक गम्भीर और गुप्त रक्खी जाय वहाँ तक शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिये अच्छा है।

परीक्षक उन्हीं को बनाना चाहिये जो इस विभाग के सदस्य हों। बालकों का स्वभाव जानना एवं विषय का ज्ञान रखना परीक्षक के लिये आवश्यक होना चाहिये। आधुनिक परीक्षाएँ उन्हीं व्यक्तियों के द्वारा ली जानी चाहिये, जिनका शिक्षा विभाग

के साथ सम्बन्ध हो, जो इन विषयों को पढ़ाते हों, या जिनको आधुनिक परीक्षा-कला का ज्ञान हो और जो मानस, धारण, आलोचन और अध्यासन से पूर्ण परिचित हों।

शिक्षकों को परीक्षा के सम्बन्ध में तीन बातों पर खूब ध्यान देना चाहिये और इन तीन बातों पर विद्यार्थियों का ध्यान बराबर आकर्षित करते रहना चाहिये। परीक्षा एक प्रकार का व्यवसाय है, परिश्रम का परिणाम है। यह दूसरे ऊपरवाले स्थान में जाने का द्वार है और नौकरी या पेशा करने के लिये भीतर घुसने का फाटक है। इन बातों को सामने रखकर परीक्षा-भवन में परीक्षार्थी प्रश्नों के उत्तर लिखते रहें। घड़ी को देखते हुए और समय का ज्ञान रखते हुए उनको प्रश्न का उत्तर लिखते रहना चाहिये। दूसरी बात यह है कि छात्रों को साफ़-साफ़ और शुद्ध भाषा में उत्तर लिखने का अभ्यास कराना चाहिये। किसी परीक्षार्थी का उत्तर कितना भी अच्छा क्यों न हो, यदि उसका लिखा हुआ पढ़ा ही नहीं जायगा, तो उत्तर के लिये अंक देना ही कठिन हो जायगा, फ़ेल या पास का सवाल वहाँ उठ ही नहीं सकता। संक्षेप में स्पष्ट रूप से लिखने की कला छात्रों के लिये परीक्षा में बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। तीसरी बात यह है कि प्रश्न कुछ दूसरा रहता है और उत्तर कुछ दूसरा। 'सवाल दीगर हैं और जवाबे दीगर' वाले मसले पर छात्रों को गौर करके उत्तर लिखना आरम्भ करना चाहिये। ऐसे प्रश्नों के उत्तर कभी-कभी संग्रह करके श्रेणी में सुनाना भी चाहिये।

ऐसे उत्तरों की कहीं भी कमी नहीं है। परीक्षक के हृदय तक पहुँचने की क्षमता तो बहुत कम छात्रों में रहती है, किन्तु पास-फेल की कला का ज्ञान नहीं रखना बड़ा भारी दोष है। यह जानना चाहिये कि विषय का ज्ञान हो जाने से ही कोई परीक्षा पास नहीं कर सकता उसको निरन्तर लिखने का भी अभ्यास करना चाहिये। यदि परीक्षकों की छोटी-छोटी सभाएँ बनाकर स्कूल में काम करें तो परीक्षा का काम और सहज तथा ठीक होगा। यदि ऐसी मण्डली से कुछ भी फायदा हो, तो शिक्षक को लाभ उठाना चाहिये। यदि परीक्षाफल से यह ज्ञात हुआ है कि लड़के मेधावी होकर भी किसी-किसी विषय में पिछड़े हैं तो उनके लिये कोचिङ्ग क्लास भी होना जरूरी है। इससे और देशों में बहुत लाभ हुआ है।

परीक्षा से निर्णयशक्ति का विकास एवं अनुसंधान करने की योग्यता बढ़ती है। परीक्षा से लड़कों के गम्भीर अध्ययन की जाँच होती है और शिक्षकों के काम का पता लगता है। छात्रों की योग्यता का निश्चय करना, उन्हें संक्षेप में अपने जाने हुए विषयों को प्रकाशित करना, उन्हें प्रश्नोत्तर को सूक्ष्म गम्भीर तथा निर्दिष्ट बनाना, उन्हें स्पष्ट बातों पर ध्यान आकर्षित कराकर पाठ्य विषयों का पूर्ण ज्ञान कराना एवं निष्पक्ष समालोचक तथा गूढ़ विद्या-प्रेमी बनाना परीक्षा का मुख्य ध्येय होना चाहिये।

प्रत्येक शिक्षा-प्रेमी को यह खयाल रखना चाहिये कि परीक्षा गूढ़ ज्ञान तथा गम्भीर अध्ययन का साधक है। यह स्वयं साध्य या लक्ष्य नहीं है। परीक्षा की दृष्टि से पढ़ाना या

सिखाना गलत है। विद्यार्थियों की मानसिक शक्ति के अनुसार उनकी योग्यता बढ़ाना और विषय का ज्ञान कराना ही शिक्षा-प्रेमी का कर्त्तव्य होना चाहिये।

कार्य्यतालिका या निर्घण्टपत्र

पढ़ाई की उन्नति की जाँच तो परीक्षा से होती है, परन्तु इसकी कसौटी रुटीन है। विद्यालय के आन्तरिक अभ्युदयों का यह एक प्रधान साधक है। इसके बल पर सारा स्कूल नाचता रहता है। शिक्षक तथा छात्र दोनों इसके द्वारा काम में लगाये जाते हैं और इसीसे छुट्टी मिलती है। इसके काल की सूचना घण्टियों द्वारा होती है। इस कार्य्यक्रम का निर्माण बड़ी खूबी और परिश्रम से होना चाहिये। मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक बुद्धिवाला मनुष्य ही इसका ठीक-ठीक निरूपण कर सकता है। इसमें यह अवश्य देखना चाहिये कि प्रत्येक शिक्षक को कम-से-कम लेख को शुद्ध करने के लिये एक घंटा समय अवश्य मिले।

कठिन और सरल विषयों का सिलसिला रहना चाहिये इसमें भी दिन के पूर्वार्द्ध में साहित्य और गणित की पढ़ाई होनी चाहिये। उत्तरार्द्ध में इतिहास, भूगोल और चित्रांकन तथा ड्रील का सिलसिला जारी रहना ठीक है। हाइस्कूलों में एक घंटा ४० मिनट का और मिड्ल स्कूलों में ३५ मिनट का तथा मिड्ल की नीची कक्षाओं में ३० या २५ मिनट का हो तो छात्रों का मस्तिष्क बहुत दिनों तक काम करता रहेगा। लड़कों की उम्र, विषय का गाम्भीर्य तथा श्रेणी की उच्चता का खयाल

रखकर स्कूल का कार्य्यक्रम बनाना ठीक है। स्कूल के विषयों में व्यावहारिक विज्ञान को छोड़कर कोई ऐसा विषय नहीं है जो एक घंटे तक पढ़ाया या सिखाया जाय।

कितना समय पढ़ाने में लगाना चाहिये, यह तो शिक्षा-विभाग से निर्धारित किया जाता है, किन्तु उनका उपयोग हेडमास्टर के ऊपर है। स्कूल के घंटापत्र की एक प्रति हेडमास्टर के कमरे में और दूसरी शिक्षकों के कमरे में रहनी चाहिये। प्रत्येक श्रेणी में श्रेणी का कार्य्यक्रम टँगा रहना चाहिये। यदि हेडमास्टर के कमरे में स्कूल की रूटीन और मास्टरों की रूटीन अलग-अलग दफ्तियों पर लिखकर टँगी रहे तो उन्हें तुरत पता चल जाय कि कहाँ क्या काम हो रहा है। कौन शिक्षक कब खाली है और किस क्लास में क्या विषय पढ़ाया जा रहा है। सप्ताह में धर्मशिक्षा सिखाने की अब सर्वत्र विधि हो गई है। उसके लिये यदि शुक्र के दिन हिन्दुओं को धर्म्मशिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था कर दी जाय, तो समय का बचाव होगा और धर्म्मशिक्षा भी ठीक हो सकती है। जो विषय जितना ही गम्भीर हो और जिसमें अधिक अवधान की आवश्यकता पड़ती हो तो उसके लिये आरम्भ के हो घंटे होने चाहिये। अन्य विषयों को उनको क्लिष्टता के क्रम से रखते जाना चाहिये।

शिष्य शिक्षकों (pupil teachers) को अनेक बातें दृष्टि में रखकर कार्य्यपद्धति तैयार करने का अभ्यास करना चाहिये। उसके लिये तो यही ठीक है कि पहले सचाई के साथ कार्य्य-पद्धति का पालन करे और उसी के अनुसार काम करे। यदि बीच में कोई दोष मालूम हो तो परिवर्त्तन नहीं लाना चाहिये।

वर्गों के लिये तीन घंटे पर्याप्त समझे जाते हैं। यदि लड़कों ने दिनभर खूब पढ़ा है, लिखा है, खेल में भाग लिया है, व्यायाम किया है, तो वे शाम को कुछ भी नहीं कर सकते हैं। उनके लिये दूसरे दिन सुबह में ही थोड़ा लिखना-पढ़ना उचित है। परीक्षा की दृष्टि से थोड़ा काम करना बहुत जरूरी हो गया है। इसलिये कार्य्य और समय का विधान किया जाता है। समय का विधान जो ऊपर दिया गया है, उसकी तालिका नीचे दी जाती है।

श्रेणी	समय
तीसरी श्रेणी	आधा घंटा प्रातःकाल
चौथी श्रेणी	,, ,,
पाँचवीं श्रेणी	१ घंटा ,,
छठी श्रेणी	१½ या १ घंटा प्रातःकाल, ½ घंटा सायंकाल
सातवीं श्रेणी	२ ,, १ ,, ,, १ ,, ,,
आठवीं और नवीं श्रेणियाँ	२½ ,, १½ ,, ,, १ ,, ,,
दसवीं और ग्यारहवीं श्रेणियाँ	२½ ,, १½ ,, ,, १ ,, ,,

कार्य्य-विधान के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये—

(१) गृह-कार्य्य से लड़के के मानस पर जोर नहीं पड़ना चाहिये। खेलने-कूदने और आराम करने के लिये उसको काफी वक्त मिलना चाहिये।

माँ-वाप और स्कूल का सहयोग नितान्त वाञ्छनीय है। स्कॉटलैंड में इसकी बड़ी उन्नति हुई है। वच्चों के अभिभावकों और वहाँ के स्कूल के प्रधान शिक्षक की पारस्परिक सहकारिता सम्पूर्ण सभ्य-जगत के लिये आदर्श हो रही है।

विद्यालय और घर

भारत में इसका उल्टा व्यवहार देखा जाता है। एक तरफ स्कूल के लड़के और शिक्षक खींच रहे हैं और दूसरी ओर लड़कों के अभिभावक खींचातानी कर रहे हैं। इसी वीच शिक्षादेवी का ताण्डवनृत्य हो रहा है। यहाँ के अधिकतर संरक्षक तो लड़कों को पढ़ने की सुविधा तक प्रदान नहीं करते। जिस लड़के को सायंकाल में खेल खेलना है उसीको घर पर सौदा करना भी है। यदि वह खेल में सम्मिलित नहीं होता है तो हेडमास्टर नाराज हो जाते हैं और घर पर उपस्थित नहीं रहता है तो माँ-वाप अवारा समझते हैं और उसका पढ़ना छुड़ा देते हैं।

पढ़े-लिखे अभिभावक भी हेडमास्टर को यथेष्ट सहायता नहीं करते। शिक्षकों और अभिभावकों के इस मनोमालिन्य के मुख्य तीन कारण हैं—(१) अभिभावकों की अज्ञानता. (२) अभिभावकों की आधुनिक शिक्षाक्रम की अनभिज्ञता. और (३) पढ़े-लिखे लोगों की वेकारी। वहुतेरे संरक्षक तो अपढ़ रहते हैं और शिक्षा के तत्व को समझते ही नहीं। जो पढ़े-लिखे अभिभावक हैं, वे वकील हैं या कोई ऑफिसर, किन्तु शिक्षा की आधुनिक प्रगति से अनभिज्ञ हैं। खेलना स्काउटिंग आदि वेकार समझते हैं और मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक उन्नति को शिक्षा का ध्येय

समझते ही नहीं हैं। तीसरी बात लोग यह समझते हैं कि पढ़-लिख लेने पर भी नौकरी आसानी से नहीं मिलती।

रुपये भी बहुत खर्च होते हैं। आधुनिक सभ्यता के कारण खर्च बढ़ गया है, पढ़ाई पर लड़के कम ध्यान देने लगे हैं सन् १९२० ई० में ६०००० लड़कों ने स्कूल छोड़ दिया और रोते हुए माँ-बाप को छोड़कर इधर-उधर घूमते रहे। उनमें से कितने बेकार हो गये और आजतक बेकारी का जीवन काट रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में माता-पिता स्कूल से उदासीन हो गये हैं।

इधर आर्थिक संकट के कारण लोग स्कूलों में पढ़ाने से जी मोड़ रहे हैं। कुछ शिक्षकों की अन्यमनस्कता ने भी इस भेद की दीवाल खड़ी कर दी है। शिक्षक तो अभिभावक से बात करना अपनी हेठी समझते हैं। तब भला प्रधानाध्यापक कब बातें कर सकते हैं।

अब यह भेद धीरे-धीरे हट रहा है और इनका पारस्परिक सहयोग बढ़ रहा है। यदि शिक्षक इन बातों पर ध्यान दें, तो कुछ लाभ हो सकता है।

१. पाठशाला घर का पूरक है। घर में लड़कों का लालन-पालन होता है। माता-पिता से उनका प्रेम होता है। वे उनकी प्रशंसा की इच्छा करते और उनसे डरते हैं। प्रेम, सुख और जीवन की सुविधाओं के लिये घर उनका प्रिय बन जाता है। शारीरिक और नैतिक भाव का अंकुर घर में ही जमता है। स्कूल में अधिक लड़कों के साथ काम करने से उनका सामाजिक भाव जागृत होता है। दूसरों के साथ मिलकर काम करने की शक्ति बढ़ती है, उनके दोष दूर होते हैं और सहानुभूति, आत्मावलम्बन, स्वार्थ-

त्याग, परोपकारिता और नियमानुकूल आचरण करने की शिक्षा मिलती है।

पाठशाला लड़के को सामाजिक मनुष्य बनाने में सहायक होती है और घर उसको पाठशाला में इस काम के लिये भेज देता है। पाठशाला के अधिष्ठाता शिक्षक हैं और घर के अधिष्ठाता संरक्षक। इनमें कितना पारस्परिक समन्वय रहना चाहिये, अब यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

शिक्षक और अभिभावक

माता, पिता और शिक्षक के सहयोग से पारस्परिक वैमनस्य दूर होता है। लड़के अपने शिक्षक की कड़ाई का बयान अपने माँ-बाप के पास करते हैं और उनके प्रति अपने संरक्षकों को उभाड़ते हैं। दूसरी ओर शिक्षक बालकों के आचरण से यह भ्रान्त धारणा स्थिर कर लेते हैं कि इनके माँ-बाप ऐसे ही दुष्ट स्वभाव के हैं। इस प्रकार की भ्रान्ति आपस के मिलने से दूर हो सकती है, अन्यथा नहीं। लड़के की कलई भी खुल जाती है और जान देकर बालक पढ़ने को बाध्य होता है। 13/9/05

माता-पिता तथा शिक्षकों का पारस्परिक सहयोग विपरीत अवस्थाओं को दूर करनेवाला है। घर की जैसी आवश्यकता होती है, उसी के अनुसार शिक्षा देने से घर के काम में बाधा नहीं पड़ती। माता-पिता की आकांक्षा जानकर कि वे लड़के को डाक्टर बनाना चाहते हैं, इंजीनियर बनाना चाहते हैं, या गृहस्थ बनाना चाहते हैं; उसके अनुसार विशेष लड़कों को विशेष विषय की ओर झुकाना घर के काम का साधक है।

इनका सहयोग स्कूल और घर का सम्बन्ध चिरस्थाई करने

तुल्य अधिकार रक्खूँगा, पर घर पर आपका इसपर दृष्टि रखनी पड़ेगी और इसी में इसका कल्याण है। आवश्यकता पड़ने पर मैं आपसे बातचीत करूँगा और लड़के की भलाई के लिये बराबर आपसे सहयोग करूँगा और इसके विषय में सुनने की इच्छा करूँगा।'

(२) स्कूल के वार्षिकोत्सव के समय लड़कों के माता-पिता को निमंत्रित करना चाहिये कि अभिभावक स्कूल की कार्य्यवाही की जाँच करे। यहाँ शिक्षक और अभिभावक पारस्परिक सहयोग के विषय में वार्त्तालाप करें।

(३) यदि प्रधान शिक्षक लड़के के संरक्षक से नहीं साक्षात् कर सकता है या उसके पास नहीं जा सकता है, तो संरक्षक के यहाँ पत्र लिखकर लड़के का चरित्र बतलाना चाहिये। संरक्षकों के साथ किसी प्रकार की कठिनाई आ पड़ने पर स्कूल की प्रबन्ध-कारिणी सभा से सहायता माँगी जा सकती है। मन्त्री या किसी सभासद् के बीच में पड़ जाने पर या संरक्षक के यहाँ पत्र भेज देने से बालकों का सुधार हो सकता है और संरक्षक की पुरानी चाल बदल सकती है।

(४) प्रधान शिक्षक का बालकों की उन्नति तथा चाल-चलन के विषय में प्रोग्रेस रिपोर्ट के साथ लिख भेजना भी संरक्षक के साथ संबन्ध बनाये रखने और पारस्परिक वैमनस्य दूर करने का प्रधान साधन है। इस प्रोग्रेस रिपोर्ट में सालभर के कार्य्य का ब्योरा रहना चाहिये जिसे देखकर अभिभावक शीघ्र ही सब कुछ जान जाय।

(५) दरबार के दिन या स्कूल के उत्सव के उपलक्ष्य के

अवसर पर शिक्षकों को संरक्षकों के साथ मिलने का अच्छा मौका मिलता है। इन अवसरों पर वालक और उनके अभिभावक शिक्षक के स्वभाव का सामाजिक पक्ष देखते हैं। इससे शासन सरल हो जाता है, लड़कों की उपस्थिति अच्छी होती है और परस्पर भाव-विनिमय होता है।

(६) शिक्षकों को यथासम्भव वालकों के अड़ोस-पड़ोस में रहना चाहिये। इनके गुण का उनपर प्रभाव पड़ता है, प्रशंसा होती है और पारस्परिक प्रेम का भाव जागृत होता है। परस्पर वार्त्तालाप का सुअवसर मिलता है और पारस्परिक योगदान के लिये उत्साह प्राप्त होता है।

(७) सामाजिक उत्सवों में शिक्षक को सम्मिलित होकर वालकों को उत्साहित करना चाहिये। जन्माष्टमी, सरस्वती-पूजा, राम-नवमी, संक्रान्ति, होली, ईद, वड़े दिन आदि के सुअवसर पर शिक्षक और अभिभावक को दिल खोलकर मिलना चाहिये। ऐसा करने से प्रतिष्ठा कम नहीं होती है, वरन् उसकी वृद्धि होती है। वरावर मुँह फुलाकर अपने कमरे में वन्द रहना आजकल के शिक्षा-सिद्धान्त के विरुद्ध है।

वालकों के अभिभावक भी शिक्षकों की सहायता निम्नलिखित रीति से कर सकते हैं।

(१) हरएक संरक्षक का यह एक आवश्यक कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह अपने वालक को प्रतिदिन ठीक समय पर स्कूल भेजे। उन्हें उसको घर के काम में उलझाना या भोजन वनने में देर कर देना वालक की शिक्षा का वाधक है।

(२) किसी भी छुट्टी के वाद स्कूल खुलते ही संरक्षक अपने

बालक को भेज दे। इसमें असावधानी करने से लड़के की पढ़ाई में बाधा होती है और इसका कारण बालक का संरक्षक ही है।

(३) किसी विवाहोत्सव या यज्ञ या तीर्थ-यात्रा के लिये लड़के को स्कूल के काम से रोकना माता-पिता का लड़के के प्रति अन्याय करना है। गर्मी, सर्दी, या पूजा की छुट्टी में ये काम हो सकते हैं, लेकिन इनके लिये छुट्टी लेना लड़कों की हानि करके स्कूल के काम में बाधा उपस्थित करना है।

(४) प्रत्येक अभिभावक को आधुनिक शिक्षा की प्रगति से पूरा अभिज्ञ होना चाहिये। लड़कों की मानसिक, शारीरिक एवं नैतिक उन्नति का खयाल रखते हुए लड़कों को खेल में, स्काउटिङ्ग में और स्कूल के अन्य कार्य्यों में जाने के लिये उत्साहित करना और समय पर भेजना चाहिये।

(५) हरएक संरक्षक का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि उनका लड़का गंदी संगति से दूर रहे और बाजारू लड़कों के साथ न मिले। लड़के स्कूल के बाहर ही रहकर अधिक बिगड़ते हैं। इसमें स्कूल का क्या दोष है? इसके लिये छात्रावासों की संख्या बढ़ रही है। इस क्षेत्र में मिशन शिक्षकों का आदर्श रखकर काम करना चाहिये।

(६) प्रत्येक अभिभावक को यह देखना भी आवश्यक है कि उसका बालक ठीक समय में गृह-पाठ करता है। इस प्रकार काम करने से वह स्कूल का भारी सहायक हो सकता है।

(७) अभिभावक दूसरों से पाठशाला की प्रशंसा करके, प्रधान शिक्षक और अन्य शिक्षकों से शिक्षात्मक बातों की मीमांसा करके और स्कूल के सिद्धान्त का समर्थन करके इसकी अपार सेवा कर सकता है।

संघबद्ध या सामाजिक जीवन
और
विद्यालय का वातावरण

सामाजिक जीवन की शिक्षा विद्यालयों से प्राप्त होती है। सामाजिक शक्ति का विकास स्कूल में धीरे-धीरे होता है। स्कूल का व्यावहारिक वायुमण्डल ऐसा है कि बालकों को विना संकेत के इसकी शिक्षा मिलती है। पहले लड़कों को अपने माता-पिता से प्रेम होता है; फिर अपने घर और महल्ले से और तब फिर अपने स्कूल से। स्कूल को वह अपना ही समझने लगता है। स्कूल की हार से अपनी हार और उसकी जीत से अपनी जीत मानने लगता है। स्कूल के शिक्षक पूज्य पिता के समान पूज्य हैं और सहपाठी भाई हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के कार्य्य के ऊपर श्रेणी की मर्यादा अवलम्बित है। प्रत्येक श्रेणी के कर्त्तव्य के ऊपर विद्यालय की प्रतिष्ठा अवलम्बित है। विद्यालय एक परिवार है जिसके सदस्य छात्र और शिक्षक हैं। यदि एक छात्र अन्याय का कोई काम करता है, तो उस परिवार-भर की हँसी हो सकती है। पाठशाला एक यंत्र है, जिसके पुर्जे यहाँ के छात्र हैं। यदि एक पुर्जा भी गड़बड़ा जाता है, तो वह सारा यंत्र बिगड़ जाता है। यदि एक भी छात्र का चरित्र दूषित होता है, तो उससे संपूर्ण पाठशाला को कलंक लगता है। इस बात को जब प्रत्येक छात्र समझने लगता है, तब किसी विद्या की संस्था का स्वरूप निर्मल होता है।

ऐसी समझ से ही सामूहिक जीवन का विकास होता है।

छात्रावास बरांबर साफ सुथरा रहना चाहिये। छात्रालय की कोठरियाँ और रास्ते प्रतिदिन साफ करके झाड़ू से झड़वानी चाहिये। खिड़कियाँ, दरवाजे और हवा के द्वार बराबर खुले रहने चाहिये कि सूर्य्य का प्रकाश प्रत्येक कमरे में जाय। छात्रावास की नालियाँ बराबर साफ रहनी चाहिये कि मलेरिया या टाइफड के कीड़े उनमें पैठने न पावें। शौचालय और भोजनालय भी बराबर साफ रहें। छात्रावास के निरीक्षक का यह एक प्रधान कर्त्तव्य है कि वे उनको साफ रखने की यथाशक्ति चेष्टा करें।

भोजन के समय निश्चित रहना चाहिये जिससे सब बालकों को ठीक समय में शुद्ध भोजन मिल जाय। भोजन का प्रबन्ध लड़कों के द्वारा करवाना अच्छा है। इससे मितव्ययिता और व्यावहारिकता की शिक्षा मिलती है। प्रत्येक भोजनालय के एक प्रबन्धकर्त्ता, एक कोषाध्यक्ष, एक हिसाब देखभाल करने वाला और एक संरक्षक होना चाहिये। इनका निर्वाचन हर एक महीने के पहले सप्ताह में हो जाना चाहिये और उसकी सूची छात्रावास के निरीक्षक के पास दे देनी चाहिये। एक भोजनालय में अधिक से अधिक १५ और कम से कम १० छात्र रहने चाहिये।

भोजन का निरीक्षण कभी-कभी छात्रावास के निरीक्षक को स्वयं करना चाहिये। यदि मेस के रुपये किसी छात्र के पास न रहकर छात्रावास के निरीक्षक के पास रहें तो बहुत अच्छा है।

छात्रावास के छात्रों के चरित्र पर खूब ध्यान रखना चाहिये।

छात्रावास में विना किसी प्रयोजन के ठहरना अनुचित है। इसका नियन्त्रण शिक्षा-विभाग के द्वारा होना चाहिये। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि अतिथि या संरक्षक आकर छात्रों को बायस्कोप में जाने का प्रलोभन देते हैं। बायस्कोप एक ऐसी संस्था है जो चुपचाप रहकर भी कोमल वृत्तिवाले छात्रों का जीवन दूषित करती है। छात्रों को वहाँ जाने की बहुत कम आज्ञा देनी चाहिये।

छात्रावासों में कभी-कभी धार्मिक साहित्य एवं स्वास्थ्यवर्द्धक उपदेश होने चाहिये जिनसे छात्रों का जीवन उन्नत हो। हर एक छात्रावास में एक छोटा वाचनालय रहना चाहिये जहाँ छात्रालय के लड़के बैठकर पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ें या कोई मनोरंजक खेल भी खेलें।

हर छात्रालय की देख-भाल के लिये एक चिकित्सक निश्चित रहना चाहिये जो लड़कों को रोगाक्रान्त होने पर देखे और उचित औषध दे। चिकित्सक को कभी-कभी भोजनागार एवं शौचालय का निरीक्षण करना चाहिये। नाम लिखाने के समय हर एक छात्र को स्वास्थ्य-पत्र (Health-card) लेकर आना चाहिये नहीं तो डाक्टर की अनुमति के विना छात्रावास में रहने देना अनुचित है।

यदि शिक्षक और निरीक्षक का काम सहानुभूति-पूर्ण है, छात्रावास में खाने और रहने का पूरा प्रबन्ध है, शुद्ध भोजन और जलपान नियमानुसार प्रति दिन मिल जाता है, विनोद और खेल की पर्याप्त सामग्री छात्रावास में रक्खी हुई है, तो कोई भी विचारवान् अपनी भलाई चाहनेवाला बाहर जाने की इच्छा न

करेगा और बाजार की चीजों से घृणा करेगा। सामाजिक उन्नति का भाव छात्रावास से दृढ़ होता है और इसका पूरा अभिव्यञ्जन खेल में देखा जाता है।

खेल और व्यायाम

शासन का उत्तम साधन खेल है। इससे स्वास्थ्य और शरीर ही उन्नत नहीं होता है, चरित्र और नैतिक विचारों का विकास भी होता है। खेल से समाज के लिये दान करने का भाव पुष्ट होता है। खेलने में ही बालक का व्यक्तित्व प्रकट होता है। जब वह खेलता है तब अपना उमंग प्रकट करता है। जो लोग यह कहते हैं कि खेल में अंग-भंग हो जाता है, लड़के खिलाड़ी हो जाते हैं, उनकी यह धारणा गलत है।

खेल में नाक-कान का कट जाना अच्छा है, लड़कों का खिलाड़ी होना अच्छा है, लेकिन एकान्त में बैठकर सड़ी-गली बातों को सोचते रहना अथवा कुसंगति में पड़कर बाजार में घूमना अच्छा नहीं है। खेलना पाशविक वृत्ति का उद्गार है। खेलने की शिक्षा बालकों को व्यावहारिक क्षेत्र के लिये दक्ष बनाती है। खेलने से नैतिक उन्नति के साथ सूक्ष्म विचार की शक्ति बढ़ती है। खेल से इन्द्रियों का साधन होता है, उद्दण्ड और अहंकारी भाव प्रशान्त होते हैं, कल्पना-शक्ति का विकास होता है।

खेल ड्रील का अंग होता है और अपराह्नकाल में स्वतन्त्र रूप से भी खेला जाता है। ड्रील में प्रधान व्यक्ति का शासन रहता है। ड्रील मास्टर लड़कों को नियत खेलों और कसरतों के लिये तैयार करता है। ड्रील से आदेश की शीघ्रता समझने और मन तथा शरीर को अनुकूल बनाने की शक्ति प्राप्त होती

है। इससे मन और शरीर दोनों सध जाते हैं और जिनसे समाज और देश की भलाई होती है। प्रत्येक स्कूल में खेल की व्यवस्था रहती है। इसलिये विद्यालय के कार्य्यक्रम में इसका भी उचित स्थान रहना चाहिये। खेल सुसंगठित तथा सुनियमित होने चाहिये। प्रातःकाल की अपेक्षा अपराह्नकाल इसके लिये अधिक उपयुक्त है। नियमित खेलों का तात्पर्य उन खेलों से है जो शान्ति और स्थान के निमित्त किसी प्रकार की प्रणाली के रूप में परिवर्त्तित कर दिये गये हों। छोटे-छोटे बच्चों के लिये जो सायंकाल में स्कूल नहीं आ सकते हैं, विश्राम (Recess) काल में खेलने का प्रबन्ध करना चाहिये। उन खेलों का प्रचार मिडल तथा हाई स्कूलों में विशेष रूप से होना चाहिये, जिनमें पैसे का खर्च बहुत कम हो। देशी—किन्तु नियमित—खेलों का प्रचार सुगमता से किया जा सकता है।

हार-जीत वाले खेल की भी व्यवस्था होनी चाहिये। अन्तर्विद्यालयिक तथा वार्षिक खेलों से बहुत भलाई होती है। दौड़ना, ऊँचा कूदना आदि खेलों से बालकों को प्रचुर शारीरिक शिक्षा मिलती है। इनकी समुचित शिक्षा होने से अपार लाभ हो सकता है। पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त में प्रचलित कसरतों के सदृश पट्टा-बनैठी भाँजने, कुश्ती लड़ने तथा 'पैरेलेल बार' आदि कसरतों का अभ्यास हाई स्कूलों में कराया जा सकता है।

खेल में निरीक्षक का रहना जरूरी है। एक विशेष शिक्षक की व्यवस्था रहनी चाहिये जो खेल, कसरत, स्काउटिंग और जिमनास्टिक देखे। व्यायाम-शिक्षक के रहने से किसी प्रकार का उपद्रव नहीं हो सकता। खेल में किसी शिक्षक के उपस्थित रहने

नाना प्रकार के खेल खेल सकें, दौड़ सकें और शुद्ध हवा पा सकें। यह छात्रावास के समीप या स्कूल के हाते में ही होना चाहिये। विचार से यह सिद्ध हुआ है कि हर १०० लड़कों के लिये १०० गज लम्बा तथा ८० गज चौड़ा मैदान रहना चाहिये।

शासन और दण्ड

विद्यालय की शिक्षा का केवल यही उद्देश्य नहीं है कि लड़के विद्वान् और बलवान् हों, वरन् यह भी उद्देश्य है कि वे सुशील, सुचरित, विनयी, नम्र, कार्य्यपरायण, परिश्रमी और मितव्ययी हों। इस प्रकार का परिणाम पाठशाला के सुशासन का हो सकता है। यदि शिक्षक और शिष्य का ठीक शाब्दिक अर्थ भी जाना जाय, तो यह मालूम होगा कि शासन-प्रणाली की आवश्यकता बिल्कुल ही नहीं है।

शिक्षक का आदर्श

'शिष्य' शास् धातु से निकला है और उसका अर्थ शासन करने योग्य और शासित किया हुआ हो सकता है। शिक्षक को यह व्यापक अर्थ समझना चाहिये। शिक्षक को स्वयं अपना शासन भी करना चाहिये। उसे आदर्श शासक होने के लिये सत्यपरायण, परिश्रमी, न्याय-प्रिय, निष्पक्ष, दयालु, आत्मसंयमी, आत्मावलम्बी एवं परिश्रमी होना चाहिये।

शासन का वही आदर्श है जहाँ उसका भार शिष्यों को मालूम न पड़े। उन्हें किसी प्रकार का बोझ न मालूम हो और वे नियम का ध्यान रखते हुए कार्य्य करें। शासन में जब किसी प्रकार की कड़ाई की जाय, बहुत भार रख दिया जाय, ऊपर से नियम के बोझ डाल दिये जायँ, तो यह समझना चाहिये कि विद्यालय

रूपी यन्त्र में कोई गड़बड़ी है। शासन आवश्यक शस्त्र है, किन्तु यह शस्त्र विद्यालय की कुरीतियों को दूर करने के लिये निर्मित है। यह चिकित्सक की उस छुरी के समान है, जो विस्फोटक होने पर प्रयोग में लाई जाती है।

लोगों की यह भ्रान्त धारणा चली आ रही है कि शिक्षण और शासन साथ-साथ चलते हैं। शिक्षणशीलता का परिणाम सुशीलता है। लेकिन व्यवहार में इसके विरुद्ध भी बात पाई जाती है। जो लड़का मेधावी और तीव्रधी हो, उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह सुशील भी हो। देखा गया है कि पढ़ने-लिखने में अच्छे लड़के भी उद्धत और उच्छृंखल होते हैं। वे आज्ञानुवर्त्तिता, कालानुवर्त्तिता एवं सुशीलता से नितान्त विहीन होते हैं। उन्हें वश में रखकर कार्य्यपरायण बनाना शिक्षक का प्रधान कर्त्तव्य है। उन्हें समझा-बुझाकर कार्य्य में तत्पर कराना और आज्ञानुवर्ती बनाना शिक्षक की चातुरी पर निर्भर है।

शासन करनेवाले शिक्षक को शिष्य के आरम्भिक अन्तःक्षोभ और स्वाभाविक वृत्तियों का ज्ञान रखना बहुत आवश्यक है। मनोविश्लेषणशास्त्र के विद्वानों ने इस बात को उदाहरणों द्वारा बतलाया है कि अन्तःक्षोभों की बुरी शिक्षा होने से पीछे लड़के कैसे बिगड़ जाते हैं और उन्हें सुधारना कितना कठिन हो जाता है। अत्यन्त भय, लज्जा, संकोच, डाह, ईर्षा और क्रोध के दुरुपयोग से लड़के इतने बिगड़ जाते हैं कि उनका सुधारना कठिन हो जाता है। यह मनोविज्ञान का विषय है, इसलिये इसको यहीं छोड़ देते हैं, किन्तु यह अवश्य ध्यान में रहे कि उचित शासन के लिये बालाध्ययन की समीक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

अच्छे शासन के निम्नलिखित रूप हैं—

(१) आज्ञानुवर्त्तिता, (२) अच्छा स्वास्थ्य, (३) उपकारी अभ्यास, (४) निश्चल परिश्रम, (५) ध्यान और (६) उचित नियम पद्धति।

बालकों के स्वभाव की परीक्षा कर उनमें अच्छे अभ्यास डालना चाहिये। निरन्तर आवृत्ति करने से अच्छे अभ्यास भी दृढ़ हो जाते हैं। अच्छे अभ्यासों के उद्गम, परिपाक एवं मनोहर प्रतिफल के लिये वायुमण्डल अनुकूल होना चाहिये। अच्छे अभ्यासों के पालन के लिये उत्साहवर्द्धक सामग्रियाँ रहनी चाहिये।

शासन के लिये सत्यवादिता, न्यायपरायणता, सरलता, परोपकारशीलता, नम्रता, संयमशीलता, सुशीलता और शिष्टता का व्यवहार आवश्यक है। ये व्यवहार अनुकरण और नियम-पद्धति के अनुकूल होने चाहिये।

बालकों में ध्यानाकर्षण के लिये उत्सुकता, पाठ्य-परिवर्त्तन, सौन्दर्य्यानुभूति, सहानुभूति, शक्ति का ज्ञान, स्पर्द्धा, प्रसन्नता, दण्ड का भय और पारितोपिक की आशा जागृत करने का यत्न करना चाहिये। शासन में सफलता प्राप्त करने के लिये शिक्षक की योग्यता एवं पढ़ाने की कला मालूम रहनी चाहिये। वह अपने विपय का केवल पण्डित ही नहीं हो, वरन् पढ़ाई को रोचक भी बना सकता हो।

शासन का अभिप्राय विद्यालय में शान्ति स्थापित करना है जिससे विद्यालय-यन्त्र ठीक से संचालित होता रहे और कार्य्य में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। हेडमास्टर के साथ अन्य शिक्षकों का भाव और प्रेम बना रहे। हेडमास्टर की आज्ञा का पालन करने

देकर औरों का अपकार करता है। शिक्षा-मंदिर के अनाचारियों के प्रति क्षमा कायरता है, दया निर्बलता है और अनवधानता व्यभिचार की जननी है।

श्रेणी-शासन के लिये शिक्षक को गम्भीर भाव से श्रेणी में प्रवेश करना चाहिये। लड़कों के हृदय में उसे ऐसा भाव उत्पन्न करना चाहिये कि वह कोई गम्भीर कार्य्य करने जा रहा है। उनका ऐसा व्यवहार होना चाहिये कि लड़के उनसे भय, भक्ति और श्रद्धा करें।

शासन और दण्ड

शासन करने का एक हथियार जीभ भी है। जीभ और बोली से भी विद्यालय में शान्ति स्थापित होती है। कितने सुयोग्य प्रधान शिक्षक अपनी कड़ी बोली से शासन करते देखे गये हैं; किन्तु जहाँ बोली और उपदेश से भी विद्यालय में शान्ति रहती है, वहाँ भी दण्ड देने की आवश्यकता पड़ती है। दुष्ट-प्रकृति के कुछ छात्र प्रत्येक विद्यालय एवं छात्रावास में रहते हैं, जिन्हें दण्ड दिये बिना स्कूल का काम सुव्यवस्थित रूप से चल ही नहीं सकता। दण्ड देने से कष्ट होता है, लेकिन उसी कष्ट के द्वारा काम कराया जाता है।

छात्र अपनी भलाई-बुराई का ज्ञान ठीक नहीं रखते हैं। इसलिये उन्हें दण्ड देकर ठीक रास्ते पर लाना प्रत्येक शिक्षक का कर्त्तव्य है। इससे विद्यार्थियों को लाभ होता है और इस दण्ड के अच्छे परिणाम का अनुभव पीछे चलकर वे स्वयं करते हैं।

शिक्षकों को एकान्त में ही दण्ड देना उचित है। इसका प्रभाव अच्छा होता है। सब के सामने दण्ड देने से लड़के

तीसरे को छड़ियों से पीटा। छात्रावास के निरीक्षक ने प्रधान शिक्षक से एक ही अपराध के लिये तीन व्यक्तियों को तीन भिन्न-भिन्न दण्ड देने का कारण पूछा। प्रधान शिक्षक ने उनसे कहा कि पता लगाइये कि वे लोग इस समय क्या कर रहे हैं। पता लगाने पर मालूम हुआ कि जिसको प्रधान शिक्षक ने एकान्त में समझाया था वह शोक के मारे ज्वराक्रन्त हो गया है। दूसरा लज्जा के मारे दो दिनों से ठीक से खा नहीं रहा है और तीसरा, जिसकी पीठ पर छड़ियाँ बजी थीं, भाँग खाकर सिनेमा में बैठा हुआ है।

सहायक शिक्षक को तब यह खयाल हुआ कि दण्ड देते समय बालकों के स्वभाव, आयु और शक्ति का अवश्य विचार करना चाहिये। कोई लड़का डाँटने से मान जाता है। कोई इतना कठोर है कि छड़ी की मार सहता है। किसी का व्यवहार पहले से अच्छा होते आया है, तो किसी का खराब, कोई रोगी है और कोई बलवान्। इसलिये इन बातों का विचार कर शिक्षक को दण्ड देना उचित है।

दण्ड देने का अधिकार उसी को है जिसने लड़के की उन्नति का भार अपने ऊपर लिया है! माता, पिता एवं प्रधान शिक्षक को ही दण्ड देना उचित है। विद्यालय में विशेषकर उच्च और मध्य विद्यालयों में प्रधान शिक्षक को ही दण्ड देने का अधिकार रहना चाहिये। यदि कोई दूसरा शिक्षक भी दण्ड दे, तो प्रधान शिक्षक के बिना आदेश से दण्ड देना विशेषतः शारीरिक दण्ड देना विद्यालय में एक नया काण्ड मचाना है। शिक्षकों को लड़के के प्रति सहानभूति रखने पर भी दण्ड से विचलित नहीं होना

चाहिये, किन्तु हेडमास्टर से बिना परामर्श लिये यह काम कर देना अपने को खुद खतरे में डाल देना है।

लड़के का अपराध देखकर दण्ड देना चाहिये। भयंकर अपराध देखकर भी क्रोध को रोकना चाहिये और उस आवेश में दण्ड देना अनुचित है। क्रोध की दशा में दण्ड देने से दण्ड-कर्त्ता एवं छात्र दोनों की बड़ी बुराई हो सकती है। लड़कों के सम्मान और प्रतिष्ठा का खयाल करके दण्ड-प्रदान करना चाहिये। अपराध के अनुकूल दण्ड का विधान होना चाहिये। कहीं आर्थिक दण्ड की आवश्यकता होती है और कहीं शारीरिक। इन बातों को विचार कर दण्ड दिया जाय तो अच्छा हो।

दण्ड-विधान के लिये विद्यालय में यह निश्चित रहना चाहिये कि अमुक अपराध के लिये अमुक दण्ड है। ऐसा करने से विद्यार्थी दंड पाने के भय से वैसा काम नहीं करेंगे। विद्यार्थियों के पश्चात्ताप एवं अन्य लड़कों के सुधार के लिये दण्ड अपराध के बाद ही देना चाहिये। आज के दोष के लिये चार पाँच-दिन तक रोके रहने से दण्ड प्रभाव-हीन हो जाता है।

इन बातों के अतिरिक्त विद्यालय की परिस्थिति, समाज की दृष्टि एवं समय की गति को देखकर दण्ड-प्रदान करना उचित है। जिस दण्ड से नाना प्रकार के काण्डों के बढ़ने की सम्भावना हो, उस दण्ड को प्रधान शिक्षक कभी काम में न लावें। दण्ड देनेवालों को क्षमा का भी प्रयोग करना चाहिये। दयापूर्ण न्याय, न्यायपूर्ण दण्ड और दंडपूर्ण शासन विद्यालय के संचालन का मूल मंत्र होना चाहिये। जिस प्रधान शिक्षक ने दण्ड,

न्याय और दया की कला जान ली है, वह अपने कार्य में बराबर सफल रहेगा।

दण्ड तीन प्रकार के बतलाये गये हैं—मानसिक, आर्थिक एवं शारीरिक। मानसिक दण्ड, जैसे लजाना; आर्थिक दण्ड, जैसे जुर्माना करना; और शारीरिक दण्ड, जैसे बेंच पर खड़ा करना, बेंत मारना इत्यादि कहे गये हैं। शिक्षाशास्त्र के विद्वानों ने नौ प्रकार के दण्ड बतलाये हैं—

(१) लड़कों का यह स्वभाव है कि वे अपने शिक्षक को प्रसन्न रखना चाहते हैं। थोड़े से हल्के दोषों पर शिक्षक को दोषी लड़के से अन्यमनस्क हो जाना चाहिये।

(२) दूसरे प्रकार का दण्ड लज्जा उत्पन्न कराना है। विवेकी, विचारवान्, और सयाने लड़कों को लजाना ही दण्ड देना है। इससे बहुत लाभ होता है। यदि इसमें लाभ न दिखलाई दे तो और दण्ड काम में लाया जा सकता है।

(३) तीसरा दण्ड डाँटना है। लड़कों के दोष देखकर झिड़क देना चाहिये। पहले-पहल अपराधी को झिड़क देने से लाभ होता है। यदि इससे लाभ न दिखलाई दे, तो और दण्ड काम में लाया जा सकता है।

(४) चौथा दण्ड विद्यार्थियों को खेलकूद आदि आनन्द-दायक कार्य्यों से वञ्चित करना है। जर्मनी, जापान, स्काटलैंड आदि देशों में इस दण्ड का बहुत प्रचार है।

(५) स्कूल के समय के बाद रोकना भी एक भारी दण्ड है। स्कूल के समय से देर कर आने, गृह-पाठ नहीं याद करने से यह दण्ड देना उचित है।

(६) शिक्षक की अवज्ञा करने या पाठ न याद करने के लिये गुरुतर गृह-कार्य्य का दण्ड देना चाहिये। हस्तलिपि यदि एक पृष्ठ नहीं लिखो तो उसे 'तीन पृष्ठ लिखकर लाना होगा' ऐसा कहना चाहिये।

(७) इसके बाद अर्थदण्ड है। अर्थदण्ड के समय यह विचारना चाहिये कि इस दोष में उसका अभिभावक दोषी है या नहीं। अभिभावक को अर्थदण्ड की सूचना मिल जानी चाहिये। ऐसा करने से अभिभावक भी लड़के का दोष दूर करने में कटिबद्ध हो जायँगे।

(८) आठवाँ दण्ड बेंत मारना है। इसका प्रयोग प्रधान शिक्षक को ही करना चाहिये। बेंत सिर से नीचे ही मारना अच्छा है। पीठ, हथेली या चूतड़ पर बेंत मारना ठीक है। बेंत बहुत जोर से मारना अनुचित है। बेंत जोर से चलावे, पर धीरे-धीरे मारना ही लाभदायक है। क्रोध के आवेश में कभी बेंत नहीं चलाना चाहिये।

(९) नवाँ दण्ड क्लास से निकाल देना है। किसी लड़के के श्रेणी में रहने से यदि श्रेणी की पढ़ाई में बाधा पड़ती हो, तो उसे क्लास से निकालना उचित है।

दण्ड देने के समय प्रधान शिक्षक को यह देखना चाहिये कि इससे लाभ होता है या नहीं। दण्ड के उपयोग करने में शिक्षक की पटुता प्रकट होती है। उदाहरण के लिये दण्ड देना, रोक रखना या विद्यालय से निकाल देना, ये मुख्य दण्ड के रूप हैं। बालकों को स्कूल में रोक रखने पर उन्हें उचित—परन्तु निश्चित—काम देना चाहिये।

रोके हुए लड़कों को ऐसे कड़े शिक्षक के अधीन रखना चाहिये जो ठीक से निश्चित काम ले सके। किन्तु प्रतिदिन एक ही, दो ही या तीन ही शिक्षक को यह काम देना उनको कष्ट प्रदान करना है ! पढ़ने-लिखने या किसी अंश को याद करने के बदले उनसे व्यायाम कराया जाय तो अधिक उपकार हो सकता है। अर्थदण्ड देने के समय शिक्षक को इस बात का अवश्य विचार करना चाहिये कि अपराध में लड़के के संरक्षक का कितना दोष है ! यदि संरक्षक इस दोष को दूर कर सकता है, तो उसके यहाँ लिखकर संशोधन करना अच्छा है। यदि ऐसा करने से कुछ लाभ नहीं दीख पड़े, तो अर्थ-दण्ड देना उचित है। ऐसा दण्ड देने के समय प्रधान शिक्षक बालकों की शक्ति, अवस्था और स्वभाव का भी विचार कर ले।

आज्ञा-भंग करना, धोखा देना, दूसरों पर झूठा लाञ्छन लगाना, झूठा बहाना करना आदि अपराधों के लिये शारीरिक दण्ड देना उपयुक्त है। आपस में मारपीट करना, गाली-गलौज करना, शिक्षक की अवज्ञा आदि अपराधों के लिये भी शारीरिक दण्ड देना चाहिये। यदि इन दण्डों से लड़के का सुधार न हो सके, तो लड़के को विद्यालय से निकालना चाहिये। निकालने के पहले थोड़े दिनों के लिये विद्यालय में आने से रोक रखना (Suspension), विद्यालय में किसी और लड़के से बोलने नहीं देना आदि दण्डों का प्रयोग कर लेना चाहिये।

शारीरिक दण्ड देने या बहुत आर्थिक दण्ड देने या कुछ दिनों तक स्कूल में नहीं आने देने या स्कूल से निकालने के पहले लड़के के अभिभावक को इसकी सूचना दे देनी चाहिये।

के साथ प्रत्येक श्रेणी में घूम जाय और श्रेणी-शिक्षक से पूछता जाय कि किसने इस हफ्ते में पाठ नहीं याद किया है। किसने श्रेणी-शान्ति में बाधा पहुँचाई है और अपराधी को दण्ड देता निकले, तो इससे भी बहुत लाभ हो सकता है।

श्रेणी-नायकों के पास यदि एक किताब रहे और उस किताब में सात दिनों के भीतर किस लड़के ने क्या दोष किया है, उसका ब्योरा वह लिखा करे और हर शनिवार को हेडमास्टर को दिखलाया करे और उसके अनुसार विचार करके प्रधान शिक्षक दण्ड प्रदान करे, तो महान् लाभ होगा। अनुभव से देखा गया है कि इन दो प्रणालियों से शासन में खूब सहायता मिलती है।

विद्यालय की शान्ति के लिये शासन आवश्यक है। इसके ठीक रहने से स्कूल का काम भी ठीक ढंग से चलता है। अन्य शिक्षकों को इसके लिये बहुत यत्न नहीं करना पड़ता है। यह प्रधान शिक्षक का व्यक्तित्व है जो ऐसा शासन विद्यालय में रखता है। शासन करने के लिये बहुत नियमों का निर्वाचन ठीक नहीं। नियम जितने ही कम हों, अच्छा है।

किन्तु एक बार जब नियम बना दिये गये हैं तब फिर उनके अनुसार काम करना आवश्यक है। दृढ़ता और निर्विकार रूप से इसका प्रयोग होना चाहिये। शासन-सिद्धान्त की विवेचना करते समय यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये कि शिक्षक और छात्र तीन गुणों के होते हैं—सात्विक, राजस और तामस। गुणों के स्वभाववाले लोग प्रत्येक स्थान और प्रत्येक विभाग में पाये जाते हैं। उनके साथ व्यवहार करना उनके गुणों को जानना है। बिना गुण की परीक्षा किये हुए दण्ड-विधान करना

भूल है। इस बात पर ध्यान देकर यदि शासन किया जाय तो अच्छा है।

जिस प्रकार का शासन इंगलैंड में होगा उस प्रकार का शासन हिन्दुस्तान में नहीं होगा। जैसा व्यवहार पंजाब में किया जायगा, वैसा बंगाल में नहीं। जैसी स्थिति कौलेज की रहती है वैसी स्थिति हाई स्कूल की नहीं। जैसा वायुमण्डल हाई स्कूल का रहता है, वैसा मिडूल स्कूल का नहीं। प्रारम्भिक पाठशालाओं में न अधिक शासन करने के सामान की आवश्यकता है और न वहाँ उपयोग ही है। किशोरावस्था ही उपद्रव का समय है। इसलिये इस अवस्था के विद्यार्थियों के साथ व्यवहार करना बहुत बड़ा कौशल है और बहुज्ञतापूर्ण भी। शासन का रूप न्याय है। न्याय के दो पहलू हैं—'दण्ड' और 'दया'। प्रधान शिक्षक का ऐसा आचरण होना चाहिये जिससे छात्रों को सुन्दर आदर्श मिले और लड़कों में दया आदि सद्वृत्तियों का प्रचार हो।

पुरस्कार

पुरस्कार तथा पारितोषिक का विषय बड़ा जटिल है। इसके विपक्ष एवं पक्ष में अनेक मन्तव्य पाये जाते हैं। यह मनुष्य-जीवन एक संग्राम है, जिसमें मनुष्य उच्चपद अथवा अधिक धन प्राप्त करने की अभिलाषा करता है। इनकी प्राप्ति के लिये सचेष्ट होना एवं स्पर्द्धा जागृत करना पारितोषिक का सिद्धान्त जान पड़ता है।

पारितोषिक

जब तक मानवी-प्रकृति है, तब तक इस जीवन में होड़ मची हुई है। जब तक मनुष्य सांसारिक अभिलाषाओं का सेवक है, तब तक स्पर्द्धा उसकी सहचरी है। इस दशा में पुरस्कार के

मन्तव्य की अवहेलना नहीं की जा सकती है। यह मनुष्य का चिर सहचर है और विद्यार्थियों को अपने कार्य्य में उत्साह प्रदान करता है।

लड़कों के उत्साह बढ़ाने, अपने नियत कार्य्य को यथाविधि सम्पादित करने और आरम्भ में कर्त्तव्य-ज्ञान के लिये पारितोषिक देने का उद्देश्य है। छोटे-छोटे बालकों में कर्त्तव्य-ज्ञान और नैतिक भाव का अभाव रहता है। इसलिये छोटे बच्चों को आनन्द-पूर्वक कर्त्तव्य-पालन करने और उन्हें उनका ज्ञान देने के लिये इसकी आवश्यकता पड़ती है।

किसी प्रशंसनीय गुण की स्वीकृति या किसी महान् कार्य्य में उत्साह प्रदान के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। जब बालक यह समझता है कि अमुक कार्य्य करने से इतना पारि-तोषिक मिला है, तब वह और आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है और अपने काम में उत्तमता दिखलाता है।

पारितोषिक देने से यदि विरोध का भाव उत्पन्न होता है तो पारितोषिक नहीं देना चाहिये। जब कई लड़कों के बीच एक या दो को किसी विशेष गुण के लिये पारितोषिक दिया जाता है, तो और लड़के उनसे डाह करने लगते हैं। इसलिये इस अवगुण को उत्पन्न नहीं होने देकर पारितोषिक वितरण को प्रधान शिक्षक अपने हाथ में ले।

पारितोषिक पाने की इच्छा प्रत्येक व्यक्ति में रहती है। आत्म-प्रशंसा की मनोवृत्ति मनुष्य मात्र में स्वाभाविक है। पुरस्कार प्रदान से यह जागृत होती है, अतः इसका प्रयोग वाञ्छनीय है। पारितोषिक पाने से प्रशंसा होती है, सम्मान

मिलता है और आनन्द प्राप्त होता है, इसलिये विद्यार्थी तथा छात्रों के अभिभावक इसे पाने की चेष्टा करते हैं। कभी-कभी किसी बालक के पिता इसके लिये कोशिशें भी करते हैं, लेकिन यह अवाञ्छनीय है। इसको रोकना चाहिये।

स्वाभाविक गुण के लिये सदा पुरस्कार देना अच्छा नहीं है। सुशीलता, परिश्रम तथा उद्योग के लिये पुरस्कार देना समाज के लिये लाभदायक है। उपस्थिति, चरित्र, उन्नति और खेल के लिये पुरस्कार देना उचित है। उपस्थिति के लिये पुरस्कार देने से कालानुवर्त्तिता की शिक्षा प्राप्त होती है। लड़के साल भर यथाशक्ति स्कूल जाने की चेष्टा करते हैं। यह साल भर के काम का फल है। इसमें विद्यार्थी की चेष्टा, उद्योग, परिश्रम और स्वभाव का पता चलता है। कालानुवर्त्तिता की शिक्षा सब कामों की जड़ है। इससे स्कूल का शासन ठीक रहता है, विद्यालय की मर्य्यादा बढ़ती है और उसका पद भी ऊँचा होता है।

जहाँ इसके लिये पुरस्कार नहीं दिया जाता है, वहाँ का शासन ढीला पाया जाता है। यदि प्रधान शिक्षक लड़कों को उपस्थिति में बिना पुरस्कार प्रदान किये ही कालानुवर्त्तिता का भाव उत्पन्न कर सकता है, तो वह उत्तम है, लेकिन इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि समयानुवर्त्तिता के लिये उत्तम उपस्थिति का पुरस्कार भी एक साधन नहीं है। इस पुरस्कार के लिये कभी-कभी बालक रोगी होने पर भी स्कूल आने का हठ करते हैं; इससे रोकना चाहिये और समझाना चाहिये कि शरीर भी एक अमूल्य वस्तु है। उत्तम उपस्थिति के लिये

प्रशंसा-पत्र देना भी वेजा नहीं है। श्रेणी का अगुआ बनाकर भी इसका उपयोग किया जा सकता है।

आचरण के लिये भी पुरस्कार देना अच्छा है। इसमें पदक देना भी अच्छा समझा जाता है। आचरण के निर्णय करने में प्रधान शिक्षक को बहुत छान-बीन करनी चाहिये। यह एक गम्भीर विषय है। खूब पता लगाकर, श्रेणी-शिक्षक से राय लेकर और साल भर का व्यवहार देखकर इस विषय पर पुरस्कार देना अच्छा है। बाहरी तड़क-भड़क, फुर्ती और चलते-पुर्जे की कार्रवाई देखकर आचरण का निर्णय करना कठिन है।

कभी-कभी शान्त, गम्भीर और निर्दोष बालकों का पता लगाना कठिन हो जाता है। वे चुपचाप से शान्तिमय जीवन व्यतीत करते हैं; और उनका जीवन सच्चा होता है। ऐसे को भी पुरस्कार देना चाहिये। जिस बालक का आचरण शुद्ध पाया गया हो, उसको छात्रावास का नायक बनाना चाहिये। छात्रावास के नायक का कार्य्य बड़ा दायित्वपूर्ण है और किसी वञ्चक, आडम्बरी और धूर्त्त बालक को इसका भार समर्पण करना भूल है। आचरण की सत्यता पर स्कूल की मर्य्यादा कायम रहती है। आचारनिष्ठ प्रधान शिक्षक के आचरण का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है।

आचरण की भाषा सदैव मौन रहती है। इसमें नाम मात्र के लिये भी आडम्बर नहीं है। यह सभ्याचरण सदा मौन रहने-वाला है। नम्रता, दया, प्रेम और उदारता सब-के-सब आचरण की सत्यता के मौन व्याख्यान हैं। मनुष्य के जीवन पर मौन

आवश्यक और उपयोगी वस्तु है। इससे काम करने में उत्तेजना मिलती है और उसमें मन लगता है।

पुस्तकालय

पुस्तकालय विद्यालय का एक प्रधान अंग और शिक्षा का एक प्रधान साधक है। गम्भीर और चिरस्थायी विचार करने की सामग्री वाचनालय से प्राप्त होती है। वाचनालय ही सरस्वती का मन्दिर है। पुस्तकालय के साथ ही वाचनालय रहना चाहिये। पुस्तकालय के द्वारा ज्ञान-वृद्धि होती है। पढ़ने की रुचि बढ़ती है और विद्या में अनुराग होता है। विद्यार्जन करने का इसके समान दूसरा साधन नहीं है।

वाचनालय
पुस्तकालय

पुस्तकालय की व्यवस्था प्रत्येक विद्यालय में रहनी चाहिये। छोटा विद्यालय हो या बड़ा, इसकी आवश्यकता हर जगह रहती है, किन्तु दूसरों को दिखलाने के लिये पुराने उपन्यासों से पुस्तकालय को भरना बुरा है। इसमें उपयोगी पुस्तकें रहनी चाहिये।

शिक्षा-सम्बन्धी, बाल मनोविज्ञान-सम्बन्धी एवं शिक्षा-प्रणाली-सम्बन्धी पुस्तकें रखना निहायत जरूरी है। पाठ्य पुस्तकों के साथ-साथ सहायक पुस्तकें भी रहनी चाहिये। इससे शिक्षक को लाभ होता है। शिक्षक की दृष्टि बढ़ती है। इनका ज्ञान बढ़ता है। पढ़ाने की विशेष सामग्री हाथ लगती है। पढ़ाने की कला में प्रवीणता प्राप्त होती है।

विद्यार्थियों के लिये भी छोटी-छोटी मनोरञ्जक किताबें रहनी चाहिये। आदर्श उपन्यास, प्रसिद्ध नाटक और उत्तम काव्य रहने चाहिये जिन्हें पढ़कर बालक लाभ उठा सकें।

जासूसी उपन्यासों से उत्तेजना प्राप्त होती है। ऐतिहासिक कहानियों से शिक्षा और उत्साह मिलते हैं। भौगोलिक वर्णनों से ज्ञान की वृद्धि होती है। काव्यों के अध्ययन से सुरुचि उत्पन्न होती है। इसलिये पुस्तकालय में इनका प्रबंध रहना चाहिये।

प्रधान शिक्षक और पुस्तकालयाध्यक्ष की यह चेष्टा होनी चाहिये कि शिक्षक और छात्र पुस्तकालय की पुस्तकों का खूब उपयोग करें। पुस्तकों को घर ले जाकर एवं पुस्तकालय में बैठकर पढ़ने की भी व्यवस्था रहनी चाहिये। इसके लिये पहले ही कार्ड छपवा लेना चाहिये। स्कूल के वाचनालय में बैठकर पुस्तकों के पढ़ने तथा घर ले जाने के भिन्न-भिन्न कार्ड रहने चाहिये। विद्यालय का पुस्तकालय यदि उपयोगी पुस्तकों से सम्पन्न नहीं हो, तो पास के सार्वजनिक पुस्तकालय से भी सहायता ली जा सकती है। वहाँ जाकर छात्र पढ़ सकते हैं और अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकते हैं।

पुस्तकालय में शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकों को अवश्य रखना चाहिये। हिन्दी में प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, सुदर्शन आदि के उपन्यास तथा नाटक रक्खे जायँ तो शिक्षकों और विद्यार्थियों को समान लाभ हो। आधुनिक कवि मैथिलीशरण, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी आदि की कविताओं का संग्रह रहे, तो हिन्दी के लिये बड़ा लाभ हो।

इतिहास और भूगोल की कई अच्छी-अच्छी किताबें निकली हैं उनका संग्रह रहना चाहिये। साधारण ज्ञान के लिये हिन्दी विश्वकोष, शब्दसागर एवं ज्ञान की किताबें (Book of Knowledge) बहुत उपयोगी हैं।

अँगरेजी में बहुत-सी उपयोगी और ज्ञान बढ़ानेवाली किताबें निकली हैं। उनका संग्रह रहना चाहिये। हाई स्कूलों में भी, देखा जाता है कि, कितनी व्यर्थ किताबें रक्खी जाती हैं जिनसे न शिक्षकों को कुछ लाभ है और न छात्रों को। अच्छी १००० किताबें रखना अच्छा है और गन्दी व्यर्थ की १०००० किताबें रखना ठीक नहीं है। अच्छी किताब से १० पृष्ठ पढ़ना व्यर्थ की ५० किताबों के पढ़ने के बराबर है। पढ़ना, अध्ययन करना और पुस्तकालय से लाभ उठाना सिखाना प्रत्येक शिक्षक का कर्त्तव्य है।

दैनिक सम्मेलन (Assembly)

विद्यालय के कार्य्य प्रारम्भ होने के पहले शिक्षकों और छात्रों को प्रत्येक दिन मिलना चाहिये। जैसे यदि विद्यालय का काम १०½ बजे से आरम्भ होता है तो १० बजे तक एक टुन-टुन की घंटी बजनी चाहिये। सब लड़कों और शिक्षकों को १० बजकर १० मिनट पर विद्यालय के सभा-भवन में एकत्रित होना चाहिये। १० बजकर १० मिनट पर फिर घंटी बजनी चाहिये। अब ईश-प्रार्थना होनी चाहिये और प्रधान शिक्षक को आवश्यक बातों का निर्देश करना चाहिये। कभी प्रधान शिक्षक, कभी कोई अन्य शिक्षक और कभी कोई सयाना चतुर छात्र बोले।

१० बजकर २० मिनट पर फिर घंटी बजनी चाहिये जिसे सुनकर लड़के बाहर निकलकर अपने-अपने वर्ग के 'अगुआ' के पीछे एक पंक्ति में खड़े हो जायँ और अपनी-अपनी श्रेणी में उसी क्रम से चले जायँ।

हो तो अच्छा है। पहले प्रधान शिक्षक को वाद-विवाद का विषय देख लेना चाहिये।

जातिगत, व्यक्तिगत तथा समाजगत द्वेष फैलानेवाला विषय कभी न रहना चाहिये। शिक्षा-सम्बन्धी नैतिक उन्नति एवं सामाजिक चलती चीजों पर वाद-विवाद ठाना जा सकता है, किन्तु प्रत्येक दशा में प्रधान शिक्षक को विषय की जाँच करनी चाहिये। प्रस्तावकर्त्ता, समर्थक एवं विरोधक के नाम पहले बतला देना चाहिये। यदि लड़कों में से ही स्वयं प्रस्तावक, समर्थक तथा विरोधक खड़े हों, तो विशेष लाभ है।

इस सभा का सदस्य प्रत्येक छात्र हो सकता है, किन्तु सब को कुछ-न-कुछ शुल्क देना चाहिये। शुल्क देने से इसमें अनुराग होता है और इसकी कार्य्यवाहियों को जानने को उत्कण्ठा होती है। रुपया डाक-घर में जमा रहना चाहिये। प्रधान शिक्षक को अनुमति से ही रुपया निकाला जा सकता है। छात्रों में से ही कोई एक रुपये के खर्च को जाँच करनेवाला व्यक्ति रहना चाहिये, जो रुपये के हिसाब को साल में कम-से-कम चार बार जाँचे। 'वाद-विवादनी सभा स्कूल का जीवन है' इसको कभी भूलना नहीं चाहिये।

विद्यालय के सामान

विद्यालय का सब से प्रधान यन्त्र विद्यालय का मकान है।

मकान — इसकी स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि बालकों का ध्यान पढ़ने में लगे। इसके साथ छात्रों के स्वास्थ्य और विद्या का घना सम्बन्ध है। गाँव के बाहर खुले मैदान में

किसी नदी या तालाव के निकट विद्यालय वनवाना चाहिये। नगरों या बड़े-बड़े शहरों में किसी ऐसे स्थान में विद्यालय बनाना चाहिये जहाँ छात्रावास और खेल के लिये पर्य्याप्त क्षेत्र हो।

विद्यालय के अहाते को ईंट या तार के द्वारा घेरना चाहिये जिससे गाय-बैल या वाहरी लोग इस घेरे में न आ सकें। इस विद्यालय में प्रकृतिपाठ के निमित्त एक वाटिका रहनी चाहिये। नीम, मौलसरी आदि के वृक्ष वहुत ही अच्छे होते हैं। इनके लगाने में लड़कों से कभी-कभी सहायता ली जा सकती है। इनसे विद्यालय का हवा-पानी शुद्ध रहता है और इनकी छाया में लड़के खड़े होते हैं। इनसे विद्यालय की शोभा भी वढ़ती है। हरियाली से लड़कों की दृष्टि भी खराब नहीं होती। विद्यालय में 'वरामदों' का रहना आवश्यक है, लेकिन ये निहायत साफ रहने चाहिये।

स्कूल का मकान केवल इसलिये नहीं होना चाहिये कि उसमें लड़के आराम से वैठ ही भर सकें, वरन् ऐसा होना चाहिये कि लड़के उसमें वैठकर सुविधा-पूर्वक शिक्षा भी पा सकें। इसके सिवा मकान ऐसी खुली हवा में होना चाहिये कि लड़कों का स्वास्थ्य भी सुधरे। मकान की वनावट ऐसी होनी चाहिये कि वस्ती के लोग भी इसको आदर्श मानकर अपना-अपना घर हवा-दार वनावें।

कभी-कभी यह प्रश्न होता है कि पाठशाला के लिये अलग मकान वनाने की क्या जरूरत है। जो रकम मकान वनाने के लिये खर्च की जायगी उससे अच्छे-अच्छे शिक्षक रक्खे जा

सकते हैं, लेकिन इस बात को स्मरण रखना चाहिये कि हर मौसम में आप लड़कों को बाहर नहीं पढ़ा सकते ।

दूसरी बात यह है कि पढ़ाई तोते और मैना की रटाई के समान रटाना नहीं है, वरन् प्रकृति का ज्ञान देना है, देश और समाज की दशा दर्शाना है और अपने गाँव तथा प्रदेश का इतिहास एवं भूगोल पढ़ाना है। उन बातों को पढ़ाने के लिये कुछ पढ़ाई के सामान की जरूरत पड़ती है, और उन्हें रखना निहायत जरूरी है जो अच्छे मकान के बिना नहीं हो सकता है।

किताबों, नकशों और दूसरी-दूसरी स्कूली चीजों को रखने के लिये मकान की आवश्यकता है। प्रकृति-निरीक्षण के लिये काफी तैयारी रहनी चाहिये जिससे लड़कों के व्यक्तित्व का विकास हो ।

यह सम्भव है कि किसी बड़े छायावाले पेड़ के नीचे किसी-न-किसी तरह स्कूल चलाया जा सके, लेकिन खास मकान के बिना स्कूल के भिन्न-भिन्न दर्जों के छात्र जो लिख रहे हैं या हस्तकर्म्म में लगे हुए हैं वे सूरज की तीखी किरणों में अपने को ग्रीष्म-ऋतु की धूल और गर्द से नहीं बचा सकते। कभी-कभी मेघ और आँधी का उत्पात इतना बढ़ जाता है कि मकान के भीतर भी लिखना-पढ़ना मुश्किल हो जाता है। ऐसी दशा में बाहर यह काम कैसे हो सकता है ?

कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि पाठशाला के लिये अलग मकान तो नहीं, लेकिन किसी के मकान के ओसारे पर पढ़ाई होती है। कहीं-कहीं बस्ती के भीतर अन्धेरी कोठरी में पढ़ाई करते हुए गुरुजी पाये जाते हैं।

मिलकर कुछ पेड़ लगा दें जिनकी छाया में बैठकर कभी-कभी लड़के पढ़ाये जायँ।

स्कूल में ये सामान अवश्य रहने चाहिये—

(१) बड़े लड़कों के खेलने-कूदने तथा कसरत करने के लिये एक ऊँची जमीन।

(२) बच्चों के खेलने, झूला झूलने, बालू और मिट्टी से मूर्त्ति बनाने और छोटी-छोटी ईंटों से मकान बनाने के लिये मैदान के किसी कोने में कुछ जगह छोड़ देनी चाहिये।

(३) छोटे-छोटे बच्चों को ईंटें तैयार करने और उनसे छोटे-छोटे मकान तैयार करवाने के लिये थोड़ी जमीन होनी चाहिये।

(४) स्कूल के चारों ओर घेरा और बाँध होना चाहिये और जमीन ऐसी रहनी चाहिये कि लड़के तरकारी भी पैदा कर लें।

(५) रिलीफ मैप के लिये भी थोड़ी जमीन छोड़ी जानी चाहिये।

(६) यदि शिक्षक भी वहीं रहते हों, तो उन्हें भी तरकारी उपजाने के लिये थोड़ी जमीन ले लेनी चाहिये। लेकिन तरकारी बोने और उपजाने के लिये लड़कों से काम लेना ठीक नहीं है। यदि वे स्वयं ही काम करना चाहें और शिक्षक मदद करना चाहें, तो कर सकते हैं। इसमें किसी को अड़चन नहीं है।

स्कूल की जमीन एक प्रकार के हरे पौधों से घिरी रहनी चाहिये। जुणन्ती या ऐसे ही अन्य सघन पौधे की झाड़ी इसके लिये बहुत उपयोगी होगी। दो वर्षों तक बढ़ाते रहने से ये झाड़ियाँ तैयार हो जायँगी और बैल, गाय, भैंस, बकरी आदि से उस विद्यालय की रक्षा होगी। कभी-कभी इन

चलने से आवाज होती है और लड़कों का ध्यान बँट जाता है। कमरों को बराबर बुहरवाकर साफ रखना चाहिये। हफ्ते में कम-से-कम एक बार गोबर और चिकनी मिट्टी से कमरा लिपवा देना चाहिये। जहाँ तक हो, वहाँ बुहरवाने से काम चल जायगा; परन्तु कभी-कभी गच को पानी से साफ करवाना चाहिये।

पाठशाला खूब विस्तृत होनी चाहिये। गाँव के साधारण कमरों से इसकी कोठरी अधिक लम्बी और चौड़ी होनी चाहिये। हर एक छात्र के लिये १० वर्गफीट के हिसाब से कमरे में जगह रहनी चाहिये। किसी-किसी प्राइमरी पाठशाला में शिक्षक पहली और दूसरी, तथा तीसरी और चौथी, एवं पहली और चौथी, तथा दूसरी और तीसरी श्रेणियों को एक साथ पढ़ाना पसन्द करते हैं। उनके लिये इस प्रकार का मकान ठीक होगा—

श्रेणी	श्रेणी	श्रेणी	श्रेणी
१	२	३	४
१८	१४	११	११

३२ लड़कों के लिये—३२ × १० = ३२० वर्गफीट।
२९ लड़कों के लिये—२९ × १० = २९० ,, ,,
२५ ,, ,, ,,—२५ × १० = २५० ,, ,,
२६ ,, ,, ,,—२६ × १० = २६० ,, ,,

इसके साथ ही मकान के विस्तार की भी जरूरत पड़ती है। १४ फीट यदि प्रत्येक मकान की चौड़ाई हो तो मकान का क्षेत्र फल $\frac{३२०}{१४}$ = २३ फीट के लगभग लंबा होगा। मकान बनाने के पहले हर एक शिक्षक या सब इंसपेक्टर को इन बातों पर अवश्य सोचना चाहिये, क्योंकि गाँववालों को इस विषय को

कमरे में ठंढक लाने के लिये हवा का पूरा प्रबन्ध रहना चाहिये। गर्मी के दिनों में पढ़ाई असम्भव हो जाती है। हवा और प्रकाश के लिये खिड़कियों की आवश्यकता होती है। दरवाजे और खिड़कियाँ ऐसे स्थान पर रहनी चाहिये जहाँ से लड़के अपनी-अपनी जगहों में बैठे-बैठे झाँक न सकें और न उन्हें अधिक गर्मी ही माल्हूम हो। श्रेणी में बैठे-बैठे लड़के गर्म्मी के मारे ऊँघने लगते हैं, इसलिये हवा के निकलने और प्रवेश करने के लिये मार्ग रहना चाहिये।

गर्म्मी के दिनों में पंखे का प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये। ऐसा करने से पढ़ाई का काम ठीक से होता है और शिक्षक तथा छात्रों को गर्म्मी नहीं माल्हूम होती है। मानसिक परिश्रम के लिये बाहरी उपादानों में ठंढक भी एक आवश्यक वस्तु है।

उन विद्यालयों में जहाँ डेस्क और रोशनी का पूरा प्रबन्ध हो, वहाँ प्रत्येक लड़के के लिये १५ वर्गफीट जगह और २०० घनफीट हवा का प्रबन्ध रहना चाहिये। प्राइमरी पाठशालाओं में जहाँ लड़के फर्श पर बैठते हैं, वहाँ प्रत्येक छात्र के लिये ८ वर्गफीट जगह और १०० घनफीट हवा का प्रबन्ध होना ठीक है।

जब लड़के लिखते हों या पढ़ते हों, तब प्रकाश उनकी किताब पर पड़ना चाहिये। आँखों पर प्रकाश पड़ने से वे खराब हो जाती हैं। खिड़कियों में शीशे या जाली लगाने से बाहर से पानी तथा पक्षी आदि से बचाव भी हो सकता है और रोशनी भी बनी रहती है। छोटी दीवारों में खिड़की बैठाने की जरूरत नहीं है। यदि बन सके तो हवा आने के लिये

लम्बे बेंचों का प्रबन्ध भी श्रेणी में भीड़ कर देता है। शिक्षक को यह ज्ञात होना चाहिये कि प्रत्येक छात्र के लिये १६ इंच विस्तार से कम जगह नहीं चाहिये, लेकिन देखा जाता है कि जितने लड़के आते जाते हैं, उतने बैठते जाते हैं, कोई विचार नहीं होता है।

पहली और दूसरी श्रेणियों के छात्रों को तो स्लेट से काम लेना पड़ता है। गोलियों और कमाचियों से उन्हें गिनना सिखाया जाता है। यदि वे लोग जमीन पर ही बैठकर पढ़ा करें, तो कोई आपत्ति नहीं है। हर एक लड़के के लिये यदि चटाई रहे तो वे लोग खुशी से बैठकर काम कर सकते हैं, लम्बी चटाइयों से वे ही दिक्कतें होती हैं, जो लम्बे-लम्बे बेंचों से। हर लड़के के लिये डेढ़ फीट की आयताकार चटाई पत्तों से बनाई जा सकती है। यदि चटाई स्कूल के सयाने लड़के बनावें तो स्वावलम्बन का अच्छा पाठ पढ़ाया जा सकता है।

तीसरी और चौथी श्रेणियों के छात्रों को कागज पर लिखना पड़ता है और हिसाब-किताब का काम कागज पर सुविधाजनक होता है, इसलिये उन्हें टेबुल की जरूरत अवश्य पड़ती है। यदि लड़के अपनी बनाई हुई या स्कूल में तैयार की हुई चटाई पर बैठें और सामने एक छोटा टेबुल लिखने के लिये रक्खें, तो पढ़ाई का काम सुभीते का होगा। कभी-कभी 'लो डेस्क' से यह काम चलाया जाता है, लेकिन इसमें भी बड़ी गड़बड़ी होती है। सब से अच्छा यही होता कि १½ फीट के लम्बे-लम्बे डेस्क ऊँचे पीढ़े के समान बना दिये जायँ।

यदि ऊपर से नीचे की ओर ढालुए डेस्क बनाये जायँ, तो

डुअल डेस्क (पृष्ठ १८८)
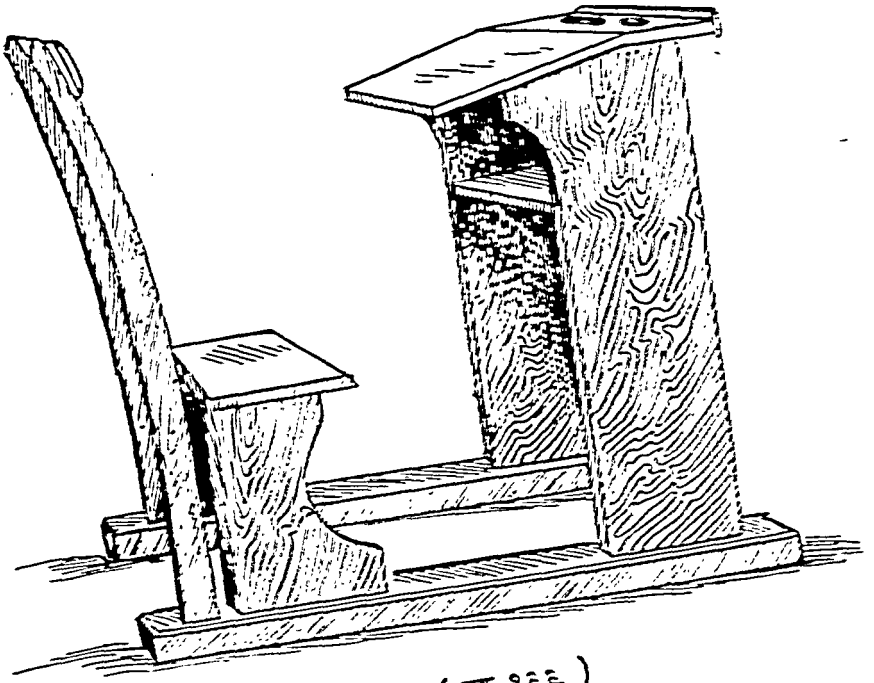
लिखनेवालों को विशेष सुविधा हो। यदि इन डेस्कों में दावात, कलम तथा किताबें रखने की सुविधाएँ रक्खी जायँ तो छात्रों को बड़ा लाभ हो। ये डेस्क १४ इंच चौड़े बनाये जाने चाहिये।

१½ फीट में एक डेस्क तैयार हो जाता है। इसमें केवल बेंच की जरूरत रहती है जो ३ इंच से बड़ा नहीं होता है। सामने चित्र में देखिये। इसमें सब प्रकार की सुविधाएँ रहती हैं। हर एक लड़का ठीक से अपने लिखने-पढ़ने का काम करता है। डेस्क यहाँ से वहाँ खसकाये जा सकते हैं। स्कूल की जगह का पूरा उपयोग हो सकता है। ड्राइङ्ग बनाने और हस्त-लेख लिखने में बड़ी सुविधा होती है। इन डेस्कों को एक फीट की दूरी पर रख सकते हैं कि हिलने-डुलने का भय न रहे। लड़कों के बाहर आने-जाने के समय डेस्क हिल जाने से लिखना खराब होता है।

मिट्टी से भी इस प्रकार के डेस्क आसानी से बन सकते हैं, लेकिन उसमें विशेष सावधानी की जरूरत है। उसमें कम खर्च भी पड़ेगा और दिहाती स्कूलों के लिये जल्दी तैयार भी हो जायगा।

इससे ऊपर की श्रेणियों में भी एक टेबुल और एक स्टूल का प्रबन्ध करना चाहिये। जब तक डुएल डेस्क की प्रथा कायम रहेगी तब तक दो के बदले तीन-तीन लड़के बैठा करेंगे! एक टेबुल में खर्च भी कम पड़ेगा और पढ़ाने-लिखाने में सुविधा भी होगी। यदि चौरस टेबुल के साथ बैठनेवाली वस्तु बन जाय, तो सब से अच्छा है। दावात, कलम, पेन्सिल और किताबों के रखने के गढ़े वाला डेस्क और स्टूल की प्रणाली अच्छी मालूम होती है।

लड़कों के समय-समय पर आराम करने के लिये हैं न कि सर्वदा उसके आधार पर लगे रहने के लिये।

विद्यालयों में अधिक कुर्सियों की कोई आवश्यकता नहीं है। बाँह वाली कुर्सियाँ अच्छी हैं। श्रेणी में कुर्सी रखने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि शिक्षक को खड़ा होकर ही पढ़ाना पड़ता है। लिखने के काम के लिये मेज की जरूरत है। लिखने के समय बैठने के लिये एक ऊँचा स्टूल रहना चाहिये। मेज में बही, कलम, दावात रखने के लिये जगह रहनी चाहिये।

लोअर प्राइमरी पाठशाला का ओसारा भी कभी-कभी काम में लाया जा सकता है। यदि एक बरामदा और एक कमरे की लम्बाई १२ फीट से कम न हो, तो दो कमरों का काम यह दे सकता है। लेकिन इस प्रकार का प्रबन्ध अच्छा नहीं है। यदि पहले से ऐसा ही बना हुआ हो, तो काम में लाने के लिये हमने इसका संकेत कर दिया है। उत्तर या दक्षिण की ओर इसकी रुख होने से लड़कों को सुविधा होगी।

ऐसी पाठशाला में कृष्णपट्ट की बाँई ओर दीवार के अन्दर लगी हुई कम-से-कम छः फीट की ऊँचाई पर कमरे के चारों ओर एक लकड़ी की चपटी भी चित्र आदि लटकाने के लिये लगानी चाहिये। इस चपटी में खूँटियाँ लगाने से मानचित्र, चित्रादि लटकाने में सुविधा होती है। आलमारी में रजिस्टर, तख्ती, पुस्तकादि रखने की सहूलत होती है। इससे यदि काम न चले तो लकड़ी का एक बक्स रख देना चाहिये, जिसमें खेल के सामान, पुस्तकें और अन्य जरूरी चीजें सुविधा के साथ ठीक से रक्खी जा सकें।

पढ़ाई के सामानों में मानचित्र की बहुत आवश्यकता पड़ता है। महादेश तथा भारतवर्ष का नकशा अवश्य रहना चाहिये। मानचित्र के लिये चित्रपटों की आवश्यकता होती है, यह रहना बहुत जरूरी है। उच्च विद्यालयों में चित्रशाला के लिये एक घर रहना बहुत आवश्यक है। बालकों के कौतुक के लिये आश्चर्य्यप्रद नूतन पदार्थों को एकत्र कर इसमें रखने, इन्हें ध्यानपूर्व्वक देखने तथा इनके विषय में वार्त्तालाप करने का उत्साह देना चाहिये जो बालक लाभदायक पदार्थ ला सकें उनकी प्रशंसा कर उन्हें पारितोषिक देकर बालकों में चित्रकला के लिये अद्भुत पदार्थों को एकत्र करने में स्पर्द्धा का भाव उत्पन्न करना चाहिये।

चित्रपट, छायाचित्र, रूपचित्र, प्रतिष्ठापट्ट और आवश्यक पुस्तिकाएँ

पाठ में उपयोग करने के लिये सुन्दर चित्रपटों की आवश्यकता होती है। इनपर चित्र स्पष्ट रूप से खींचे जाते हैं। प्रत्येक वर्ग का कमरा सुन्दर शिक्षाप्रद चित्रों से सुसज्जित रहना चाहिये। ये चित्र अधिक चमकीले या भड़कदार न हों। कमरे में दीवारों पर छात्रवासों में छपे हुए शिक्षाप्रद वाक्यों को दफती पर चिपकाकर टँगवाना चाहिये। इनसे छात्रों और शिक्षकों का वहुत लाभ होता है।

धर्म्म-सम्बन्धी, व्यवहार-सम्बन्धी और प्राकृतिक सौन्दर्य्य-सम्वन्धी चित्र वहुत उपयोगी हैं। ऐतिहासिक चित्रों में महापुरुषों के चित्र रहने चाहिये। ऐतिहासिक पुरुषों के अन्तर्गत प्राचीन राजा, धर्म्मोपदेशक, समाज-सुधारक, राज्यप्रबन्ध-कर्त्ता, शासक,

विद्यालय के सामानों में दो वस्तुओं का वर्णन नहीं करने से यह विषय अधूरा ही रह जाता है। प्रत्येक विद्यालय में एक प्रतिष्ठापट्ट (Honour board) एवं पताकाएँ रहनी चाहिये। प्रतिष्ठापट्ट ऐसे स्थान पर टँगा रहना चाहिये कि बाहर से आने वाले लोग इसे देख सकें। जो लड़के अच्छे-अच्छे कार्य्य करते हैं, उन्हें आदर और प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिये उनके नाम प्रतिष्ठापट्ट पर लिख देना चाहिये। दूसरे लड़के इससे उत्साहित होकर प्रशंसनीय कार्य्य-सम्पादन करने में उद्यत हो जाते हैं। जो लड़के रोज-रोज विद्यालय में ठीक समय पर आते हैं, और जिस श्रेणी में अधिक उपस्थिति पाई जाती हो, उनके लिये अलग-अलग पताकाएँ रहनी चाहिये। ये दोनों उपादान लड़कों को उत्साह देनेवाले हैं।

रजिस्टर भी एक आवश्यक सामान है इसके सम्बन्ध में शिक्षा-विभाग की आज्ञाएँ पर्याप्त हैं, किन्तु रजिस्टरों के सम्बन्ध में चार बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये। प्रत्येक नये शिक्षक के लिये रजिस्टर को सफाई से रखना आवश्यक है। जो बातें इस रजिस्टर में लिखी जायँ उनमें स्वच्छता का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। यदि कोई भूल हो जाय तो उसको कभी मिटाना, छीलना या गन्दे प्रकार से घुमा-फिराकर लिख देना नहीं चाहिये। बल्कि काटकर लाल स्याही से ठीक कर देना चाहिये। यदि कोई पृष्ट खराब हो जाय तो उसको फाड़ना न चाहिये। उसपर लाल लकीर खींचकर मोड़ देना चाहिये। किसी दशा में अपने अफसर की आज्ञा के बिना उसको नष्ट नहीं करना चाहिये।

परिशिष्ट (१)

आधुनिक शिक्षाप्रणालियाँ

डाल्टन प्रणाली

इस सिद्धान्त को शिक्षण-कला-पटु विद्वान् अब अच्छी तरह समझने लगे हैं कि सामूहिक शिक्षा या वर्ग में पढ़ाने का ढंग व्यक्ति विशेष के मानसिक विकास का प्रबल विघातक है। आधुनिक दैनिक कार्य-क्रम श्रेणी-शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों को एक निश्चित प्रणाली पर चलने के लिये वाध्य करता है। सामूहिक शिक्षा के दोषों को दूर करने के लिये शिक्षा देने की कितनी ही प्रणालियाँ प्रादुर्भूत हुई हैं, जिनमें डाल्टन प्रणाली भी एक विशेष शिक्षापद्धति है।

इस प्रणाली में वर्गशिक्षा का प्रश्न एक नवीन ढंग से हल किया जाता है। मनोविकाश में भी बाधा नहीं पड़ने पाती। इसकी प्रवर्तक मिस हेलेन पार्कहर्स्ट थीं। उन्होंने सन् १९१९ ई० में मेसाचुसेट नामक प्रदेश के डाल्टन हाई स्कूल में इस प्रणाली की पहले-पहल परीक्षा की थी। यह शिक्षा-प्रणाली ८–१२ वर्ष तक के शिशुओं के लिये निकाली गई थी। यह प्रणाली सन् १९२० ई० में कार्य में परिणत की गई। इसे रासायनिक प्रणाली भी कहते हैं। जैसे विज्ञान के विद्यार्थी रसायनशाला में स्वयं यंत्रों द्वारा किसी विषय की समीक्षा, परीक्षा, अध्ययन तथा अनुभव करते हैं, उसी प्रकार अध्ययनशील विद्यार्थी इस

प्रणाली में पुस्तकालय में वैठकर बिना किसी अध्यापक की सहायता के ही स्वयं अध्ययन तथा मनन करते हैं।

यह शिक्षापद्धति कहीं भी, किसी स्थान में और किसी भी परिस्थिति में प्रयुक्त की जा सकती है। इसमें यही विचार किया जाता है कि लड़के अपने उत्तरदायित्व को समझें। इस विचार से यह पद्धति १२ से लेकर २० वर्ष तक के विद्यार्थियों के लिये नितान्त उपयोगी है।

इस पद्धति के मुख्य तीन अङ्ग हैं—(१) स्वतंत्रता (२) सहयोगिता और (३) वैयक्तिक यत्न का उपयोग। विद्यार्थी निर्धारित स्थान में स्वयं पढ़ सकते हैं और आवश्यकता होने पर अपने मित्रों, साथियों तथा शिक्षक से भी सहायता ले सकते हैं, किन्तु विशेषतः कार्य ही करना ठीक होता है।

डाल्टन-पद्धति में श्रेणी और कार्यक्रम का वहिष्कार भी नहीं होता। प्रत्येक विद्यार्थी संस्था या कक्षा का सदस्य होता है। शिक्षक प्रमुख तथा पिछड़े हुए विद्यार्थियों के लिये भिन्न-भिन्न मासिक पाठ-कार्य निर्धारित करता है। इस प्रकार निर्धारित पाठ-विभाग पत्र पर हर एक विद्यार्थी को लिखी गई शर्त के अनुसार काम करने के लिये हस्ताक्षर वनाना पड़ता है। यह कार्य-निर्धारण ही डाल्टन प्रणाली का मेरुदण्ड है।

विद्यार्थियों की सुविधा के लिये मासिक कार्य की साप्ताहिक तथा दैनिक कार्यविभाग में विभक्त कर देते हैं। इस मासिक कार्यतालिका में केवल विद्यार्थियों के कार्य का विवरण ही नहीं रहता है, वरन् कार्य करने के निर्देश भी रहते हैं। उदाहरण के लिये उसमें ये बातें लिखी जाती हैं। (१) शीर्षक (२) प्रश्न

(३) स्मरण करने के लिये कार्य (४) लेख-कार्य (५) मौखिक पाठ (६) संदर्भगर्भित प्रासंगिक बातों का अध्ययन (७) प्रतिशब्द निरूपण (८) पुस्तक आदि का अध्ययन (९) शिक्षा-विभाग के संशोधन। यह आवश्यक नहीं है कि हरएक कार्य निर्धारण में ये सभी बातें रहें।

लड़कों की उन्नति के लिये मिस पाकहर्स्ट ने तीन कोष्टकों (रेखाचित्रों) का निर्माण किया है। शिक्षककोष्ठ, विद्यार्थी-कोष्ठ तथा गृहकोष्ठ। एक रेखाचित्र में श्रेणी के सब लड़कों के नाम लिखे रहते हैं और प्रत्येक नाम के सामने २० दिनों के कार्य समूह के लिये २० खाने खाली रहते हैं। हर एक सप्ताह के अन्त में प्रत्येक विद्यार्थी को जहाँ तक काम हो गया हो, चिह्न करना पड़ता है। इस रेखाचित्र के द्वारा कोई भी विद्यार्थी अपने काम की तुलना किसी दूसरे विद्यार्थी के काम से सुगमता से कर सकता है। उक्त रेखाचित्र की रचना इस प्रकार होती है—

नाम	१,२,३,४,५	१,२,३,४,५	१,२,३,४,५	१,२,३,४,५
सुधांशु	......>			
विजय	....	.......>		
मदन	....	......		
कम	....	...>		

दूसरे रेखाचित्र में विद्यार्थियों को हस्ताक्षर करना पड़ता है और यह बतलाना पड़ता है कि किस विषय में किसने कितनी उन्नति की है। इसमें जितने विषय हैं उतने शीर्षक रखने पड़ते हैं। विद्यार्थियों को मालूम हो जाता है कि किस विषय में कितने पिछड़े हुए हैं और उनको किस विषय में कितना परिश्रम करना चाहिये। यह रेखाचित्र इस प्रकार बतलाया जाता है—

विद्यालय नाम	श्रेणी नाम	विद्यार्थी नाम	उम्र	तिथि		
चौथा सप्ताह					Λ	
तीसरा सप्ताह		Λ			⋮	Λ
दूसरा सप्ताह	Λ	⋮		Λ	⋮	⋮
पहला सप्ताह	⋮	⋮	Λ	⋮	⋮	⋮
	हिसाब	इतिहास	भूगोल	विज्ञान	अंगरेजी	मातृ भाषा

तीसरे रेखाचित्र में वर्ग के साप्ताहिक विवरण का ब्योरा दिया जाता है। किसी-किसी विद्यालय में एक चौथा चित्र भी रहता है, जिसमें लड़कों के नाम 'ठीक समय पर' या 'देर कर' आने के क्रम से लिखे रहते हैं। जो समय पर आते हैं वे ठीक

समय के सामने चिह्न करते हैं और जो देर कर आते हैं वे देर कर के सामने चिह्न करते हैं। ऊपर के रेखाचित्रों से साफ मालूम होता है कि विषय, स्थान, विशेषज्ञ तथा जाँच डाल्टन-प्रणाली के मुख्य अंग हैं।

इस प्रणाली से विद्यार्थी स्वावलम्बन का पाठ सीखते हैं। उनको एक निश्चित स्थान में बैठकर बिना किसी की सहायता के अपना पाठ याद करना पड़ता है। उन्हें यह भी ज्ञात रहता है कि क्या कार्य करना है। दूसरी शिक्षा-पद्धतियों में यह बात स्पष्ट रीति से ज्ञात नहीं रहती है कि विद्यार्थियों को क्या करना है। विद्यार्थियों को इस पद्धति में अपनी आवश्यकता के अनुसार एक कोठरी से दूसरी कोठरी में जाने की स्वतंत्रता रहती है। उनको स्वावलम्बी होने के साथ-ही-साथ आत्मविश्वासी होना सिखलाया जाता है। वे अपने ऊपर निर्भर रहना सीखते हैं।

इसमें शिक्षक और विद्यार्थियों का पारस्परिक प्रेम भी बना रहता है। शिक्षक विद्यार्थियों को सहायता, सम्मति तथा उत्साह प्रदान करता है। यहाँ कोई भी काम शिष्टाचार के विरुद्ध नहीं होता। इसमें सामाजिक सहयोग की शिक्षा मिलती है। बड़े-छोटे लड़कों को सहायता पहुँचाते हैं, समवयस्क लड़के परस्पर की सहायता से लाभ उठाते हैं। उसमें मातृभाषा की अभिवृद्धि होती है। छात्रों को मानसिक शक्ति बढ़ाने और किसी एक विषय में प्रवीणता प्राप्त करने का अवसर मिलता है। विद्यार्थियों को समय के मूल्य का ज्ञान रहता है। इस पद्धति के विरुद्ध भी कुछ बातें उपस्थित की जाती हैं, किन्तु ये बातें इस पद्धति का उन्मूलन नहीं कर सकतीं।

मौंटेसरी प्रणाली (Montessori method)

फ्रोबेल नामक एक जर्मन विद्वान् ने पहले-पहल किंडरगार्टेन प्रणाली चलाई। तदुपरान्त श्रीमती मौंटेसरी नाम्नी इटालियन महिला ने मनोविज्ञानिक दृष्टि से उसका विश्लेषण कर उसमें आवश्यक परिवर्त्तन किये। इसने जो शिक्षा की प्रणाली निकाली, वह शिक्षा संसार में मौंटेसरी प्रणाली के नाम से प्रख्यात है। इसमें बालकों की मानसिक प्रवृत्तियों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अतएव शिक्षक शिष्यों की मानसिक प्रवृत्तियों पर ही समुचित रूप से ध्यान देते हैं।

बालक मशीन के समान नहीं है जिसे अध्यापक, जैसे चाहे, चला दे और वह निर्विघ्न चलती रहे। बालक के मानसिक और सामाजिक विकास के लिये उसकी प्रवृत्तियों के अनुसार उसको स्वतंत्रतापूर्वक चलने देना चाहिये। शासन और पढ़ाई दोनों में बालकों को स्वतंत्रता मिलनी चाहिये। उसका व्यक्तित्व तभी बढ़ेगा जब उसको अपनी शक्तियों को काम में लाने का पूरा अवसर मिलेगा। पाठशाला में घर जैसी स्वतंत्रता होनी चाहिये।

बाल-शिक्षा में ऐन्द्रिक ज्ञान अधिक मात्रा में होना चाहिये। ऐन्द्रिक ज्ञान के लिये प्रत्यक्ष ज्ञान आवश्यक है। सविकल्पक प्रत्यक्ष ज्ञान के बहुत पीछे सामान्य प्रत्यय होता है, अतः बालकों को इन्द्रियों के द्वारा ही अनुभव कराके किसी बात का ज्ञान देना चाहिये इससे प्रत्यक्ष अनुभव से उचित ज्ञान की प्राप्ति होती है, विज्ञान पढ़ाने में सहायता मिलती है तथा भावनाशक्ति दृढ़ होती है।

बालक की भावनाशक्ति का उचित विकास होना चाहिये, अन्यथा वह आकाशपुष्प तोड़ता है और वास्तविकता का ध्यान उसे कम रहता है। ऐसी स्थिति में भूत, प्रेत तथा परियों की कहानियाँ नहीं पढ़ने देना चाहिये, वरन् वास्तविक घटनाओं का वर्णन करना चाहिये। सारांश यह कि मौंटेसरी प्रणाली में ऐन्द्रिक अभ्यास पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

प्रोजेक्ट मेथड (Project method)

जौन ड्यूई के शिष्य किलपैट्रिक (Kilpatrict) ने यह प्रणाली अमेरिका में निकाली। स्कूलों में अनेकानेक विषयों का अध्यापन होता है। उन विषयों के अध्यापन का उद्देश्य बालकों को अवगत नहीं रहता है। इससे वे उन्हें सीखने में पूर्णतः रुचि नहीं दिखलाते और उनका ध्यान भी पूरा नहीं लगता है। जैसे, वे नहीं जानते हैं कि इतिहास पढ़ाने में लड़ाइयों का वर्णन क्यों किया जाता है? रेखागणित में क्षेत्रफल क्यों निकाला जाता है? इत्यादि

बहुत-से विषयों के पढ़ाने के मुख्य दो उद्देश्य हो सकते हैं—(१) मानसिक शक्तियों का विकास (२) जीवन-कार्य में सहायता। अतः इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये स्कूलों में वे ही विषय हों जो लाभदायक हों तथा जिनका जीवन के कार्यों से सम्बन्ध हो।

इस प्रणाली के अनुसार शिक्षक को अभिप्राय का प्रश्न सामने रखकर पढ़ाना चाहिये, जो कार्य कराये जायँ वे जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले हों। क्रिया भी ठीक वही हो जो जीवन में की जायगी। प्रश्न क्रियात्मक हों, सूत्रात्मक नहीं। प्रश्न को समस्या के रूप में उपस्थित करें जैसा कि जीवन में उपस्थित

होती है। ऐसा करने से एक ही समय में अनेक विषयों का समा-वेश हो जाता है। जैसे नगरनिर्माण एक समस्या है इससे सम्बन्ध रखनेवाले विषय भूगोल (दिशाओं का काम, मानचित्र बनाना, स्वास्थ्यरक्षा, जलवायु), गणित, (क्षेत्रफल), आदि, कौन-कौन चीजें कहाँ से मिलेंगी इत्यादि।

समस्या समस्त श्रेणी के सम्मुख उपस्थित करनी चाहिये इससे सामूहिक जीवन और एकता का विकास होता है, इसीसे सामाजिक उन्नति होती है जो आधुनिक शिक्षा का एक प्रधान अंग समझा जाता है। इसी प्रणाली के अनुसार पञ्जाब के मोगा स्थान में कार्य किया गया था। वहाँ इससे कुछ सफलता मिली थी।

इस प्रणाली के अनुसार मिडल स्कूलों की उच्च कक्षाओं में कार्य किये जा सकते हैं। ग्राम्य जीवन का पूर्णरूप से अध्ययन ही प्रोजेक्ट मेथड को शिक्षकों के द्वारा सफलीभूत कर सकता है।

इस पद्धति से निम्नाङ्कित लाभ हैं :—

(१) प्राचीनकाल में बालकों से अन्तरीप और खाड़ियों के नाम पूछकर उनकी स्मरणशक्ति पुष्ट की जाती थी, परन्तु अब वह बात नहीं है। अब बालकों के सम्मुख समस्या उपस्थित कर तर्कना-शक्ति का विकास किया जाता है।

(२) इस पद्धति से बालकों को सूचना देने का अब कोई अधिकार नहीं है, जैसा पहले किया जाता था। समस्या उप-स्थित कर बालकों को हल करने के लिये उत्तेजना मिलती है। इससे वे कार्य करते हैं, कर्मठ बनते हैं और उनका आचरण बनता है।

(३) समस्याएँ बालकों को क्रियात्मक जीवन में लाभ पहुँचाती हैं। वे अपनी स्वाभाविक अवस्था में रखी जाती हैं इससे वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि होती है किताबी ज्ञान को नहीं।

(४) सिद्धान्तों की अपेक्षा समस्या का अधिक महत्व है क्योंकि समस्या से सिद्धान्त सरलतापूर्वक समझे जा सकते हैं, सिद्धान्त की उत्पत्ति समस्या से ही होती है और सिद्धान्त की अपेक्षा प्रभाव अधिक महत्व का है। इसीलिये डाक्टर स्टिभेनसन प्रोजेक्ट पद्धति की परिभाषा लिखते हैं कि 'समस्यामय कार्य को उसको स्वाभाविक स्थिति में पूर्णता तक पहुँचाने का नाम प्रोजेक्ट पद्धति कहते हैं'।

गैरी प्रणाली (Gary system)

यह प्रणाली अमेरिका के शिकागो नामक शहर के समीप गैरी नामक स्थान में प्रथमतः चली। इसलिये इसे डाल्टन प्रणाली की तरह गैरी प्रणाली कहते हैं। इसके सञ्चालक गैरी के शिक्षा-विभाग के मुख्य कर्मचारी वर्ट हैं।

लड़कों की संख्या जितनी हो उससे आधी संख्या के लिये कक्षा में बैठने का प्रबन्ध हो, कक्षा कभी खाली नहीं रहे। इससे स्कूल की आर्थिक बचत हो सकती है। स्कूल में कुछ मेज, कुर्सी, टेबुल इत्यादि से काम चल सकता है, परन्तु इसका मुख्य उद्देश्य बाहर दी जानेवाली शिक्षा को बढ़ाना है। साहित्यिक विषयों के अतिरिक्त दूसरे विषय बढ़ा दिये जायँ। खेलने और व्यायाम के लिये मैदान या शाला होना चाहिये, तैरने के लिये तालाब हो, स्वयं पाठ के लिये पुस्तकालय, दस्तकारी के लिये

प्रबन्ध तथा कला-सम्बन्धी कार्य के लिये स्थान होना नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार गैरीप्रणाली में मेज, कुर्सी से बचे हुए रुपये बाहरी काम में लगाये जा सकते हैं।

अधिक थकावट नहीं होने से विद्यार्थी स्कूल में ७-८ घंटे तक अच्छी तरह कार्य कर सकते हैं। अधिकतर उद्योगधन्धे वाले देशों में माता-पिता अधिक समय तक बालकों को स्कूल में रखना चाहते हैं क्योंकि वे उतने समय तक कारखाने में रहते हैं और अपने लड़कों की देखभाल नहीं कर सकते हैं।

बाहरी समाज जैसा कि किसी नगर अथवा प्रान्त में हो उसीका प्रतिबिम्ब पाठशाला में होना चाहिये। गैरी नगर नया बसाया गया था, वहाँ बिजली, पानी, भोजन, स्वच्छता इत्यादि का विशेष प्रबन्ध किया गया था। इन सब प्रबन्धों के बारे में उचित बातों की शिक्षा बालकों की पढ़ाई में सम्मिलित थी। नागरिक जीवन का अनुभव जहाँ तक हो सकता था, पाठशाला में बालकों को करा दिया जाता था। बालक अधिक समय तक पाठशाला में रहते हैं, परन्तु वे पाठशाला के कार्यों से नहीं ऊबते।

बालकों को अधिक स्वतंत्रता दी जाती है। एक नियत समयतक कक्षा में बैठकर पढ़ने के कार्य के उपरान्त प्रत्येक बालक अपनी दिनचर्या आप बना लेता है और वह अध्यापक को दिखाकर अपने कार्य में लग जाता है।

डेक्राली प्रणाली (Decroly method)

बेल्जियम की राजधानी ब्रूसेल्स के एक विद्यालय के संस्थापक का नाम डेक्राली है। उन्होंने एक नवीन शिक्षणपद्धति का

आविष्कार किया है अतः, उन्हीं के नाम पर उसे डेक्राली-पद्धति कहते हैं। उनका कथन है कि बालकों को वे ही बातें बतलानी चाहिये जिनका उनके जीवन से सम्बन्ध हो। इस प्रकार जब बालक जीवन-सम्बन्धी बातों में विद्यालय में अभ्यस्त हो जायँगे तब फिर भविष्य जीवन की समस्याओं को बड़ी सरलता से हल करेंगे—जीवन भार-सा प्रतीत नहीं होगा—पाठशाला और घर में कुछ अन्तर नहीं जान पड़ेगा।

बालक पाठशाला में ही मैदान, खेत, बागीचे के द्वारा विज्ञान और प्रकृति निरीक्षण पर अधिक ध्यान देकर अनुसन्धान-शक्ति बढ़ाते हैं। वे पाठशाला में अधिक समय तक रहकर स्वतंत्रता-पूर्वक कार्य करते हैं। वे प्रातःकाल भाषा और गणित सीखते हैं; दिन में विज्ञान, संगीत, हस्तकला इत्यादि सीखकर निरीक्षण, मनन तथा अन्य मानसिक शक्तियों को काम में लाते हैं और सायंकाल में स्वेच्छापूर्वक हस्तकला तथा अन्यान्य भाषाएँ पढ़ते हैं।

वे स्वयं ही निरीक्षण कर पुस्तक लिखते हैं जो साधारण पुस्तकों से भिन्न होती हैं। बालक की रुचि का ध्यान रखते हुए किसी का अध्यापन होना चाहिये। जैसे—लम्बाई और बोझ के ज्ञान-प्रदान में बालकों के शरीर की नाप-तौल करवानी चाहिये, तत्पश्चात् खेल की सामग्री,—पुस्तक इत्यादि—की।

इस प्रणाली को कार्यरूप में परिणत करने के लिये बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि शिक्षक को सर्वदा चिन्तन और मनन करना पड़ता है, अवसर का उचित उपयोग करना पड़ता है, बात समझाने की चेष्टा करनी पड़ती है जिससे

बालक स्वयं पुस्तक तैयार कर ले। शिक्षक यदि पुस्तक लिखाता है, तो वह बालक के व्यक्तित्व में वाधा डालता है। बालक की मानसिक शक्तियों का विकास करना ही शिक्षक का उद्देश्य होना चाहिये।

विनेटिका प्लान (Winnetka Plan)

अमेरिका के विनेटिका नामक नगर में सौ सज्जनों की एक सभा बनी। उन्होंने प्रचलित सब सिद्धान्तों को शिक्षा-विभाग में प्रयुक्त किया। तदुपरान्त कतिपय सिद्धान्त निर्धारित किये गये। उनमें मुख्य चार सिद्धान्त हैं :—

(१) आगामी जीवन में काम पड़नेवाले शास्त्रों का प्रयोग करना बालक का प्रधान उद्देश्य होना चाहिये।

(२) बालकों को प्रकृति और प्रवृत्तियों के अनुसार जीवन व्यतीत करने का अवसर मिलना चाहिये।

(३) प्रत्येक बालक अपनी बुद्धि के अनुसार अपने व्यक्तित्व का विकास करके मनुष्य-समाज की उन्नति करे।

(४) प्रत्येक बालक अपने को समाज का एक अंग समझ कर समाज की उन्नति के लिये चेष्टा करे।

इस प्रणाली की नीव डालने का श्रेय डाक्टर वाशवर्न को ही है। उपर्युक्त सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणत करने के लिये पाठ्यक्रम के मुख्य दो भाग करने पड़ते हैं—(१) आर्थिक उद्देश्य के अनुसार विषयों का ज्ञान और (२) मानसिक विकास के लिये विपयों का ज्ञान। इस प्रकार पाठ्यक्रम स्थायी नहीं वन सकता,

इसमें, पुस्तक में तथा प्रयोग में परिवर्तन होना आवश्यकतानुसार निर्भर करता है।

प्रत्येक विषय के भाग कर दिये जाते हैं। प्रत्येक भाग को प्रमाण कहते हैं। उन्हें विद्यार्थी योग्यतानुसार करते हैं। प्रत्येक बालक को नियत कार्य गोलकार्ड में लिखकर सौंप दिये जाते हैं। प्रत्येक विषय के प्रमाण उसमें दर्ज किये जाते हैं। जैसे-जैसे बालक प्रमाण को खतम करते जाता है, उसमें तिथि भरते जाता है। कार्ड के देखने से बालकों की उन्नति का पूरा पता चलता है।

बालकों को एक बात बतलाकर और सब बातें छोड़ दी जाती हैं। उन्हें बालक स्वयं करते हैं इससे उनके मानसिक शक्ति का विकास होता है। बालकों के ज्ञान की जाँच के लिये क्रिया, अभ्यास और प्रश्न किये जाते हैं और योग्यता की जाँच के लिये प्रश्न पूछते हैं। उत्तीर्ण होने पर कार्ड पर लिख दिया जाता है, वार्षिक परीक्षा नहीं होती है।

बालकों को परस्पर सहायता करने की मनाही नहीं है। प्रायः तीक्ष्णबुद्धि, मन्दबुद्धि की सहायता करते हैं। यदि तीक्ष्ण-बुद्धि पाठ को शीघ्र ही समाप्त कर दें तो उन्हें पाठ्यक्रम के बाहर के कठिन कार्य दिये जायँ। कुछ कार्य (इतिहास-भूगोल) कक्षा में होते हैं और कुछ कार्य बालक स्वयं करते हैं।

पाठ्यक्रम से बाहर रचनात्मक कार्य दिये जाते हैं। इन्हें सब बालक मिलकर करते हैं। सामूहिक कार्य करने के लिये बालकों के दो दल बनाये जाते हैं--(१) ६ वर्ष से १० वर्ष तक के बालकों का समूह और (२) १० वर्ष से १३ वर्ष के बालकों का समूह। बालकों को कल्पना-द्वारा क्रियाओं की रचना करने के

लिये उत्तेजना दी जाती है। जैसे तुम एक दिन के लिये राजा हो जाओ तो क्या करोगे ? तदुपरान्त उन्हीं कार्यों को नाटक द्वारा दिखलाते हैं और फिर नाटक के खेलों का फोटो लेकर फोटो खींचना सीखते हैं। बालक हस्तकला-शास्त्र की शिक्षा कक्षा में पाते हैं। इस प्रकार यह प्रणाली सब प्रणालियों का सम्मिश्रण है।

अनुक्रमणिका

छ

ज

ट

ड

द

न

प

स

परिशिष्ट (२)

शब्दानुक्रमणिका

अचेत	Unconscious	بے ہوش
अनुभव	Experience.	تجربہ
अधिक मात्रा	Intensity.	زیادتی
अवधान	Attention.	توجہہ
अद्भुत क्षोभ	Emotion of Sublime.	تعجب خیز
अद्भुत	Sublime, wonderful.	جذبۂ تعجب
अहेतुक क्रिया	Random movement.	حرکت غیر ارادی
अर्द्धवार्षिक परीक्षा	Half yearly Examination.	شش ماہی امتحان
अनुमान	Inference.	حاصل' نتیجہ صریح
अनिवार्य	Compulsory.	ضروری' لازمی
अभ्यास	Habit.	عادت
अन्तर्विद्यालयिक खेल	Inter School Sports.	کھیل بین المدارس
अनुकरण	Imitation.	تقلید
अतिथि-भवन	Guest-room.	مہمان خانہ
अतिथि-शुल्क	Guest-charge.	مہمانی خرچ
आचार	Conduct, morality.	خوش اطواری
आचार-शास्त्र	Ethics.	علم اخلاق
आर्थिक दण्ड	Fine.	جرمانہ
आत्म-संयम	Self control.	خودضبطی (اپنے کو قابو میں رکھنا)
आचार-क्षोभ	Moral emotion.	اخلاقی جذبہ
आत्मनिवेदन	Self-sacrifice.	ذاتی قربانی

केन्द्रीकरण	Centralisation.	مرکزیت
कामना	Desire.	رغبت
कौतुक-जिज्ञासा	Curiosity.	تجسس
कौतूहल	Wonder.	تعجب
खेल	Play.	کھیل
गृह-कार्य	Home-task	گھر کا کام
घृणा	Hatred-Repulsion.	نفرت
चित्त	Conciousness.	ہوش
चित्र	Picture.	نقشہ
चञ्चलता	Activity.	پھرتی
चित्तवृत्ति	State of conciousness.	ہوش کی حالت
छात्रावास	Hostel.	ہوسٹل، بورڈنگ
छायाचित्र, रूपचित्र	Photo.	تصویر
जातीकरण, नियम-निर्धारण	Generalization.	استخراج
झगड़ालूपन	Fighting.	لڑائی
टोलियाँ	Group, patrol.	جماعت
तर्कना	Reasoning.	استدلال
तर्कशास्त्र	Logic.	منطق
तर्कशास्त्रानुकूल	Logical.	منطقی
तारतम्य	Gradation, relation.	تدریج
तुलना	Comparision,	موازنہ
त्रैमासिक	Quarterly.	سہ ماہی
थकान	Fatigue.	تکان، تھکاوٹ
दर्शन शास्त्र	Philosophy.	فلسفہ
देखो और कहो	Look and say.	دیکھو اور کہو
दृष्टिनाड़ी	Optic nerve.	اعصاب باصرہ

दण्ड	Punishment.	سزا
धारणा	Retention	حافظہ
नियमित खेल, संबद्ध खेल	Organised play.	منتظم کھیل
निरीक्षण, पर्यवेक्षण	Observation.	مشاہدہ
निष्क्रिय, निश्चेष्ट	Passive.	مجہول
निर्धारण, निर्णय	Judgment.	فیصلہ
निगमनात्मक	Deductive.	حاصل
निर्विकल्पक, प्रत्यक्ष	Sensation.	احساس
निषेध	Prevention.	رکاوٹ
निर्वाचन	Selection.	انتخاب
निर्णय	Decision.	فیصلہ
नैतिक उन्नति	Moral development.	اخلاقی ترقی
परिमाण	Standard.	دستور
पद	Post, Position.	عہدہ
परिदर्शक	Inspector.	تفتیش کنندہ
परीक्षा	Experiment, Examination.	امتحان
परीक्षक	Examiner.	ممتحن
परीक्षार्थी	Examinee.	امتحان دینے والا
पश्चात् मनन	Retrospection.	خیال گذشتہ
प्रमेय	Phenomena.	مظہر نادر
पद्धति	Method.	طریقہ
प्रतिक्रिया	Reaction.	عمل معکوس
प्रतिफलन क्रिया, सहज क्रिया	Reflection.	غور
प्रकृति	Nature	قدرت
प्रयत्नशील अवधान ऐच्छिक अवधान	Voluntary attention.	توجہ ارادی

प्रयोजन	Motive.	مقصد
पृथक्करण	Abstraction.	خیال
पुनः प्रत्यक्ष	Representation.	نموداری
परिस्थिति, प्रतिवेश	Surrounding, Environment.	ماحول
प्रत्यक्ष, प्रत्यय	Percept.	ادراک
प्रदान	Presentation.	پیش کرنا
पाचन	Assimilation.	مطابقت
पाठटीका	Notes of lesson.	سبق کے نوٹ
पाठ-तालिका	Routine.	دستور العمل
पाशविक वृत्ति	Animal instinct.	حیوانی جبلت
पुनरुत्पादन	Reproduction.	پیدائش از سر نو
पुस्तकालय	Library.	کتب خانہ
पुस्तकालयाध्यक्ष	Librarian.	داروغہ کتب خانہ
पूर्वानुवर्ती ज्ञान	Apperceptive mass.	گذشتہ واقفیت
प्रभाव	Impression.	اثر
प्रयोग	Application.	استعمال
प्रबोधन	Intellect.	ذہن
प्रेम	Love.	محبت
प्रबोधन क्रिया	Intellectual action.	ذہنی عمل
प्रत्यय	Idea.	خیال
पाशविक वृत्ति, प्राकृतिक शक्ति	Instinctive power.	جبلی قوت
पाठानुष्ठान पुस्तक	Prospectus.	فہرست کتب
पाठ-विवरण	Schemes of Lesson.	تجویز اسباق
प्रतियोग	Competition.	مقابلہ
प्रधानाध्यापक, प्रथमाध्यापक	Head master.	مدرس اول

प्रतिबंधक	Inhibitory.	ممانعت رکاوٹ
प्रत्यक्ष विधि	Direct method.	سیدھا قاعدہ
प्रश्न-विधि	Question method.	قاعدہ استفساری
परीक्षात्मक प्रश्न	Testing question.	جانچ کا سوال
बालचर	Scout.	جاسوس، اسکاؤٹ
भौतिक शास्त्र	Physics.	علم حکمت
भेद	Differenciation.	تفرقہ
मन	Mind.	دماغ
मनोविश्लेषण	Psychoanalysis.	تشریح روحی
मनोविज्ञान	Psychology.	علم النفس
ममता	Ownership	ملکیت
मनन, अन्तःप्रेक्षण	Instrospection.	خرد بینی
मस्तिष्क	Brain.	مغز
मूर्त से अमूर्त	From concrete to abstract.	مجسم سے غیر مجسم - مادی سے خیالی
मानसिक	Mental.	دماغی
मांसपेशियों का संवेदन	Muscular Sensation.	اعصابی احساس
योजक	Copula.	ربط
यंत्र	Machine.	آلہ
रुचि	Interest.	دلچسپی
रसायनशास्त्र	Chemistry.	علم کیمیا
रोचक पाठ	Interesting lesson.	دلچسپ سبق
रोशनदान	Sky light.	روشن دان
ललित	Fine.	عمدہ
विद्युत्	Electricity.	قوت کہربائی
विरोध का नियम	Law of contrast.	قانون ضد

विषय-प्रदर्शक प्रश्न	Leading question.	سوال مقدم
विशेष	Particular.	خاص
विकास	Development.	انکشاف
विकास-परम्परा	Biological heredity.	وراثت نسبی
विचार	Thought.	سوچ' سمجھ
विचारात्मक प्रश्न	Thought provoking question.	خیال انگیز سوال
विचार सम्बन्ध	Thought relation.	رشتۂ خیال
विशेषज्ञ	Specialist.	ماہر
व्यवसाय	Work engagement.	مشغولیت
विधायकता	Constructiveness.	جذبۂ عمل
व्यवहारात्मक प्रश्न	Practical question.	عملی سوال
विधायक कल्पना	Constructive imagination.	عملی تخیل
वंशानुसंक्रमण	Heredity.	وراثت
व्यक्तित्व	Individuality.	شخصیت
वाह्य	External.	بیرونی
व्यवहार	Application.	استعمال
व्यवस्था	Management.	انتظام
वायुमण्डल	Atmosphere.	فضا
व्यायाम-शिक्षक	Game-teacher.	معلم کھیل
विश्राम	Recess.	فرصت
व्याख्या	Explanation, Ellustration.	تشریح
वर्गीकरण	Classification.	جنسی تقسیم
बाधा	Distraction.	رخنہ
विधेय	Predicate.	فعل
विश्वास	Belief.	اعتقاد

विशेषानुमान	Deductive logic.	استقرائی منطق
विवेचना	Deliberation.	غور و خوض
वैज्ञानिक	Scientific.	کیمیاوی
वास्तविक, स्थूल	Concrete.	مادی
शरीर-विज्ञान	Physiology.	علم البدن
शारीरिक	Physical.	جسمانی
शिक्षात्मक प्रश्न	Teaching question.	سوال تعلیم
शिष्य-शिक्षक	Pupil-teacher.	متعلم معلم
शिक्षण-विद्यालय	Training School.	درس گاہ
शिक्षा-विभाग	Education department.	محکمۂ تعلیم
शिक्षाविद्, शिक्षामर्मज्ञ	Educationist.	ماہر تعلیم
शासनसिद्धान्त	Principles of discipline.	اصول ضبط
शासन	Discipline.	ضبط
शारीरिक दण्ड	Corporal Punishment.	جسمانی سزا
शिक्षा-शास्त्र	Principles of Education Science of Education	اصول تعلیم علم تعلیم
श्रेणी शिक्षक	Class teacher.	معلم درجہ
शौचालय	Latrine.	پاخانہ (بیت الخلا)
सचेष्ट	Active.	چست
स्मृति	Memory.	حافظہ
संस्कार-प्रवृत्ति	Tendency	رجحان
संघबद्ध-जीवन, सामूहिक जीवन,	Corporate life	اتحادی زندگی
समाज-परम्परा	Social heredity.	وراثت قومی
सहजात वृत्ति	Instinct.	جبلت
सरल से क्लिष्ट	Easy to difficult	آسان سے مشکل

सहकारी शिक्षक	Assistant teacher.	معاون معلم
संकल्प व्यवसाय	Will.	ارادہ
संकल्पनात्मक क्रिया	Voluntary action.	فعل ارادی
संवेदन	Sensation, feeling.	احساس
संस्थान	System.	نظام
सचेत	Conscious.	ہوش
सविकल्प प्रत्यक्ष	Perception.	ادراک
स्वर	Tone.	آواز
स्पर्द्धा	Envy, Competition.	مقابلہ
स्वतः अवधान, अनैच्छिक अवधान,	Involuntary attention.	غیر ارادی توجہ
सन्नद्ध	Ready.	مستعد
सम्बन्ध सम्मेलन	Association.	تعلق
सहानुभूति	Sympathy.	ہمدردی
सम्बन्ध वा साहचर्य का नियम	Law of association.	قانون اتصال
समीपता का नियम	Law of contiguity.	قانون وصل
संस्कार	Impression, disposition	اثر
स्पष्टता	Vividness	صاف
स्वतः स्मृति	Spontaneous memory	خلقی حافظہ
समालोचना-पाठ	Criticism lesson.	تنقیدی سبق
संवित, सामान्यप्रत्यय,	Conception, idea, concept.	تصور
संवन्धाधीन तर्क	Associational reasoning.	بندشی بحث
स्वकीय	Egoistic	ذاتی
स्वकीय विचार	Egoistic feeling	ذاتی احساس
स्वभाव	Character.	اخلاق

सहयोग	Co-operation.	اتحاد
संरक्षक, अभिभावक	Guardian.	سرپرست
सिद्धान्त	Law, theory, principle.	قاعدہ اصول طریقہ
स्थिति, प्रतिवेश, परिस्थिति	Environment.	ماحول
साधारणीकरण	Generalization.	استخراج
सादृश्य का नियम	Law of similarity.	قانون مشابہت
सापेक्ष	Relative	قرابت مند
स्थानीकरण	Lecalisation.	مقام
स्वास्थ्यपत्र	Health-card.	نامۂ تندرستی
सोपान	Steps.	زینہ
सौन्दर्यशास्त्र	Asthetics.	خوبصورت
हस्ताक्षर	Signature.	دستخط
हठ	Obstinacy.	ضد
हस्तलिपि	Hand-writing,	تحریر
क्षोभ, भाव, उद्वेग	Emotion.	جذبہ
ज्ञान	Knowledge, cognition.	واقفیت
ज्ञानतन्तु, वाहकतन्तु	Nerves.	اعصاب
ज्ञानात्मक	Intellectual.	عقلی

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	१८	रार्थ	परार्थ
२२	२१	पारार्थ	परार्थ
३६	६	यही	ऐसा
४०	९	१९१० ई०	१९२० ई०
४४	४	सुगम से	सुगमता से
६९	८	बढ़े	बढ़े
८१	२४	के छात्रों का	०
८७	१६	प्रस्तुतीकरण	तैयारी
९३	१२	प्रकृतपाठ	प्रकृतिपाठ
९६	३	दृश्य	हृदय
९८	अन्तिम	अवकाश	आकाश
१२३	१९	शिक्षक काम	शिक्षक का काम
१२५	२१	भाववात्सल्य	भाव प्रेमपूर्ण
१३३	१५	समता	क्षमता
१३९	१८	परीक्षा रखना	परीक्षा का क्रम रखना
१४४	९	इसीसे छुट्टी	इसीकी सूचना से छुट्टी
१६६	२१	सुधारना	सुधरना
१७७	२२	गुणों के स्वभाववाले लोग	इन गुणों के लोग
१८५	१५	एक चित्र	एकत्र
१८६	१	के उपस्थिति	की उपस्थिति
१८७	२०	यंत्र	वस्तु
१९२	५	वर्णन रखा जाय	वर्णन सुरक्षित रक्खा जाय
१९६	८	प्रकाश की पीछे	प्रकाश के पीछे
१९७	१	रक्खो	रखना चाहिये
२ (परिशिष्ट)	२०	कार्य की	कार्य को